मेरी व्याख्यान-माला, संख्या १

शिक्षा का आदर्श

"Education brings freedom,
and freedom is power"
- Deva Duta

सत्यदेव

शिक्षा का आदर्श

लेखक और प्रकाशक

स्वामी सत्यदेव परिब्राजक

रचयिता

"अमरीका-भ्रमण", "अमरीका-दिग्दर्शन", "कैलाश-यात्रा",
"मनुष्य के अधिकार", "सत्य-निबन्धावली",
"अमरीका-पथ-प्रदर्शक" इत्यादि ।

"Hearken, ye Brothers ! I bring you the message of Saraswati. She teaches the Gospel of Light, Liberty, and Love."

—*Deva Duta.*

पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए० के प्रबन्ध से 'सुदर्शन प्रेस',
प्रयागमे मुद्रित ।

सं० १९७३

द्वितीयबार } २००० } यह पुस्तक सत्य-ग्रन्थ-माला आफिस प्रयाग से मिल सकती है। { मूल्य { पाच आने

निवेदन

मेरे प्रेमी पाठको! पौने दो वर्षों के बाद फिर मैं आप लोगों के सम्मुख उपस्थित होकर सहर्ष "वन्देमातरम्" कहता हूँ। पौने दो वर्ष बीत गए और इस बीच क्या से क्या हो गया। मैं "पानामा-प्रदर्शिनी" देखने के लिए अमरीका जाने वाला था, सो नहीं जा सका। जिस उद्देश्य साधनार्थ सत्य-ग्रन्थ-माला का सारा स्टाक बेच दिया था, वह भी पूरा न हुआ। योरपीन युद्ध ने मेरी सब स्कीमें बदल दीं। यही कारण है कि अब तक मैं कोई पुस्तक भी आपके सामने नहीं रख सका। व्याख्यानों द्वारा जो कुछ सेवा मुझसे बन सकी वह मैं निरन्तर करता रहा हूँ। परन्तु जो कार्य्य पुस्तकों द्वारा हो सकता है वह व्याख्यानों से कभी नहीं हो सकता। जब मैंने देखा कि अब अमरीका जाना कई वर्षों तक नहीं हो सकेगा तो फिर साहित्य-सेवा के लिए लेखनी उठाई है। सत्य-ग्रन्थ-माला के पुराने अङ्क बराबर अपना काम कर रहे हैं, अब और नये नये अङ्क निकलेंगे। आप लोग नवीन उत्साह के साथ मेरा हाथ बटाने के लिए तय्यार हो जाइए, सत्य-ग्रन्थ माला के हितैषियों की संख्या बढ़ाइए। ऐसा यत्न कीजिए कि मैं अपने प्रत्येक संस्करण की दस दस हज़ार प्रतियाँ निकाला करूं। अधिक प्रतियाँ छपवाने से दाम बहुत कम हो जायगा, और राष्ट्र निर्माण में अधिक सहायता मिलेगी।

एक विशेष प्रार्थना मुझे अपने देश-बन्धुओं से करनी है। पिछले चार वर्षों से मैं राष्ट्र भाषा हिन्दी द्वारा देश-सेवा कर रहा हूं। इस कारण बहुत से भारतीय मुझे अपनाने लग गए

हैं, पर कुछ लोग कट्टर विरोधी भी हो गए हैं, इसलिए जब कोई विरोधी सज्जन मेरे विषय में कुछ कहता है तो मेरे प्रेमियों से सहन नहीं होता; वे अपने दुःख को पत्र द्वारा मुझे लिखते हैं।

मैं अपने प्रेमियों से नम्रता-पूर्वक निवेदन करता हूं कि वे मेरे विरोधियों की बातें सुनकर, या समाचारपत्र में कोई लेख मेरे विरुद्ध पढ़ कर घबड़ा न जाया करें। मैं अपने विरोधियों को भी अपना सच्चा हितैषी समझता हूं। वे मुझे अपने काम में लगा रहने का अंकुश देते हैं और मेरी कमज़ोरियों को दूर करने में मेरी सहायता करते हैं। जो समाज सेवक अपनी प्रशंसा ही प्रशंसा चाहता है वह कभी भी उन्नति नहीं कर सकता। अपने विरोधियों की बातों में जो सत्यता हो उसे मान लेना उचित है, और जो झूठ हो उसको हंस कर फूंक से उड़ा देना चाहिए। मेरे ऊपर एक आक्षेप यह किया जाता है कि मैंने सन्यासी होने में किसी मठधारी से दीक्षा नहीं ली। आक्षेप ठीक है, पर मेरा उत्तर इसमें यह है कि मैंने भारतीय राष्ट्रोत्थान निमित्त, परम पिता परमात्मा की आज्ञा ले, उसको गुरु धारण कर, उसके दिए हुए अमृत रस का पान कर, एक नये सन्यासाश्रम की दीक्षा ली है। इस सन्यास का कठिन व्रत यह है—

"मैं गुलाम सन्तान उत्पन्न नहीं करूंगा"

यदि आज भारत का, मेरे आदर्शानुसार, उद्धार हो जाय तो मैं अपने इस आश्रम से मुक्त हो सकता हूं। बस, यही मेरा उत्तर है। मैं अपने इस मार्ग में धर्मानुकूल चल रहा हूं या नहीं, इसका फैसला भावी सन्तान करेगी।

जिस आदर्श को सामने रख कर मैंने इस नए सन्यास की

दीक्षा ली है, उसकी सिद्धि मेरी पूरी आर्थिक-स्वतन्त्रता पर निर्भर है। मुझे सब प्रकार के विरोधों का सामना करना है; अपने सहायक काम करने वाले बनाने हैं, राष्ट्रीय ढंग की पुस्तकें प्रकाशित करनी हैं। निन्दा करने वाले बेचारे क्या जानें कि राष्ट्रीय भावों के प्रचारक को, देश की वर्तमान राजनैतिक अवस्था में, कैसी कैसी आपत्तियों का सामना करना पड़ता है, और उसको कैसे कैसे साधनों से सम्पन्न होने की आवश्यकता है। एक परमात्मा के विश्वास पर, देश के किसी नेता की सहानुभूति अथवा धनिक पुरुष की सहायता के बिना, जो तुच्छ सेवा मैं कर रहा हूं मेरे देश बन्धुओ आपको उसकी सफलता के लिए परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए, जिससे और नवयुवक भी स्वावलम्बन के सिद्धान्त पर चल कर जननी जन्म-भूमि की सेवा कर सकें।

मुझ में जो दोष हैं उनको मेरा मालिक जानता है। समय आएगा, जब इनको मैं भारत जनता के सामने, न्याय के लिए, रक्खूंगा। अभी उसमें बीस वर्ष की देरी है।

प्रार्थी—

सत्यदेव परिव्राजक।

द्वितीय संस्करण की भूमिका

'शिक्षा का आदर्श' पहला संस्करण इस शीघ्रता से बिक जायगा, यह मुझे स्वप्न में भी आशा न थी। पुस्तक निकलते ही लोगों ने इसका सादर स्वागत किया। मेरे प्रेमियों ने मेरा अत्यन्त उत्साह बढ़ाया है। इसके लिए मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूं। यह व्याख्यान उत्तरीय भारत के बड़े बड़े नगरों में सहस्रों देश-बन्धुओं के सम्मुख दिया जा चुका है।

पुस्तक प्रेमियों ने तो अपना कर्तव्य पालन करने में कोई त्रुटि नहीं की, परन्तु मुझे पुस्तक-प्रकाशन कार्य्य में अब बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यह पुस्तक तीन प्रेसों में छपी है! एक प्रसिद्ध "देश-हितैषी" प्रेस (Leader Press Allahabad) ने तो इसके छापने से इन्कार ही कर दिया !! उसने इस छपी हुई पुस्तक का द्वितीय संस्करण छापना अपने लिए हानिकारक समझा !!! ऐसी दशा में मैं साहित्य सेवा कैसे कर सकूंगा ?

खैर, ये दिन भी निकल जायेंगे। अन्धकार के बाद प्रकाश होगा। हमें ईश्वर पर दृढ़ विश्वास रख, शक्ति अनुसार, अपना कर्तव्य पालन करते रहना चाहिए।

प्रयाग, कार्त्तिक
पूर्णमाशी १९७२

विनीत—
सत्यदेव परिव्राजक।

राष्ट्रीय साहित्य !   राष्ट्रीय विचार !!

सत्य-ग्रन्थ-माला

स्वामी सत्यदेव जी रचित सत्य-ग्रन्थ-माला की पुस्तकें आज देश की क्या सेवा कर रही हैं, इसको हिन्दी-संसार भली प्रकार जानता है। प्रत्येक भारतीय को इन ग्रन्थ-रत्नों का प्रचार बढाना चाहिए। ग्रन्थों का नाम सुनिए--

१-**अमरीका-पथ-प्रदर्शक**—(द्वितीयावृत्ति) चार हज़ार छपा है। दाम पांच आने।

२-**आश्चर्यजनक-घंटी**—नया संस्करण हुआ है। दाम पांच आने।

३-**अमरीका-दिग्दर्शन**—सुन्दर टाइप, द्वितीयावृत्ति। दाम बारह आने।

४-**अमरीका के विद्यार्थी**—चार हज़ार छपा है। दाम चार आने।

५-**अमरीका-भ्रमण**—सुन्दर द्वितीय संस्करण। दाम आठ आने।

६-**मनुष्य के अधिकार**—छः हज़ार छप चुका है। दाम पांच आने।

७-**राजर्षि भीष्म**—अत्यन्त शुद्ध, नयी आवृत्ति। दाम चार आने।

८–सत्य-निबन्धावली—तीन हज़ार छप चुकी है। दाम आठ आने।

९–कैलाश-यात्रा—चार हज़ार छपी है। दाम आठ आने।

१०–शिक्षा का आदर्श—चार हज़ार छपा है। दाम पांच आने।

११–लेखन-कला—नई पुस्तक, अत्यन्त उपयोगी है। दाम नौ आने।

१२–हिन्दी का सन्देश—ग्यारह हज़ार छपा है। दाम एक आना।

१३–जातीय-शिक्षा—दस हज़ार छप चुकी है। दाम एक आना।

१४–राष्ट्रीय-संध्या—सत्रह हज़ार छप चुकी है। दाम दो पैसे।

ये चौदह पुस्तकें स्वामी जी की रचित हैं। इसके अतिरिक्त स्वामी रामतीर्थ जी का "राष्ट्रीय-सन्देश" भी हमारे यहां मिलता है। कृपा कर इन पुस्तकों का प्रचार बढ़ा जननी जन्म-भूमि की सेवा कीजिए।

निवेदक—

मेनेजर, सत्य-ग्रन्थ-माला आफ़िस,

इलाहाबाद।

मेरी व्याख्यान-माला

प्रथम पुष्प

शिक्षा का आदर्श।*

भूमिका।

"Decisive changes in human opinion—political, religious, or scientific—involve corresponding changges in the purpose and methods of education".

—Compagre.

भारतवर्ष में इस समय शिक्षा की पुकार मची हुई है। देशहितैषी सज्जनों ने इस बात को भली प्रकार समझ लिया है कि बिना शिक्षा के इस देश का कल्याण नहीं हो सकता। भिन्न भिन्न बिरादरियों के नेता लोग अपने अपने कार्यक्षेत्र में शिक्षा प्रचार का यत्न कर रहे हैं। कायस्थों की पाठशालाएँ तथा कालेज खुल रहे हैं; राजपूत सभाएँ अपने अनपढ़ भाइयों की शिक्षा का प्रबन्ध कर रही हैं, वैश्य-सभाएँ अपने वार्षिकोत्सव रच कर शिक्षा फैलाने में उद्यत हैं, सिक्ख

---

* यह व्याख्यान लाहौर, मिर्जापुर, करांची, प्रयाग, आगरा, मुजफ्फरपुर, कलकत्ता आदि बड़े बड़े नगरों में हजारों की जनसंख्या में दिया जा चुका है।

भी गाँव गाँव स्कूल खोल कर अपनी अविद्या दूर करने पर कटिबद्ध हैं ; सब से बढ़ कर जागृति के चिह्न ये हैं कि तेली, बढ़ई, लोहार आदि मज़दूरी पेशा भारतीय भी शिक्षा-ग्रहण करने के लिये चिन्तित हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आज भारत के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक यही आवाज़ हमारे कान में आती है—"शिक्षा के बिना भारत का कल्याण हो नहीं सकता।"

परन्तु प्रश्न यह है कि किस प्रकार की शिक्षा हमारे बच्चों को, इस बीसवीं शताब्दि में, अन्य सभ्य जातियों के सम्मुख खड़े होने के योग्य, बना सकती है—नहीं नहीं बल्कि किस प्रकार की शिक्षा द्वारा हम स्वाभाविक जीवन बना कर संसार की जातियों का सामना करते हुए मनुष्य जीवनोद्देश्य को पूर्ण कर सकते हैं ? यदि शिक्षा से अभिप्राय उस सड़ी, गली, बोदी, संकुचित, शब्दाभास, हेत्वाभास, अवच्छेदिकावच्छिन्न वितण्डावाद से है तो हम निश्चय रूप से कह सकते हैं कि ऐसी शिक्षा द्वारा देश का कल्याण होना असंभव है। यदि शिक्षा से मतलब समय कुसमय अंग्रेज़ी की टांग तोड़ना हो, अथवा मुंह में चुरट दबा, कोट पतलून की सेवा करनी हो ; अथवा नौकरियों की तलाश में 'हाँ हजूर' का अभ्यास करना हो तो ऐसी शिक्षा से अशिक्षित रहना अच्छा होगा।

संसार परिवर्तनशील है। शिक्षा का ढंग भी देश काल की आवश्यकताओं के अनुसार बदलता है। जो आवश्यकताएं हमारी आज से दो हज़ार वर्ष पहले थीं वे आज नहीं हैं। जिन चीज़ों की ज़रूरत आज से पाँच सौ वर्ष पहले थी आज उनके स्थान पर नई नई ज़रूरतें खड़ी हो गई हैं। देश की अवस्था जो आज से तीन सौ वर्ष पहले थी वह अब नहीं है। इसलिये स्वाभाविक ही हमारी शिक्षा का ढंग वह नहीं हो

सकता जो कि आज से कई सौ वर्ष पहले था। क्योंकि जैसी शिक्षा जाति के बच्चों को दी जायगी, उसी के अनुसार जाति की सभ्यता होगी। यदि शिक्षा देशकाल के अनुसार वर्त्तमान जीवन संग्राम के पूरा करने के योग्य नहीं है तो कभी भी उस शिक्षा में पले हुए व्यक्ति जीवन दौड़ के भयंकर संग्राम में नहीं ठहर सकते। गति जीवन का दूसरा नाम है। जो सभ्यता गतिवान् है, जिसकी शिक्षा काल की गति के अनुसार है, उसके नष्ट होने का भय नहीं। शिक्षाप्रणाली भी नये नये आविष्कारों से विभूषित, नई नई आवश्यकताओं को पूरा करने वाली तथा जीवन-प्रद होनी चाहिये। जैसे नदी का बहता हुआ जल सदा ताज़ा और जीवनदाता होता है वैसे ही किसी पोखर का स्थिर जल गंदगी और बीमारियों का फैलानेवाला होता है। यद्यपि दोनों प्रकार के जल, जलत्व के समान गुण रखते हैं— उनमें जल के प्रधान गुण विद्यमान हैं—किन्तु भेद केवल इतना ही है कि एक गतिवान् है दूसरा स्थिर। जो स्थिर है वही पीछे है; वही मृतप्राय है; उसी का अन्त निकट है।

हम आज संसार से पीछे तथा अन्य जातियों के घृणापात्र क्यों हैं? इसका कारण हमारी शिक्षा है। हमारे देश में सैकड़ों पाठशालाएं हैं, जिनमें हज़ारों विद्यार्थी पढ़ते हैं। इन पाठशालाओं के चलाने में देश का लाखों रुपया ख़र्च होता है। वे विद्यार्थी जब संस्कृत की उच्च से उच्च परीक्षा पास करके निकलते हैं तो उनको बीस पच्चीस रुपये की नौकरी भी नहीं मिलती, और यदि उनसे देश, जाति, इतिहास, भूगोल, शिक्षा और विज्ञान आदि विषयों पर कोई प्रश्न किया जाय तो वे बिचारे बगलें झाँकने लगते हैं। उनकी शिक्षा न तो उनको इस योग्य बनाती है कि वे अपना जीवन-निर्वाह भली भाँति कर सकें, और न वे अच्छे नागरिक ही बन सकते हैं। काशी के किसी पंडित

वा महामहोपाध्याय जी से देश सेवा की आशा रखना निर्मूल है। क्योंकि उनकी शिक्षा व्याकरण के वितंडाओं तथा न्याय की फक्किकाओं पर ही खतम हो जाती है। वे देश, जाति, राष्ट्र संगठन, भारतोत्थान आदि विषयों से बिलकुल अनभिज्ञ होते हैं। उनकी वही दशा है जो आज से तीन सौ बरस पहिले यूरोप के विद्वानों की थी। लम्बे लम्बे शास्त्रार्थ करने में तथा सत्य को झूठ व झूठ को सत्य कर दिखलाने में वे पूरे पण्डित हैं। परन्तु देश के वर्तमान दुःखों के दूर करने में वे किसी प्रकार की सहायता नहीं कर सकते; हाँ, बाधाएँ डालने के लिये सदा उद्यत रहते हैं। भारत की अवनति का बड़ा भारी कारण यदि कोई हुआ है तो वह यह कि हमारी जाति के नेताओं ने काल-क्रमानुसार शिक्षा प्रणाली के बदलने का यत्न नहीं किया। युनानी यहाँ पर आये; उन्होंने हमें ठोकरें लगाईं; हमारे ग्रन्थ चुरा कर ले गये, परन्तु हमने उनसे कुछ भी शिक्षा ग्रहण न की। मुसलमानों के जबरदस्त धावे भारत पर हुए। वे हमारे ग्रन्थ, हमारे रत्न, हमारा धन चुरा कर ले गए, परन्तु हमने तिस पर भी कुछ न सीखा। हम अपने अभिमान में चूर रहे; हमने दूसरों से कुछ भी शिक्षा न ली। चाहिये यह था कि हम काल की गति के अनुसार अपने पड़ोसियों के सद्गुणों से अपनी भाषा का भंडार भरते और अपने बच्चों को अपनी उच्च सभ्यता की शिक्षा देते हुए उनको काल की गति के अनुसार अन्य जातियों के इतिहास तथा उन्नति के उपायों से परिचित रखते। यदि ऐसा किया गया होता तो कभी भी भारत की यह अधोगति न हुई होती और न हम अन्य जातियों से इतने पीछे होते।

यहाँ पर नई और पुरानी शिक्षा के परिणाम भारतीय इतिहास के द्वारा हम दिखलाते हैं। हमारे इतिहास में महाराणा प्रताप और महाराज शिवाजी दो ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिन

की तुलना द्वारा पुरानी और नई शिक्षा का परिणाम भली भाँति समझ में आ सकता है। महाराणा प्रताप प्राचीन सभ्यता के ज्वलन्त उदाहरण थे। उनकी वीरता, साहस, ब्रह्मचर्य तथा आत्म-बलिदान की शक्ति अलौकिक थी। परन्तु इन गुणों के होते हुए भी वे अपने उद्योग में सफलता प्राप्त न कर सके। क्योंकि उन्होंने अपने काल की युद्ध विद्या तथा कुटिल नीति को नहीं समझा था। यदि वे अपने वैदिक गुणों के साथ साथ ज़माने की युद्धनीति को भी जान लेते, तो वे अकबर के राज्य को जड़ से उखाड़ कर फेंक देते। मानसिंह के साथ उनका झगड़ा करना इस बात को स्पष्टतया सिद्ध करता है कि उन्होंने उस ज़माने की नीति को अच्छी तरह नहीं समझा था। जहाँ एक ओर अकबर अपने कट्टर से कट्टर शत्रुओं को, अपने बुद्धि-वैचित्र्य से, वश में कर मुसलमानी राज्य की नींव को दृढ़ करने में लगा हुआ था, वहाँ दूसरी ओर महाराणा प्रताप अपने ही भाई बन्धुओं तथा राजपूताने के बड़े बड़े सरदारों को अपने साथ न मिला कर उलटा उनसे घोर शत्रुता कर रहे थे। हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि वे अपने धर्म का त्याग कर देते; परन्तु हाँ, यह हम अवश्य कहेंगे कि यदि वे देश और काल की गति को समझ कर कार्य करते तो उनको अपने काम में महान् सफलता प्राप्त होती; और वे मुसलमानी राज्य की नसें ढीली कर देते।

अब नए युग के उदाहरण छत्रपति शिवाजी की ओर देखिए। उनमें जहाँ अपने प्राचीन धर्म के लिए अति श्रद्धा थी वहाँ वे उस समय के राजनैतिक सूत्रों में भी पारङ्गत थे। औरङ्गज़ेब जैसा कूट-नीतिज्ञ हमारे इतिहास में दूसरा शायद ही कोई हुआ है। उसके काल में मुसलमानी राज्य भारत के एक

सिरे से दूसरे सिरे तक फैल गया था। हिन्दू राज्यों का विरोध मिट चुका था। ऐसे समय में साधन-रहित वीर शिवाजी का खड़ा होना और औरङ्गज़ेब जैसे बादशाह को नीचा दिखा देना इस बात का आज्वल्यमान प्रमाण है कि देश-कालानुसार शिक्षा और शक्ति सम्पन्न मनुष्य असम्भव को भी सम्भव कर सकता है। संसार एक युद्धक्षेत्र है। उस क्षेत्र में वही पुरुष विजयी होगा जो काल की गति के अनुसार शिक्षा सम्पन्न होगा। पुराने जर्जर साधन किसी काम नहीं आ सकते; वे केवल म्यूज़ियम में रखने लायक रह जाते हैं।

इसलिये सोचो और विचार करो। यदि हमारी पाठशालाओं में संस्कृत भाषा द्वारा पाश्चात्य जातियों का इतिहास, पदार्थ विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र, रसायनशास्त्र, आदि विषय पढ़ाये जाते; तथा साथ ही अपना साहित्य, अपने आदर्श पुरुषों के जीवनचरित्र, अपने देश का गौरव, भारतीय बच्चों को सिखलाया जाता तो हम कभी किसी जाति से पीछे न रहते। क्या दूसरों से कुछ सीखना लज्जा की बात है? कदापि नहीं। अंगरेज़ संस्कृत-साहित्य पढ़ हमारे गुणों से लाभ उठा रहे हैं; जर्मनों ने संस्कृतयुद्ध विद्या के ग्रंथों का मान किया है; फ्रांसीसी हमारे दर्शनों के अनुवाद अपनी भाषा में कर फ़ायदा उठा रहे हैं, उसके विपरीत हम केवल न्याय, व्याकरण और वेदान्त का ही गला घोटने में मस्त हो रहे हैं। बस, उसी से हमें जन्म भर छुट्टी नहीं। जिस इंगलैंड में एक शताब्दी पहले लेटिन और ग्रीक भाषाओं से अनभिज्ञ पुरुष विद्वान नहीं समझा जाता था, वहाँ आज विज्ञान ने पैर जमाया है। विकासवाद ने अपनी प्रभुता शिक्षा पर कर ली है; वह धीरे धीरे साहित्य के प्रत्येक अंग में घुस गया है। जर्मनी की

शिक्षाप्रणाली में रसायन शास्त्र, पदार्थ-विज्ञान, बढ़ई का काम नकशा खींचना, लोहार का काम आदि प्रधान अंग हो गए हैं। क्योंकि आज उनके बिना कलाकौशल का मर्म समझना कठिन है। जिस मेल के द्वारा भारतवर्ष को करोड़ों रुपये की तिजारतें होती थी, उस व्यापार को जर्मनों ने अपने विद्या बल से अपने हाथ में कर लिया है। पिछली शताब्दि से शिक्षाप्रणाली के क्रम में बड़े बड़े अद्भुत परिवर्तन हुए हैं। परन्तु भारत उन्हीं पुराने जर्जर शस्त्रों से ही संसार का सामना करना चाहता है!

भारत में अंगरेज़ी शिक्षा के प्रचार होते ही कुछ कुछ आधुनिक के चिन्ह दिखाई देने लगे थे। उन चिन्हों को देख कर बहुत से देशहितैषी समझने लगे कि अंगरेज़ी शिक्षाप्रणाली ही भारतोद्धार का कारण होगी। उन्होंने अपनी सारी शक्तियों को उसी के प्रचार में लगा दिया। बहुत से स्कूल और कालिज खुल गए। उनमें से हज़ारों विद्यार्थी हर साल पढ़ पढ़ कर निकलने लगे। परिणाम क्या हुआ? क्या हमारी उस शिक्षा प्रणाली ने हमको आज आधुनिक जीवन दौड़ के योग्य बना दिया है? क्या आज हम अन्य जातियों के मुक़ाबिले में खड़े हो सकते हैं? क्या इस अंगरेज़ी शिक्षाप्रणाली ने हमारा स्वाभाविक जीवन बना दिया है? इन सब प्रश्नों का उत्तर 'नहीं' के सिवा दूसरा क्या हो सकता है। हाँ, इस शिक्षाप्रणाली से इतना लाभ अवश्य हुआ है कि हमें अपनी भयानक दुर्दशा का पता लगने लगा है; हमें अपनी तथा दूसरों की पोल मालूम होने लगी है। वह भी उनको, जो अपने साहित्य तथा अपनी सभ्यता से परिचित हैं; जो अपनी सभ्यता के गुण दोष जानते हैं।

असल में हमें उस प्रकार की शिक्षाप्रणाली की आवश्यकता

है कि जिसके द्वारा हम अपने भारतीय गुण तथा भारतीय सभ्यता रखते हुए पाश्चात्य सभ्यता के गुणों को धारण कर अपनी उन्नति कर सकें। हम अर्वाचीन जीवन-संग्राम में शस्त्र शास्त्र सम्पन्न हों। इस जागृति के काल में हमें अपनी सारी शक्तियों को उस स्वाभाविक शिक्षाप्रणाली के प्रचार में लगाना चाहिये, जिसके द्वारा हमारा जातीय जीवन स्वच्छन्द हो— उसमें सर्व प्रकार की उन्नतियों का समावेश हो।

वह शिक्षाप्रणाली कैसी हो? उसका आदर्श क्या होना चाहिये? बीसवीं शताब्दी के भारत को कैसी शिक्षा की आवश्यकता है? इस व्याख्यान में हम इन महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अपने विचार प्रगट करेंगे। साढ़े पाँच वर्षों के अमरीका के अनुभव ने हमें इन प्रश्नों के सम्बन्ध में क्या सिखाया है, उसको आप भाइयों के सामने धरते हैं।

१—विषय-योजना।

किसी जाति में प्रचलित शिक्षाप्रणाली की पहचान उस के इतिहास से होती है। जैसे महापुरुषों के जीवनचरित्र अपने अपने नायक की जीवन घटनाओं को सामने रख, उसकी मानसिक अवस्था का फोटो उतार देते हैं, इसी प्रकार जाति के जीवन की भिन्न भिन्न कालीन घटनायें, उसके आदर्श, उसकी सामाजिक व्यवस्था, उसकी मानसिक संस्थिति का पूरा परिचय देते हैं। विचारशील मनुष्य उन घटनाओं द्वारा जाति के सामाजिक गुण दोषों का ब्योरा जान लेता है। जिस समय की वे घटनायें हैं वे उस जाति में प्रचलित उस समय की शिक्षाप्रणाली की व्यवस्था भली प्रकार विदित कराती हैं। थरमाप्ली के वीरशिरोमणि लिओनीडास की युद्धकथा हमें

स्पार्टा जाति की शिक्षाप्रणाली का रहस्य बतलाती है। यूनानी कला-कौशल की उन्नति का इतिहास तथा उसकी सभ्यता का योरप पर प्रभाव हमें आश्चर्य में डालता है, परन्तु यह आश्चर्य बहुत जल्द दूर हो जाता है जब हम यूनान के तत्कालीन शिक्षा का इतिहास पढ़ते हैं। रोम साम्राज्य के पतन के कारणों को समझने के लिये हमें उस काल की प्रचलित पाठ्य-प्रणाली को जान लेना चाहिए। दुर्दमनीय मुसलमानी फौजों की जगत्प्रसिद्ध विजयों का कारण हज़रत मुहम्मद साहेब की धार्मिक शिक्षा में छिपा हुआ है; उनके अध:पतन का इतिहास उनके उस समय के संकुचित विचारों और भोग-विलास की शिक्षा का द्योतक है।

भारतवर्ष के इतिहास में जिस समय हम महमूद गज़नवी के सत्रह धावों का वर्णन पढ़ते हैं तो चकित हो जाते हैं। सोमनाथ से सैंकड़ों मील दूर ग़ज़नी! उस ग़ज़नी से फ़ौज लेकर महमूद आता है; उत्तर पश्चिम के पहाड़, नदियाँ मैदान सब तै करता है; तै करके बेखटके लूट खसूट करता है, और करोड़ों रुपये का माल असबाब लेकर अपने घर को लौट जाता है। ये उपन्यास की बातें नहीं, यह इतिहास है। आज तो लोग कहते हैं—"हम आर्मस एक्ट के कारण नामर्द हो गए हैं।" उस समय तो कोई ऐसा क़ानून अस्त्र रखने के विरुद्ध न था। सोचने की बात है कि एक लुटेरा सत्रह बार आप का घर लूटने आता है; आप के पास उससे अधिक मनुष्य और शस्त्र हैं तिसपर भी आप उसको रोकते नहीं। इसके विपरीत अधिक सेना और श्रेष्ठ अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित, योरप का विजेता नेपोलियन, रूस पर धावा करता है। मास्को आकर पहुँचता है; नगर को जलता हुआ पाता है; रास्ते के

खेत सब जले हुए हैं। उसकी फ़ौज भूखी मरती है; बेचारा अपने अधिकांश रणकुशल सिपाही खो कर घर लौटता है।

भारतवर्ष और रूस के लोगों में इतना भेद क्यों? एक तो अपना घर, जायदाद, बाल बच्चे और स्वतंत्रता की रक्षा करने में इतने उदासीन, और दूसरे अपने घर को बचाने में बड़े से बड़ा बलिदान करने के लिए उद्यत हैं। जो बलिदान रूसियों ने किया, यदि वैसा ही भारतवासी भी करते तो उन्हें कभी भी महमूद के धावों का दुख न भोगना पड़ता। हिन्दुओं ने वैसा क्यों नहीं किया? इसका उत्तर उस काल की हिन्दू शिक्षा-प्रणाली से मिलेगा।

इतनी दूर क्यों जाते हो। हमारे पड़ोसी जापान के बच्चों ने जब पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त की तो अपनी योग्यता, विद्या को अपने देश की सेवा में लगा दिया। स्थान स्थान पर स्कूल कालेज खोल कर अपने अशिक्षित भाइयों को अपने बराबर बनाने की धुन में लग गए। पचास वर्ष के अन्दर उन्होंने अपने देश को खड़ा करके दिखला दिया। उसके विपरीत हमारे यहाँ योरपीन शिक्षा पाए हुए लोग अपने ही देश से घृणा करने लगे। उनको अपनी भाषा, अपना भेष, अपना रहन सहन ही अच्छा नहीं लगता; अपने देश बन्धु उनको बुरे मालूम होते हैं। नौकरी के सिवाय दूसरी उनको धुन नहीं। अपनी योग्यता, अपनी प्रतिभा को वे वेश्याओं की तरह बेचते शर्म नहीं समझते। क्या हुआ यदि तीस करोड़ में से दरजन दो दरजन देशसेवक भी निकल आए; उनका होना न होने के बराबर है। कहने का तात्पर्य्य यह है कि अपने पिछले डेढ़ हज़ार वर्ष के इतिहास को देखकर तथा आज की दशा को सामने रख कर निस्संकोच हमारे अन्दर

से यह आवाज़ उठती है—

"कहीं न कहीं कोई न कोई भारी त्रुटि हम में है।" आज भी हमारा समाज रेत के दानें की तरह बिखरा हुआ है। तीस करोड़ केवल नाम लेने के लिए हैं; उनकी कुछ भी हक़ीक़त नहीं. उनमें कुछ भी बल नहीं। यद्यपि दूसरों ने हमें अपने ढंग की शिक्षा देकर, संगठन कर, हम में बल उत्पन्न कर अपनी कार्य्यसिद्धि की है परन्तु हमारे अपने लिए उस बल ने कुछ भी काम नहीं किया। जब संगठन और बल भरने वाली बाहरी शक्तियाँ अलग हो जाती हैं तो हम फिर बिखरे हुए रेत के कणों की तरह गिर पड़ते हैं।

भारतीय समाज में संघशक्ति का ऐसा अभाव क्यों है? उसके सभ्यों में सर्वहित कार्य्यों के लिए बलिदान का भाव क्यों नहीं पाया जाता? इन प्रश्नों का उत्तर तथा भारतीय जन-समाज की अपने देश के प्रति उदासीनता का कारण समझने के लिए हमें पिछले दो हज़ार वर्षों के भारतीय साहित्य पर दृष्टि डाल लेना काफी होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वैदिक काल के आर्य्यों की शिक्षाप्रणाली में संगठन शक्ति को बहुत बड़ा स्थान दिया गया था; क्योंकि यदि ऐसा न होता तो वे भारतीय साम्राज्य की स्थापना कैसे कर सकते थे—वेदों के बहुत से मंत्र संघशक्ति की महिमा का प्रतिपादन करते हैं—परन्तु यह बात भी स्पष्ट है कि बौद्धों के समय के बाद या उस से पहिले (क्योंकि इसका ठीक ठीक पता लगाना बड़ा कठिन है) भारतीय शिक्षाप्रणाली में 'पृथग्भाव Isolation' ने स्थान ले लिया था। बौद्धों के समय के बाद तो इसकी प्रबलता मालूम होती है। इस 'पृथग्भाव' के सिद्धान्तानुसार व्यक्ति अपने आपको समाज से अलग कर सारी उन्नतिओं का केन्द्र अपने

आपको मान, केवल अपने ही कल्याण की चेष्टा में रत रहना अपना धर्म समझने लगा। 'संसार' और 'समाज' के प्रति जो उसके कर्तव्य थे, वे बन्धन समझे जाने लगे। मनुष्यत्व-लाभ करने के उच्च साधन—गृहस्थ सम्बन्धी संग्राम—को 'जंजाल' की उपाधि दी गई। राज्यकार्य्य सेनासाज, किलेबन्दी, युद्ध विद्या आदि देशहितकर कार्य्य 'जगलीपन' की गणना में कर दिए गये। शिक्षा का सब से बड़ा उद्देश्य 'No Law सब नियमों से रहित' अर्थात् 'जीवन मुक्त' हो गया।

चरम सीमा पर पहुंचे हुए इस व्यक्तिवाद की शिक्षा ने भारत की सब नसें ढीली कर दी है। हमारा पिछले दो हजार वर्षों का साहित्य इसी रंग में रगा हुआ है। हमारी शिक्षा का सब से बड़ा आदर्श 'त्याग' और 'जीवन मुक्त' बन गया। पाठशालाओं में इसों की शिक्षा भिन्न भिन्न रूप में दी जाने लगी। चाहे कोई मतावलम्बी हो, चाहे किसी आचार्य्य का शिष्य हो, किन्तु उसकी शिक्षा का अन्तिम स्वर यही हो गया। जाति की जाति इसी रंग में रंगी गई। कवियों ने इसी पर कविता की, साधु लोग घूम घूम कर इसी का उपदेश देने लगे; लेखकों ने इस ही पर बड़े बड़े पोथे लिखे। जिस पुस्तक को उठाओ उसमें यही राग अलापा गया है। सब यही कह रहे हैं—"ससार कुछ नहीं; गृहस्थी सब जंजाल है।"

इस व्यक्तिवाद का भयङ्कर प्रभाव भारत पर पड़ा। लोगों ने जब यह समझा कि उन्होंने सब से उच्च आदर्श पा लिया तो उनकी उन्नति रुक गई। सामाजिक संगठन शक्ति का जो दृढ़ सीमेन्ट था, वह कमज़ोर हो गया। सामाजिक समुदाय को आपस में मिलाने की जो ताक़त थी वह निकल गई। सभी फ़िलासोफ़र हो गये। जब मनुष्य अपने दिमाग़ में जांच

ले कि—"मेरे लिये कोई क़ानून नहीं है ; मैं क़ानून से मुक्त हूँ" तो या तो वह देवता ही बन जाता है या असुर ही। अधिक रुचि असुर बनने की ओर होती है । भारत में उस व्यक्तिवाद का सहारा लेकर उन व्यभिचारों का धर्म के नाम पर प्रचार किया गया जिनके ज्वलन्त प्रमाण आज भी हमारे पवित्र तीर्थ स्थानों में मौजूद हैं । "जीवन मुक्तों के लिये कोई सामाजिक नियम नहीं ; उनके लिये कोई पाप पुण्य नहीं ।" इस प्रकार की भयङ्कर गोलाबारी के सामने भारतीय सदाचार की दृढ़ दीवारें गिर गईं । ब्रह्मचर्य्य और ऊर्ध्वरेताओं की प्रशंसा करने वाले व्यभिचारिओं की पूजा करने लगे । जिन नीरोग और निर्दोष नियमों के सहारे प्राचीन आर्य्यों ने भारतीय राष्ट्र को संगठित किया था, इस राष्ट्र के अभेद्य दुर्ग को इन 'जीवन मुक्तों' ने अपने व्यभिचार की ठोकरों से जर्जर कर दिया । कुलाचार भ्रष्ट कोई जाति खड़ी नहीं रह सकती ।

किसी राष्ट्र को सुरक्षित रखने के लिये यह आवश्यक है कि वहां की प्रजा उत्फुल्ल नयन (wide awake) अर्थात् अपने आंख कान खुले रखे । यदि वह अपना अस्तित्व मान और प्रतिष्ठा के साथ क़ायम रखना चाहती है तो उसे अपने पड़ोसियों की उन्नति अवनति का ध्यान रखना चाहिये । भारत के पश्चिम, अरब के रेगिस्तान, में एक ज़बरदस्त शिक्षक का प्रादुर्भाव हुआ । उसकी शिक्षा से मानो ज्वालामुखी फट पड़ा । उस ज्वालामुखी की लपटें फारिस और स्पेन तक पहुंचीं। इतना ज़बरदस्त भूचाल आया परन्तु भारतीय संसार ने करवट तक न बदली । यहाँ के लोगों की बुद्धि बिगड़ गई थी । इनके स्कूलों में 'संसार असार' की शिक्षा दी जाती थी और 'पृथग्भाव' का सिद्धान्त ज़ोरों पर था । यहां के बच्चे व्यक्तिवाद के सूत्र

पढ़ कर सब प्रकार के 'बन्धनों' से मुक्त होने की चेष्टा में थे। यहां के विद्वानों के दिमाग़ में गुरुडम का भूत भी घुस गया था। ये समझते थे कि जीवन का सब से उच्च रहस्य इन्होंने जान लिया है; अब किसी से कुछ सीखने की आवश्यकता नहीं। इसलिए वे मस्त सोते रहे। 'अप्रतिबन्ध non-resistance' के सिद्धान्त ने सैकड़ों रूप धारण कर यहां के लोगों को अपना शिष्य बना लिया। कई शताब्दियों तक बिना रोक टोक के यह शिक्षा भारत में फैलती रही। परिणाम यह हुआ कि जब सार्वलौकिक स्वार्थ (common interest) की ज़बरदस्त जञ्जीरों से बँधे हुए मुसलमान योद्धाओं ने भारत पर हमला किया तो यहां की प्रजा उदासीन भाव से उनको देखती रही। महमूद ग़ज़नवी के सत्रह धावे भारत पर हुए, और यहाँ की जनता ने उसके प्रतीकार में कुछ नहीं किया। इसमें आश्चर्य्य की कोई बात नहीं। जिस देश में शताब्दियों तक कायरता, अकर्मण्यता, व्यभिचार को वैराग्य, त्याग और जीवनमुक्त की उपाधिओं से विभूषित कर आदर्श रूप बना दिया गया था, उस देश के बच्चे यदि जूतों से पिटने पर भी उसको 'माया' ही कहें तो आश्चर्य्य ही क्या है। आज भी उन्हीं गन्दे, लचर, कायरतापूर्ण सिद्धान्तों पर पले हुए लाखों भारतीय विद्यमान हैं जो अपने, अपनी समाज, अपने देश के ऊपर होते हुए अन्याय के विरुद्ध एक अंगुली भी नहीं उठायेंगे।

यहां पर स्वाभाविक ही यह प्रश्न उठता है कि भारतीय धर्माचार्य्य शिक्षक इन देशघातक सिद्धान्तों के प्रवर्तक और प्रचारक कैसे बन गए? इसका उत्तर सहज है। जब भारतीय जाति में ऐश्वर्य की वृद्धि हो गई; चक्रवर्ती राज्य सुख मिलने लगा; सब प्रकार के भोगों की प्राप्ति होने लगी तो, वही

संघशक्ति—वही नीरोग बलवर्द्धक शिक्षा—जिसके आधार पर सब सामाजिक उन्नति तथा समृद्धि निर्भर है, उनको बन्धन समान बोध होने लगी। आरण्यकों के लिखने वाले उपनिषद्-कारों ने आत्मा सम्बन्धी विचार प्रगट कर ही दिये थे; वह सामग्री इनके लिए आवश्यकता से अधिक काफी थी। मनुष्य में पशुपन अधिक है। वह खुला घूमना चाहता है। स्वाभाविक ही ऐसे सिद्धान्तों का शीघ्र प्रचार होने लगा। यद्यपि उपनिषदें आध्यात्मिक शिक्षा के सब श्रेष्ठ सिद्धान्तों का प्रतिपादन करती हैं और उनका अभिप्राय संसार में शान्ति फैलाना है, परन्तु जाति के वे उच्च साहित्यरत्न अनधिकारियों के लिए नहीं हैं। फ़ुरसत के समय बैठ कर मनुष्य उन रत्नों को देख देख भले ही मन को शान्त कर ले परन्तु व्यवहारिक संसार में जीवन निर्वाह करने के लिए किसी और ही चीज़ की आवश्यकता है। इससे हमारा अभिप्राय कभी भी अपने उन पूज्य ग्रन्थों का अनादर करना नहीं है। हम केवल यह कहते हैं कि भारतीय जनता ने उनसे यथोचित लाभ नहीं उठाया। यहाँ उनके उलटे पुलटे अर्थ लगा कर व्यक्तिवाद का सिद्धान्त निकाला गया, और धीरे धीरे शारीरिक, सामाजिक और राजनैतिक ज़िम्मेदारिओं की जड़ों पर कुल्हाड़ा चला कर बिल्कुल 'ब्रह्म ही ब्रह्म' बनने का उपदेश दिया जाने लगा। जब सब ही ब्रह्म हो गये तो किसी का हुक्म मानना कैसा? बस खुल्लो छुट्टी हो गई; संघशक्ति का बीज नाश हो गया।

यही कारण है कि अकबर और औरंगज़ेब के हिन्दू सेनापतियों ने जो कार्य्य अपने प्रभुओं के लिए किये, उन्हें वे अपने देशहित के लिए न कर सके। डण्डे के ज़ोर से उनसे जो चाहे करवा लीजिए परन्तु जब ज़रा भी उन्हें अपनी मर्ज़ी पर छोड़

दिया जाए तो उनकी नसें ढीली होने लगती हैं। यही कारण है कि राष्ट्रीय संकट आने पर यहां नेता तत्काल सामने नहीं आते। महमूद, तैमूर, नादिर, अहमदशाह आदि योद्धाओं के धावों की भांति सैकड़ों विपत्तियें भारत पर आईं; पर यहां कोई नीति कुशल नेता खड़ा हो नहीं हुआ। सारे भारतीय संकट के इतिहास में महाराणा प्रताप, गुरु गोविन्द सिंह जी और वीर केशरी शिवाजी, इन तीन रणपुङ्गवों का नाम सामने आता है। बस हो गया! एक लीडर मर जाता है तो दूसरा उसकी पूर्ति करने वाला खड़ा नहीं होता। जो एकाध महापुरुष कभी संकट दूर करने को उपस्थित हो भी गए तो वे केवल अपवाद रूप हैं। यहाँ उपक्रम (initiative) की बड़ी कमी है।

भारतीय समाज को उस सैंकड़ों वर्षों की बीमारी से छुड़ाने के लिए, तथा व्यक्तिवाद के स्वार्थरञ्जित सिद्धान्त के ज़हरीले प्रभाव से भारत की जनता को निकालने के लिए किस प्रकार की शिक्षा-प्रणाली की आवश्यकता है? इस कठिन कार्य्य को मैंने हाथ में लिया है। ईश्वर की दया से भीषण दुर्भिक्षों के कारण झूठे ब्रह्मवादिओं और स्वार्थी जीवन् मुक्तों के होश बहुत कुछ ठिकाने आ गए हैं; रास्ता बहुत कुछ साफ़ हो चुका है। कुलिओं से बदतर 'प्रतिष्ठा' पाने पर हमारा गुरुडम भी किसी कदर भग चुका है; झूठे त्याग की गप्पों का प्रभाव भी अब उठता जाता है; संघशक्ति सम्पन्न पाश्चात्य जातिओं की हवा भी हमें कुछ लग गई है; अपने देश के निर्धन भाइओं की शिक्षा के लिए लोग अपनी जेबों में हाथ भी डालने लगे हैं। ऐसे समय में शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण विषय पर जो कुछ कहा जायगा, मुझे पूर्ण आशा है कि मेरे देशबन्धु उसे ध्यान से सुनेंगे।

२—शिक्षा की व्याख्या।

सब से पहिले हमें शिक्षा अथवा शिक्षित व्यक्ति इन शब्दों की विवेचना करने की ज़रूरत है। इन शब्दों का अभिप्राय भिन्न भिन्न समाज के लोग भिन्न भिन्न अर्थों में लेते हैं। अधिकांश लोग तो ऐसे हैं जो लिखने पढ़ने की जान कारी को ही शिक्षा समझते हैं, कुछ बैठने उठने के ढङ्ग, बोलने चालने के सलीके को ही अच्छी शिक्षा समझते हैं; बहुत से अधिक विषयों पर वार्तालाप करने वाले को ही शिक्षित की पदवी देते हैं। जैसे जैसे ख़्यालात, जैसी सभ्यता जिस समाज में है उसी के अनुसार उसकी कसौटी भी शिक्षा के सम्बन्ध में है। पर यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो संसार में कोई मनुष्य अशिक्षित नहीं कहला सकता। प्रकृति माता प्रत्येक समय, प्रत्येक दशा में हम सब को कुछ न कुछ शिक्षा दे रही है। जिनको हम अत्यन्त असभ्य, निपट गंवार कहते हैं वे भी कुछ न कुछ शिक्षित हैं। भारत के गोंड़, भील, जिनको हम जंगली समझते हैं, असल में वे जंगली नहीं हैं। उनकी समाज में शिक्षा का अपना नियम है। उनके यहां बच्चों को आरम्भ से जीवन सम्बन्धी शिक्षा दी जाती है। शिकार करना, युद्ध कौशल, झोपड़ा बनाना आदि जो उनकी साधारण आवश्यकतायें हैं उनकी शिक्षा का आदर्श बस वहीं तक ख़तम हो जाता है। उनके यहां भी समाज के कुछ नियम होते हैं जिनको वे अपने बच्चों को सिखलाते हैं। उन नियमों से अनभिज्ञ मनुष्य उनके यहां अशिक्षित समझा जाता है।

इस लिए प्रत्येक देश अथवा प्रत्येक समाज में शिक्षा का आदर्श समाज के आदर्शों के अनुसार बदलता जाता है। जिनको हम अशिक्षित जंगली कहते हैं, वे हमको जंगली असभ्य कह सकते हैं। हमारे यहां बहुत से ऐसे लोग हैं जो

मांस खानेवालों को जंगली समझते हैं। उनके ख्यालशरीफ़ में मांस खानेवाला कभी सभ्य कहला ही नहीं सकता। करोड़ों मुसलमान ऐसे हैं जो सुअर के मांस खाने वाले को जंगली पशु से भी बदतर समझते हैं। योरप और अमरीका के करोड़ों कट्टर ईसाई भारतवर्ष के लोगों को महा असभ्य ख्याल करते हैं और हमको सभ्य बनाने के लिए करोड़ों रुपया खर्च करते हैं। इस प्रकार भिन्न भिन्न प्रकार के आदर्शों से रंगे हुए लोग केवल अपना ही रंग देखते हैं; दूसरा रंग उनको दिखाई ही नहीं देता।

ऐसी दशा में शिक्षा सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करनेवालेको उन पक्षपातों और संकुचित विचारों से बहुत बचना होगा जो शुद्ध कल्पना के भारी बाधक हैं। आज उन तंग भावनाओं और मज़हबी वैमनस्यों के दिन नहीं रहे। अब संसार उस शिक्षा का उत्सुक है जो झगड़ों को मिटानेवाली और सार्वदैशिक उन्नति का कारण हो। प्रत्येक समाज में शिक्षा सम्बन्धी उलटे पुलटे विचारों के होने के कारण ही आपस में झगड़े और फ़साद फैले हुए हैं। प्रत्येक देश अपने बच्चों को अपने आदर्शानुकूल शिक्षा देता है। उस शिक्षा में पले हुए लोग उसी को ठीक समझ दूसरों के आदर्शों को तुच्छजानकर, जहाद का झण्डा उठाते हैं। इसी से बड़ी खून ख़राबी होती है।

शिक्षा क्या है? यह प्रश्न है जिस पर हमें विचार करना है। यद्यपि प्रकृति माता बराबर शिक्षा दे रही है, यद्यपि जंगली से जंगली जातियां भी माता की उस शिक्षा से विहीन नहीं हैं, तथापि परमात्मा ने हम मनुष्यों को दो ऐसे साधन-अन्तःकरण और बुद्धि—दिए हैं जिनके द्वारा हम प्रकृति माता के रहस्यों का बहुत जल्द आनन्द ले सकते हैं, तथा अपने कुछ

सुख 'उन्नति अवनति' के कारणों को शीघ्र जान सकते हैं। हमारे विद्वानों ने शिक्षा विहीन मनुष्य की तुलना पशु से की है, जो बिलकुल ठीक है। पशु हज़ारों, लाखों वर्षों से जंगलों में रहते चले आए हैं, उनका जीवन स्वार्थ का जीवन है। जो बलवान् है, जिसके नख दांत तीखे और दृढ हैं, वही सरदार है; वह अपने से कमज़ोर पशुओं को चाहे मारे, चाहे काटे। वहां मक्कारी ख़ूब चलती है, और भोलापन नाश का कारण है। वहां बलवान का ही न्याय है; कमज़ोर का कोई ठिकाना नहीं। लाखों वर्षों से जंगलों का यही कानून है; उनमें से न तिल भर बढ़ा है न घटा है। यदि मनुष्य को भी Beast of the jungle जंगली जानवरों की तरह रहना है तो फिर कोई किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं। क्योंकि वह शिक्षा तो हमको पहले से ही भरपूर मिल चुकी है। हां यदि उस अन्धकार मय राज्य से निकलना है तो अलबत्ता किसी उद्योग की आवश्यकता है। इसलिए जो उद्योग हम में से पशुपन निकाल दे; मक्कारी दूर कर दे; स्वार्थ नष्ट करदे; अन्यायी बलवान का राज्य हटा दे; प्रकृति माता के भोगों का न्याय पूर्वक भोग करना सिखा दे, उस उद्योग का नाम शिक्षा है। शिक्षा बहुत अच्छी अंग्रेजी या संस्कृत बोलने में नहीं है, शिक्षा काले गोरे पीले चेहरे में नहीं है, शिक्षा बहुत से विद्वानों के नाम रट लेने में नहीं है, शिक्षा लम्बे लम्बे व्याख्यानों में नहीं है; शिक्षा टोपो, अचकन पतलून में नहीं है, शिक्षा बहुतसा धन संग्रह करने या बड़ी डिग्रियां प्राप्त करने में नहीं है—शिक्षित वह है जिस में पशुपन का अभाव और मनुष्यत्व की वृद्धि हो। जैसे चारों वेदों से लदा हुआ गधा पण्डित नहीं हो जाता, ऐसे ही बड़ी बड़ी डिग्रियों का धारण करनेवाला शिक्षित नहीं कहला सकता। फोनोग्राफ़ में हम बड़े बड़े लेक्चर, उपदेश, राग भर सकते हैं इससे

'फोनोग्राफ़ 'महाशय' नहीं बन सकता। इसी प्रकार शिक्षा की पहचान दिमाग़ में ठसाठस भरी हुई पुस्तकों से नहीं होती बल्कि व्यक्ति के उस व्यवहार से शिक्षा की पहचान होती है, जो वह दूसरे प्राणियों के साथ करता है। आप अपने नित्य के जीवन में 'बगल में छुरी मुंह में राम राम' कहावत को चरितार्थ करनेवाले लोगों से मिले होंगे, जो प्राणियों की सगोत्रता पर आपको लच्छेदार 'सरमन' सुनादें; और यदि अवसर मिले तो आपको समूचा ही निगल जायें। हम आश्चर्य्य करते हैं कि फलाना फलाना आदमी बी० ए० है, एम० ए० है पर उसमें ज़राभी आत्मिकबल नहीं। इसमें आश्चर्य्य की क्या बात है। बी० ए०, एम० ए०, पास करने से यदि आत्मिक बल नहीं आया तो समझ लो कि उस शिक्षा-प्रणाली में आत्मिकबल को स्थान नहीं मिला। यदि आप किसी स्कूल में पढ़नेवाले विद्यार्थी से पूछें कि उसकी पढ़ाई का उद्देश्य क्या है—अथवा वह पढ़कर क्या करेगा—तो उसका उत्तर वह सिवाय नौकरी करने के और क्या दे सकता है? भारतीय शिक्षाप्रणाली की बुनियाद 'नौकरी पर है इस लिए उससे 'आत्मिक बल' को आशा रखना निरर्थक है।

शिक्षा से विहीन पशुपन का दूसरा स्वरूप देखिए। हाथी कितना बड़ा भारी पशु है। उस हाथी के सिर पर एक छोटा सा महावत बैठ जाता है और अंकुश से हाथी को मारता है। हमें देखकर ताज्जुब होता है। हाथी इतना बड़ा बलशाली पशु, उसको काबू में करता है छोटा सा आदमी! इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं। वह हाथी चाहे कितना ही बड़ा है पर वह है तो पशु। पशु का लक्षण यही है कि जो अपनी शक्तियों को न जाने। इसलिए जिस समय आर्य्य विद्वानों ने यह फैसला किया—"शिक्षा विहीन पुरुष पशु के तुल्य है" तो उनका अभि-

प्राय यह भी था कि शिक्षित मनुष्य वह है जो अपनी शक्तियों को पहचानता है। जो शिक्षा मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों की पहचान नहीं कराती, वह शिक्षा नहीं है। मनुष्य को परमात्माने गज़ब की शक्तियां दी हैं और प्रकृति का असीम भण्डार सामने धर दिया है। शिक्षा द्वारा मनुष्य को उन शक्तियों का विकास होना चाहिये। जो शिक्षा कमलरूपी मनुष्य की बुद्धि को खिला नहीं सकती; जो मनुष्य को अपना स्वरूप पहचानने में सहायता नहीं देती, वह शिक्षा कदापि शिक्षा नहीं कहला सकती। संसार में इसी एक कमी के कारण करोड़ों आत्मायें सिसक सिसक कर चल दीं। क्यों? इसलिए कि वे अपने स्वरूप को न पहचान सकीं। उन्होंने सदा अपने आप को छोटा समझा; सदा अपनी अयोग्यता पर विश्वास किया; सदा अपने को दुर्भाग्य ख्याल किया, परिणाम यह हुआ कि वे सदा दुख सागर में गोते खाते रहे। उनमें योग्यता थी; थोड़े से परिश्रम से वे अपने आप को उच्च बना सकते थे, पर उन्हें ऐसी शिक्षा ही न मिली थी। बेचारे क्या कर सकते थे।

और उदाहरण देखिये। एक खेत में बाड़ बना कर पांच चार सौ बैल बन्द कर दीजिये। वे बैल चुपचाप उस बाड़ में बन्द रहेंगे। क्या उन बैलों में यह शक्ति नहीं है कि आपकी बाड़ को तोड़ फोड़ दें? क्या पांच सौ बैलों के सींग आपकी मामूली बाड़ को तोड़ने के लिए काफी नहीं हैं? वे निस्सन्देह उस बाड़ के चिथड़े उड़ा सकते हैं पर इतना उनको ज्ञान नहीं। वे अपनी संयुक्त शक्तियों का बल नहीं जानते इसलिए शिक्षा का एक बड़ा भारी अंग यह भी है कि उसके द्वारा मनुष्य कठिनाइयों को दूर भगाने के योग्य बन सके; न कि हाथ पर हाथ धर कर ईश्वर के सहारे बैठ जाए। जिस शिक्षा में 'सूझ'

की शक्ति नहीं; तो बुद्धि के विकाश में सहायता नहीं देती; जिस में संकट दूर करने के उपाय ढूंढ निकालने का बल नहीं, वह शिक्षा कोरी लपोड़शंख है। ऐसी शिक्षा से किसी व्यक्ति, किसी देश का उपकार नहीं हो सकता। पशु सब प्रकार के कष्ट सहते हैं, पर वे उन दुखों को दूर करने का कुछ उपाय नहीं कर सकते। उनमें बुद्धि नहीं। वे अपने दुखों को दूर करने में हम पर निर्भर हैं। हमको ईश्वर ने बुद्धि दी है। यदि हम भी अपने दुख दूर करने में अपनी सहायता आप नहीं कर सकते तो फिर हम में और पशुओं में ज़रा भी भेद नहीं है। 'निर्भरता' पशुपन का चिन्ह है। जो समाज अपने कष्ट दूर करने में दूसरों पर निर्भर है, वही समाज अशिक्षित है। जिस समाज स्वावलम्बन की शक्ति नहीं; जिसके सभ्य अपनी योग्यताओं से फायदा उठाना नहीं चाहते, जिनमें संकटों का मुकाबिला करने का बुद्धिबल नहीं, वे अशिक्षित हैं। सिर पर सींग होने से कोई पशु नहीं होता, बल्कि पशुपन के लक्षण होने से, बिना सींग वाला मनुष्य नामधारी व्यक्ति भी, पशु हो है। ८

जिन दिनों मैं अमरीका में पढ़ा करता था तो मुझे प्रायः अपने देशबन्धु सिक्ख भाइयों की देखभाल रखने के लिए उनके डेरों पर जाना पड़ता था। अमरीका प्रवासी ये सिक्ख लोग शिक्षा विहीन होने के कारण कुलिओं का काम करते हैं उनके लिए काला अक्षर भैंस बराबर है। अधिकांश उनमें से अपना नाम लिखना भी नहीं जानते। अपने घरवालों को चिट्ठियां भेजने के लिये उन्हें दूसरों की सहायता लेनी पड़ती हैं। सोचने की बात है कि उस भलेमानस की क्या दशा होगी जो अपनी स्त्री को समाचार भेजने के लिए दूसरों पर अवलम्बित हैं, और इस अभागे भारत में ऐसे करोड़ों मनुष्य हैं। उन सिक्खों को जब कभी कोई चिट्ठी लिखवानी होती थी तो वे मुझसे

लिखवाया करते थे। एक बार ऐसा हुआ कि कारणवश मैं उनके डेरे पर न जा सका। उन्होंने किसी नावाकिफ़ चलते पुरज़े को बुलाकर उससे, अपने घर भेजने के लिए, मनीआर्डर लिखवाए। उस धूर्त ने उन मनीआर्डरों को अपने घर के पते से भेज झूठीमूठी रसीदें बना कर उनको दे दीं। वे मूर्ख क्या जानते थे कि उनके पसीने से कमाया हुआ धन एक बदमाश आदमी की धूर्तता से इस प्रकार छिन जायगा? परन्तु अविद्या का टैक्स बड़ा भयङ्कर है। जो इस अविद्या देवी के राज्य में रहता है उसको अपनी खाल भी इस टैक्स में देनी पड़ती है। अमरीका से हज़ारों मील दूर भारत! वहां से चिट्ठी आने जाने में अढ़ाई तीन महीने चाहियें। इतने दिनों के बाद उन भोले सिक्खों को मालूम हुआ कि वे ठगे गए, पर—'अब पछताए क्या होत है जब चिड़ियां चुग गईं खेत।' वह धूर्त कहीं का कहीं चला गया। करोड़ों मनुष्य दुनियां में ऐसे हैं जिनके पसीने का कमाया हुआ धन निखट्टू लोग मुफ़्त में ठग कर ले जाते हैं और उन पशुतुल्य मनुष्यों को मालूम भी नहीं होता कि उनका धन कहां जाता है। ज्येष्ठ आषाढ़ के दिनों में कष्ट सह कर अन्न पैदा करने वाले भूखों मरते हैं और चालाक बदमाश लोग मौज में बैठे चैन उड़ाते हैं। ये सब अविद्या देवी के टैक्स हैं। इसीलिये हमारे शास्त्रकारों ने जहां पांच क्लेशों का ज़िकर किया है वहां 'अविद्या' को सबसे मुख्य रक्खा है। जितनी सामाजिक बीमारियां पैदा होती हैं उन सबका कारण अविद्या है।

उस अविद्या से निकलने के लिये सब से पहला साधन लिखना पढ़ना सीखना है। यद्यपि अविद्या सत्सङ्ग से भी दूर हो सकती है, किन्तु उससे पहले लिखना पढ़ना सब को सीखना चाहिये। यही साधन है जिसके द्वारा 'शिक्षा' के पवित्र भवन में

प्रवेश हो सकता है। लिखना पढ़ना जान लेना शिक्षा नहीं है। यह केवल सरस्वती देवी के मन्दिर में प्रवेश करने की तय्यारी करना है। ऐसे भी लाखों अभागे हैं जो श्री गंगाजी के किनारे जाकर उसके पवित्र जल में शराब को बोतलें डाल डाल ठंडी कर-पीते हैं। इसी प्रकार बहुत से लोग पढ़ लिख कर भी 'शिक्षा' के मन्दिर में प्रवेश नहीं करते। यह अपराध उनका है। वे उसी लिखने पढ़ने को शिक्षा समझ फिर उसका बुरा प्रयोग करते हैं। यह और बात है। बुरा प्रयोग प्रत्येक वस्तु का हो सकता है। उस बुरे और अच्छे प्रयोग की पहिचान, उसके गुण दोष समझने के लिए-बुद्धि की गांठें खोलने के लिए—ही शिक्षा के मन्दिर में प्रवेश करने की आवश्यकता है।

इसलिये शिक्षा सम्बन्धी प्रश्न पर विचार करने वालों को "लिखने पढ़ने का ज्ञान" तो मामूली बात समझनी चाहिये। यह तो भूमि तय्यार करने का आरम्भ मात्र है। इसके बिना तो कुछ हो ही नहीं सकता। आप इसको प्रारम्भिक शिक्षा के नाम से पुकारिये। परन्तु मैं शिक्षा का प्रारम्भ उस साधना—उस प्रणाली—से करता हूं जिसके द्वारा पशुपन का नाश और मनुष्यत्व का विकाश होने लगता है। शिक्षित मनुष्य का सब से पहला गुण यही है कि उसमे स्वार्थ की मात्रा कम हो, क्योंकि पशुओं के राज्य में स्वार्थ को ही प्रधानता पाई जाती है। जिस शिक्षा द्वारा मनुष्य सार्वजनिक हितों को सर्वोपरि समझ कर अपने स्वार्थ को उनके सम्मुख तुच्छ समझता है, वहीमनुष्य हमारी परिभाषा में शिक्षित होने की पहिली शर्त को पूरा करता है। मुझे विश्वास है कि आप लोग शिक्षा के पहले अङ्ग को महिमा भली प्रकार समझ गये होंगे।

शिक्षा का दूसरा अङ्ग 'विचार शक्ति' का विकाश है। पशुओं में "भेड़ चाल" प्रसिद्ध है। जिस समाज के सदस्य अपनी

विचार शक्ति नहीं रखते, जो "अन्धेनैवनीयमाना यथान्धाः" वाली कहावत को चरितार्थ करते हैं, वे कदापि भी शिक्षित नहीं कहला सकते। उदाहरण के तौर पर यदि मैं किसी पेड़ की जड़ में एक कील गाड़ कर, थोड़ा सा सेन्दूर इर्द गिर्द लगा, एक फूलों की माला उसमें टांग दूं तो जितने देखने वाले उधर से निकलेंगे वे बिना कारण समझे हुये ही उस कील को पवित्र जान हाथ जोड़ वहां फूलों की माला लटकाते जायेंगे। क्योंकि उनके ख़्याल शरीफ़ में जिस व्यक्ति ने पहले माला लटकाई है, उसने अवश्य ही कुछ सोच समझ कर ऐसा किया होगा। बस यही उनकी दलील है। इसी को "भेड़िया धसान" कहते हैं। हमारे देश में बहुत से शिक्षित नामधारी मनुष्य इसी बिमारी के शिकार हैं। यदि किसी ने बहका दिया कि फ़लां फ़लां मनुष्य बड़ा भारी सिद्ध और योगी है, तो बस उसके दर्शनार्थ झट दौड़ने लगते हैं। अभी कुछ ही समय व्यतीत हुआ होगा कि जायस ग्राम के एक मुसलमान फकीर के विषय में यह ग़ौग़ा उड़ा था कि वह सब प्रकार की बिमारियों का इलाज करता है। बस फिर क्या था, सब छोटे बड़े, औरत मर्द, दूर दूर से उस फ़कीर के पास जाने लगे। सैकड़ों यात्री नित्य जाते और फ़कीर का जूठा पानी ले कर चले आते। भारत वर्ष का कोई ही प्रान्त ऐसा होगा जहां के लोग उस धोखेबाज़ फकीर से बचे हों। अन्त को जब बिमारी का इलाज न हुआ और मनोकामना निष्फल हुई तो कहीं जाकर इस मूर्खता ने पिण्ड छोड़ा।

यही पशुपन है। जैसे पशु एक दूसरे के पीछे बिना सोचे समझे चले जाते हैं, और कारण कार्य्य के सम्बन्ध को नहीं समझते, ऐसे ही जो मनुष्य अपनी बुद्धि से काम नहीं लेते, वे पशु ही हैं। इसलिये शिक्षित मनुष्य का दूसरा गुण यह

होना चाहिये कि उसमें 'विचार शक्ति' हो। वह दूसरों की देखा देखी कोई काम न करे, बल्कि सदा ही अपनी बुद्धि को काम में लाकर, हित अहित विचार, किसी कार्य्य में हाथ डाले। परमात्मा ने हम को बुद्धि इसीलिये दी है कि हम इसका प्रयोग करना सीखें। यही पशु और मनुष्य में भेद है। पशु हज़ारों वर्षों से जैसे रहते सहते आये हैं वैसे ही अब भी उनकी चाल ढाल है। शिक्षा द्वारा आवश्यकता इस बात की है कि बुद्धि का विकाश हो और हम काल की गति के अनुसार उन्नति का पथ अवलम्बन करें। यदि हमारी शिक्षा हम को देशाकाल अनुसार उन्नति के मार्ग पर नहीं चलाती तो वह 'शिक्षा' शिक्षा नहीं कहला सकती।

शिक्षा का तीसरा अङ्ग अपने स्वरूप का पहचानना है। शिक्षित मनुष्य को मालूम होना चाहिये कि उसके जीवन का उद्देश्य क्या है? वह संसार में किस लिये आया है? ईश्वर ने उसको दुनियां में किस मतलब के लिये भेजा है? खाना, पीना, बच्चों को पालना, इन्द्रिय सुख—ये बातें तो पशु में भी विद्यमान हैं, यदि हमने भी पढ़ लिख कर ऐसे ही जीवन व्यतीत किया तो हमारा पढ़ना लिखना निरर्थक है। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी दैवी शक्तियों को विकाश कर उनको दूसरों की सेवा में लगावें। हम अपने आप को केवल पेट भरने वाला भारवाहक पशु न समझें। परमात्मा की सृष्टि में प्रत्येक छोटी बड़ी वस्तु का कोई न कोई उद्देश्य है। ईश्वर ने कोई चीज़ निरर्थक नहीं बनाई। जो मनुष्य अपने आप को कुछ नहीं समझते, वे बड़ी भूल करते हैं। उनको विश्वास करना चाहिये कि उनके अन्दर ईश्वरदत्त ग़ज़ब की शक्तियां हैं। यदि वे शिक्षा द्वारा अपने स्वरूप को पहचान लें तो संसार में महान् से महान् कार्य्य सम्पादन

कर सकते हैं। ज़रूरत केवल इस बात की है कि बीज रूप उनकी शक्तियों को श्रेष्ठ विचार रूपी खाद पहुँचाई जाये। ऐसा होने पर वे बीज वृक्ष के रूप में प्रकट होकर संसार को मधुर फल प्रदान करते हैं।

अब आप लोग समझ गये होंगे कि शिक्षा से मेरा क्या अभिप्राय है। हमारे देश का करोड़ों रुपया संस्कृत पाठशालाओं में खरच किया जाता है; वहां से शिक्षा पाये हुये हमारे देश बन्धु शिक्षा के किसी अङ्ग की पूर्ति भी नहीं करते। पिछले हज़ार डेढ़ हज़ार वर्षों का इतिहास हमको इस बात की सूचना देता है कि जिस प्रकार की पुरानी शिक्षा प्रणाली पाठशालाओं में प्रचलित है, उसके द्वारा हमारा जातीय जीवन स्वाभाविक ढङ्ग से विकसित नहीं हो सकता। पाठशालाओं के संस्कृत पढ़े हुये विद्यार्थी आत्मिक बल से हीन, संकुचित विचारों में पड़े हुये, अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। बड़े बड़े दिग्गज विद्वान्, धाराप्रवाह संस्कृत बोलने वाले, यह नहीं जानते कि उनके जीवन का उद्देश्य क्या है। धन के हेतु अपनी आत्मा के विरुद्ध झूठी से झूठी व्यवस्था देने के लिये वे उद्यत हैं। वे नहीं जानते कि गवर्नमेन्ट क्या है? शासन किस को कहते हैं? भारतवर्ष क्यों निर्धन हो रहा है? जापान ने उन्नति कैसे की? अमेरिका की तिजारत का भारतवर्ष पर प्रभाव क्यों पड़ता है? इङ्गलिस्तान की शासनपद्धति क्या है? भारतीय समाज में फूट होने का कारण क्या है? ऐसे ऐसे आवश्यक प्रश्नों के विषय में वे कुछ नहीं जानते। अलबत्ता न्याय के अवच्छेदकावच्छिन्न और व्याकरण की फक्किकाओं में सिरपटकना खूब जानते हैं। जो दशा यूरोप के विद्वानों की १४वीं १५वीं शताब्दियों में थी, वही दशा आज हमारे संस्कृतज्ञ विद्वानों की है। यूरोप के इसाई पादरी विद्वान् उन दिनों "सुई

की नोक पर कितने फरिश्ते बैठ सकते हैं?" ऐसे जटिल प्रश्नों पर महीनों शास्त्रार्थ किया करते थे। परन्तु अपनी उस मूर्खता से यूरोप के लोग अब निकल गये। इन्होंने शिक्षा के उद्देश्य को धीरे धीरे समझना शुरू किया और आज यूरोप शिक्षा की उन्नत अवस्था में है। इसके विपरीत हमारे संस्कृत के विद्वान अभी "पत्राधारम् वृतंम घृताधारम् पत्रम् वा" घी पत्ते के ऊपर है? या पत्ता घी के ऊपर है? ऐसे प्रश्नों के हल करने में लगे हुये हैं। भला कहिये देश की उन्नति हो तो कैसे हो। आज से ५०० वर्ष पहिले जो हमारी आवश्यकताएं थीं वे आज नहीं हैं, आज से ५० वर्ष पहले जो देश की दशा थी वह अब नहीं है। हम को देश काल के अनुसार अपनी आवश्यकताओं को समझ शिक्षा का प्रबन्ध करना है। आज भारत पुराने दो हज़ार वर्ष पहले का भारत नहीं है आज यदि अमेरिका में रूई की फसल मामूली से अधिक होती है तो उसका प्रभाव भारतवर्ष पर पड़ता है! आज हमारा सम्बन्ध संसार के सभ्य देशों से हो गया है। हमारा मरना जीना इसी पर निर्भर है कि हम दूसरी जातियों के नये वैज्ञानिक आविष्कारों से परिचित हों, और अपनी शिक्षा प्रणाली को आधुनिक कला कौशल के अनुसार बना डालें। पुराने जर्जर हथियारों से काम नहीं चलेगा। अब हम को आंखें खोल कर चलना चाहिये। यदि संस्कृत पाठशालाओं में बराबर नई आवश्यकताओं के मुताबिक ग्रन्थ पढ़ाये जाते तो आज हमारी यह दुर्दशा कदापि नहीं होती।

दूसरी शिक्षा प्रणाली अङ्गरेज़ी ढङ्ग की है। बहुत से भाई यह समझते हैं कि अंगरेज़ी शिक्षा द्वारा हम शिक्षा के महान् उद्देश्य की पूर्ति कर सकते हैं। परन्तु पिछले १०० वर्षों का अनुभव हमें बतलाता है कि जिस ढङ्ग को अङ्गरेज़ी शिक्षा

भारतवर्ष में प्रचलित है उससे कभी भी देश का कल्याण नहीं हो सकता। अङ्गरेज़ी स्कूलों में शिक्षा पाये हुये लाखों भारतीय आज गवर्नमेन्ट के भिन्न २ विभागों में नियुक्त हैं हज़ारों रेलवे कर्मचारियों का काम करते हैं। इन शिक्षित लोगों से देश का क्या उपकार होता है? देश के अनपढ़, इन अङ्गरेज़ी शिक्षितों के हाथ से त्राहि त्राहि कर रहे हैं। स्टेशनों पर बाबू लोग किस निर्दयतासे तीसरे दर्जे के मुसाफ़िरों को लूटते और कष्ट देते हैं। अदालतों के मुन्शी मुहर्रिर ग़रीब किसानों के साथ कैसा अत्याचार करते हैं। जिधर देखो उधर ही अङ्गरेज़ी शिक्षितों के हाथ से भारतजनता अत्यन्त दुखी है। अङ्गरेज़ी पढ़े लिखे अपने दूसरे जाहिल देश बन्धुओं को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, और उनके साथ पशुओं से बदतर व्यवहार करते हैं। दूसरी ओर करोड़ों अशिक्षित इन बाबुओं पर तनिक विश्वास नहीं करते, व इनको ठग और मक्कार समझते हैं।

कहने का तात्पर्य्य यह है कि स्कूल और कालिजों की शिक्षा द्वारा भारत का लाभ की अपेक्षा हानि अधिक हुई है। थोड़ी सी अङ्गरेज़ी पढ़ा हुआ लड़का अपनी भाषा, भेष तथा भाव से घृणा करने लगता है। उसके लिये अङ्गरेज़ी बोलना ओर अङ्गरेज़ी सभ्यता की नक़ल करना ही शिक्षा का आदर्श है। कोट पतलून पहन, गले में कुत्ते जैसा पट्टा डाल, मुंह में चुरट ले, अपने भाइयों से घृणा करना ही शिक्षा की सीढ़ी पर चढ़ना समझता है। अपनी भाषा तो उसे अच्छी लगती ही नहीं और न अपने प्राचीन ऋषि मुनि उसकी आंखों में जंचते हैं। उसके लिये तो अच्छा बूट, सूट, अच्छी गिट पिट, और किसी दफ़्तर में क्लर्क की नौकरी ही स्वर्गीय जीवन है। रुपए के लिए घृणित से घृणित कार्य्य करने को वे उद्यत हैं। नौकरी

के लिए यदि इनको अपने देश बन्धुओं का गला भी काटना पड़े तो उसको ये लोग "ड्यूटी" के नाम से पुकारते हैं, और तनिक नहीं सोचते कि अङ्गरेज़ी के इस श्रेष्ठ शब्द का अर्थ क्या है। वेश्याओं की तरह धन के लिये शरीर और आत्मा को बेचना ही इनके लिये "ड्यूटी" है। हम लाख बार ऐसी शिक्षा को धिक्कारते हैं। अपने देश की ममता छोड़, प्यारे देश बन्धुओं से पशुपन का व्यवहार कर, प्यारी मातृ-भाषा से मुंह मोड़ना, तथा अपने देश के पहिरावे से घृणा कर, अपने पूर्व्वजों को तुच्छ दृष्टि से देखना, यदि येही इस अङ्गरेज़ी शिक्षा के फल हैं, तो हम इस को दूरही से नमस्कार करते हैं।

हम शिक्षा और शिक्षित मनुष्यों के गुणों की व्याख्या पहले कर चुके हैं। अब आप लोग समझ गये होंगे कि हम प्राचीन ढर्रे की शिक्षा प्रणाली, तथा स्कूल कालिजों की वर्त्तमान शिक्षा पद्धति इन दोनों के विरोधी हैं। हमने जो आदर्श शिक्षा का रक्खा है, जबतक उसकी पूर्ति करनेवाली शिक्षा देश में प्रचलित न होगी तब तक हमारा कल्याण नहीं हो सकता। आज हमको बहुत सोच बिचार कर काम करना है। आज हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जो हमारे पशुपन को निकाल कर देश की ममता भर, मनुष्यत्व के मार्ग पर लेजाने वाली, तथा वर्त्तमान काल की आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकती हो।

आप मुझसे पूछेंगे कि वह शिक्षा प्रणाली कौन सी है? और उसके बड़े बड़े साधन क्या हैं? अब मैं विस्तार पूर्व्वक शिक्षा के आदर्श की पूर्ति करने वाले साधनों का वर्णन करता हूं।

शारीरिक स्वतन्त्रता।

परमात्मा के रचे हुये इस ससार के सौन्दर्य्य का आनन्द लेने के लिये शरीर एक साधन है। प्रकृति के दैवी रहस्यों की गाँठें खोलने के लिये मनुष्य को परमात्मा ने शरीर रूपी मशीन दी है। यही एक नींव है जिसके ऊपर उन्नति की दीवार खड़ी की जा सकती है। जिनका शरीर निर्बल है, जिन्होंने बुरे संस्कारों का अपने अन्दर संग्रह किया है वे कभी भी जीवन का आनन्द अनुभव नहीं कर सकते। एक तन्दुरुस्त आदमी को जो सुख मिलता है, उसको बीमार आदमी कभी स्वप्न में भी नहीं जान सकता। ससार भर के ऐश्वर्य्य के साधन यदि मौजूद हों, और शरीर तन्दुरुस्त न हो, तो वे सारे भोग मिट्टी के बराबर हैं। इसी लिये आरोग्यता को हजारों सुखों की खानि कहा गया है, जो अक्षरशः सत्य है। संसार के संग्राम में प्रवेश करनेके लिये आरोग्य शरीर की पगपग पर आवश्यकता पड़ती है। पशुओं के राज्य में निर्बल को कोई स्थान नहीं मिलता। वह केवल दासता के लिये हो जीता है।

इस लिये शिक्षा प्रणाली में सब से पहला स्थान शारीरिक स्वतन्त्रता को मिलना चाहिये। इस का अभिप्राय यह है कि हमारे शरीर में स्वावलम्बन की शक्ति हो; इसमें किसी प्रकार का रोग न हो, यह अपने अधिकारों के रक्षा करने की सामर्थ्य रखता हो। जब सारी उन्नतिओं का साधन तथा आध्यात्मिक विषयों के समझने की मशीन शरीर ही है तो पाठ्य-प्रणाली में इसका स्थान सब से पहले होना चाहिये। एक विद्वान ने कहा भी है—

"शरीरमाद्यम् खलु धर्म्म साधनम्"

अर्थात् धर्म्म करने का सब से पहला साधन शरीर है। इस

की पुष्टि पर सारी भावी आशायें निर्भर हैं। कैसा ही विद्वान् क्यों न हो यदि उसका शरीर रोगी है, तो वह अपनी विद्या से पूरा लाभ नहीं उठा सकता। श्रेष्ठ विचार भी आरोग्य शरीर में ही रह सकते हैं। अङ्गरेज़ी में कहावत है—Sound mind in sound body-नीरोग विचार निरोग शरीर में ही रह सकते हैं। जिस शिक्षा प्रणाली में शारीरकि उन्नति पर ध्यान नहीं दिया जाता उसकी इमारत रेत की भीत पर है। कहने का तात्पर्य्य यह है कि शिक्षित बनने के लिये शारीरिक स्वतन्त्रता सब से पहिली सीढ़ी है।

आप शायद इसको कोई नया विचार कहेंगे, परन्तु यदि आप अपने शास्त्रों को ध्यान पूर्वक पढ़ें तो पता लगेगा कि उन्होंने शिक्षा की बुनियाद ही ब्रह्मचर्य्य पर रक्खी है। वीर्य्य रक्षा किये बिना शरीर पुष्ट हो नहीं सकता। इस हेतु स्थान स्थान पर विद्यार्थी को वीर्य्य-रक्षा का उपदेश दिया गया है; क्योंकि प्राचीन आर्य्य लोग इस बात को भली प्रकार जानते थे कि जाति के उच्च आदर्शों की पूर्ति नीरोग सन्तान ही कर सकती है। भला जिस जाति के बच्चे मन्दाग्नि से ग्रसित हैं, जो अपना खाया पिया हज़म नहीं कर सकते, वे भला बलिष्ठ विचारों को कैसे ग्रहण कर सकते हैं। उत्तम बीज के लिये अच्छी भूमि की आवश्यकता है, वहीं पर वह फल फूल सकता है। बीमार, पीले चेहरे वाले, दुबले पतले, नपुंसक लोगों के सामने यदि कर्म्मवीर बनने का पवित्र उपदेश दिया जाता है तो भला वह किस काम आ सकता है। कोई जाति शारीरिक अवस्था सुधारे विना अपने पवित्र मिशन को पूरा नहीं कर सकती। आज यूरोप की जातियां शारीरिक स्वतन्त्रता की महत्ता को समझ अपने बच्चों को बलशाली बनाने के लिये करोड़ों रुपया खरच करती हैं।

जब मैं अमेरिका में जाकर शिकागो विश्वविद्यालय में भर्ती हुआ तो मुझे व्यायाम की शिक्षा की उपयोगिता मालूम हुई। विश्वविद्यालय की ओर से एक डाक्टर केवल विद्यार्थियों की तन्दुरुस्ती देखने के लिये नियुक्त है; और कोई विद्यार्थी भी व्यायाम की शिक्षा से वंचित नहीं रह सकता। जैसे पढ़ाई के और विषय लाज़मी समझे जाते हैं, उसी प्रकार शारीरिक दशा की उन्नति भी समझी जाती है। प्रत्येक विश्वविद्यालय के साथ बड़ी बढ़िया आधुनिक साधन सम्पन्न व्यायामशाला है, जहां पर विद्यार्थीगण प्रत्येक दिन व्यायाम कर अपने अंग प्रत्यंग दृढ़ करते हैं। जो विद्यार्थी व्यायाम सम्बन्धी शिक्षा में त्रुटि करता है, वह युनिवर्सिटी की डिग्री प्राप्त नहीं कर सकता।

अब ज़रा अपने यहां के स्कूल कालिजों की दशा देखिये। अच्छे भले तन्दुरुस्त लड़के स्कूलों में जाकर बुरी आदतों को सीख जाते हैं और जब परीक्षा पास करके निकलते हैं तो उनका शरीर अति दुर्बल हो जाता है। वे लोग यही समझते हैं कि स्कूल में पढ़ने का अभिप्राय केवल इमतिहान पास करना है, और प्रत्येक अध्यापक लड़कों की शारीरिक अवस्था की तनिक परवाह न कर परीक्षा में उत्तीर्ण छात्रों की संख्या बढ़ाना ही अपना परम कर्त्तव्य समझता है। हज़ारों विद्यार्थी अपनी शारीरिक अवस्था को स्वाहा कर परीक्षा के हेतु बलिदान होते हैं। यही कारण है कि जब परीक्षा पास करके विद्यार्थी कालिजों से निकलते हैं तो उनसे कुछ देश-सेवा नहीं बन सकती। वे बेचारे डाक्टरों के दरवाज़े देखते रहते हैं; या झूठे वैद्यों के विज्ञापनों को पढ़ कर अपना रहा सहा बल भी खो बैठते हैं।

विचार कीजिये कि संसार के इस उन्नत काल में निर्बल भारत-सन्तान क्या कर सकती है ? आज जीवन दौड़ का भीषण संग्राम है। पग पग पर ज़बरदस्त शक्तियों का सामना करना है। अपने नित्य की जीवनचर्य्या में देखो, निर्बल शरीर कैसी ठोकरें खाता है। आपके पास तीसरे दर्जे का टिकट है और रेलगाड़ी में चढ़ने के लिये आप आगे बढ़ते हैं। जब दरवाज़ा खोल कर अन्दर चढ़ना चाहते हैं तो एक मोटा सा काबुली आपको धक्का देकर बाहर निकाल देता है। उस समय आपकी अवस्था क्या होती है ? ज़रा विचार तो कीजिये। शारीरिक बल न रहते आप कैसा छटपटाते हैं। यद्यपि आपके पास भी टिकट है और आपको पूरा अधिकार गाड़ी में बैठने का है, लेकिन आप अपने उस अधिकार से कुछ भी लाभ नहीं उठा सकते, यदि उसकी रक्षार्थ आप में शारीरिक बल नहीं है। स्मरण रक्खो, अधिकारों की रक्षाशक्ति हुये बिना उनकी प्राप्ति निष्फल है। अच्छा यदि आप स्टेशन मास्टर या रेलवे गार्ड की सहायता से उस गाड़ी में चढ़ भी गये तो क्या वह मोटा काबुली आपको आराम से बैठने देगा ? वह मज़े से टांग पसार लेट जाता है, और आप गाड़ी के एक कोने में खड़े झूठे वैराग्य का पाठ पढ़ रहे हैं—"यह दुनियाँ मुसाफिरखाना है; दो तीन घन्टे की तो बात ही है, इस रेल में क्या किसी को घर बनाना है। अरे भाई ! हमारे लिये कोना ही अच्छा है—" इस प्रकार मन को तसल्ली देकर आप अपनी यात्रा पूरी करते हैं, और संसार की जातियां आपको धक्के लगा कर कोने में फेंक रही हैं। जिसको आप वैराग्य समझते हैं, वह कायरता है। अपने भीरुपन को वैराग्य के पवित्र आवरण में मत छिपाइये। शारीरिक बल प्राप्त कीजिये। अपने अधिकारों की रक्षा करने की शक्ति बढ़ाइये, और सदा अपने प्राचीन आदर्श को सामने

रखिये। पाश्चात्य जातियों का सिद्धान्त "Might is Right" जिस की लाठी उसकी भैंस है, किन्तु हमारा आदर्श—Right is Might है अर्थात् जिसका जो अधिकार है वही उसको शक्ति है। इसलिये बल की प्राप्ति करो, परन्तु उद्देश्य यह रक्खो कि हम इसके द्वारा निर्बलों की रक्षा करेंगे। जहाँ कहीं बालक, वृद्ध, अबलाओं पर अत्याचार होता हो वहां अपने शरीर को उनकी रक्षार्थ बलिदान कर दो। बल ग़रीबों को सताने के लिये नहीं है, बल्कि उनकी सहायतार्थ है। यही सच्चा वैराग्य है। जिसके पास अपनी रक्षा हेतु किसी प्रकार की शक्ति नहीं है उसके लिये वैराग्य का गीत गाना केवल अपनी भीरुता प्रगट करना है।

अब ज़रा अपने यहाँ के शिक्षित लोगों की दशा देखिये। हमारे यहाँ जो कोई हट्टा कट्टा शारीरिक बल से हृष्ट पुष्ट नवयुवक हो, तो उसको लोग गुण्डा समझते हैं। और इनकी परिभाषा में भलामानस वह है जो दुबला, पतला, शिर में तैल लगाये हुये, बाल कंघी किये हुये, नये फैशन का बाबू, फूंक से उड़ने वाली छड़ी रखने वाला हो। माँ बाप बड़े अभिमान से कहते हैं—"मेरा बच्चा किसी से लड़ता झगड़ता नहीं। जो कोई इसको मारता भी है तो यह भले मनुष्यों की तरह चुपचाप मार खा लेता है।" यह हमारी आज कल की भलमनसाहत है। मेरी आप लोगों से प्रार्थना है कि ऐसी कायरता की शिक्षा को बच्चों के दिलों से निकाल दें और उनके हृदय पर स्वत्वाभिमान की शिक्षा खचित कर दें। जो कोई उनका अपमान करे और वह विनय अथवा नम्रता से न माने तो उनको उसको यथायोग्य पूजा करने के लिये उद्यत रहना चाहिये। प्रत्येक माता पिता का यह धर्म्म है कि अपने बच्चों को नियम पूर्वक व्यायाम करावें और कसरत किये बिना कभी

भी भोजन खाने को न दें। यदि वे इस नियम में असावधानी करेंगे तो उनकी सन्तान को अपनी भावी जीवन में सदा दूसरों से मार खानी पड़ेगी।

मैं एक बार इलाहाबाद से देहरादून जा रहा था। एक दुबला पतला बङ्गाली मेरे बगल में खिड़की के पास बैठा था। लखनऊ के स्टेशन पर वह बेचारा अपनी टोपी अपनी जगह पर रखकर पानी पीने के लिये नीचे उतरा। पीछे से एक लम्बा चौड़ा जवान आदमी आकर उसकी टोपी ऊपर फेंक आप उसकी जगह पर बैठ गया। जब बङ्गाली पानी पी कर आया और अपनी जगह पर उस गुण्डे को बैठे देखा तो बेचारा चुपके से अपनी टोपी उठा दूसरी जगह जा बैठा। मुझसे न रहा गया। मैंने उस गुण्डे को प्रेम से समझाना चाहा, पर भला वह क्यों मानता था। अन्त को मैंने उससे कहा कि यदि आप इसी प्रकार मेरी जगह पर बैठ जाते तो मैं आप की खूब पूजा करता। इस पर वह बिगड़ कर बोला—

"आप बड़े पूजा करने वाले!"

"अच्छा मैं उठता हूं तुम मेरी जगह पर बैठ कर देखो!"

यह कहकर मैं उठ खड़ा हुआ और ज्योंही वह मेरी जगह पर बैठा, मैंने उसकी गरदन दबा टांगें पकड़ नीचे पटक दिया, और छाती पर चढ़ दो घूंसे ऐसे लगाए कि उसके रुधिर बहने लगा। लोगों के छुड़ा देने पर वह उठकर कहने लगा—

"आप फकीर होकर इतना गुस्सा करते हैं, यह आपके लिये वाजिब नहीं था"।

इस पर वह बङ्गाली हंस कर बोला—

"ये स्वामी जी महाराज हैं, इनका काम उपदेश देना है। जो मनुष्य बात से नहीं मानता उसको लात से भी समझाते हैं"।

इस पर सब लोग खिलखिला कर हंस पड़े। कहने का तात्पर्य्य यह है कि प्रत्येक मनुष्य के अन्दर अपने अधिकारों की रक्षा करने के लिये बल होना चाहिये।

इसी प्रकार की एक और घटना मेरे साथ हरदोई में हो गई। हरदोई में नागरी-प्रचारार्थ मैं व्याख्यान देने गया था। वहां अपने कार्य से निपट कर प्रयाग लौटने के लिये ड्योढ़े दरजे का टिकट ख़रीद मैं गाड़ी में जा बैठा। एक दस वर्ष का बालक भी मेरे साथ हरदोई से कहीं दूसरी जगह जा रहा था। उसके लिये बैठने को जगह न थी। एक "भला मानस" सारी बेञ्च पर कब्ज़ा कर मुह ढाँपे लेटा हुआ था। गाड़ी पर चढ़ते समय मैंने उसे मुंह खोले देखा था। मुसाफ़िरों को देख कर उसने मुंह ढांप लिया और टांग पसार कर सोने का बहाना किया था। उसका यह स्वार्थ मुझे अच्छा न लगा, इसलिये जब उस बालक को बैठने की जगह न मिली और उसने मुझसे पूछा—

"स्वामी जी मैं कहां बैठूं?"

तो मैंने तत्काल ही उसको लेटे हुए आदमी के ऊपर बैठने का इशारा किया। वह बालक मेरा इशारा पाकर उस स्वार्थी पर चढ़ बैठा। अब क्या था। वह धूर्त चिल्ला कर उठा और लड़के को मारने की धमकी दी। तब मैंने कहा—

"उस बालक को क्या धमकाते हो, वह मेरे कहने पर आप की छाती पर बैठा था।"

यह धूर्त देखने में मज़बूत था इस लिए गरज कर कहने लगा—

"आप कौन हैं उसको मेरे ऊपर बिठलाने वाले?"

मैं मुस्करा कर—

"कुछ लाल पीली आंखें तो दिखलाओ नहीं। सारी बेञ्च सम्भाल कर, टांगे पसार लेना, यह आपका अनुचित कार्य्य था। जब आपने मुसाफ़िरों को आते हुए देखा था तो स्वयं ही आपको उठ कर बैठ जाना था। आपने ऐसा न कर, मुंह ढांप झूठा बहाना बनाने की चेष्टा की तो मुझे लाचारी लड़के को आप पर बिठलाना पड़ा।"

धूर्त (अकड़ कर)—

"अगर मैं इस लड़के को दो चार लगा देता तो आप क्या करते?"

"मुझे आपकी पूजा करनी पड़ती।"

इस पर वह बहुत बिगड़ने लगा। तब मैंने उसको कहा—

"देखो घबराओ मत। लखनऊ का स्टेशन निकट ही है। वहां उतर कर आपकी और मेरी कुश्ती होगी।"

बस इतना काफ़ी था। उसके क्रोध का नशा उतर गया और वह बेञ्च के एक कोने में सिमट कर बैठ गया। फिर प्रेम से मैंने उसे समझाया—

"हम सबको एक दूसरे के अधिकारों का ध्यान रखना चाहिये। जब हम दूसरे के आराम का ख्याल करेंगे तो दूसरा भी हमारे आराम का ध्यान रखेगा। आप बलवान् हैं, मज़बूत हैं, अतएव आपका कर्तव्य अपने से कमज़ोरों को सुख देने का है। यदि हम सब प्रेम पूर्वक रहना सीख जायें तो हमारी सब कठिनाइयां दूर हो सकती हैं।"

इस पर शान्ति हो गई और दूसरे यात्री सब बड़े प्रसन्न हुए। संसार में अपने अधिकारों की रक्षा हेतु, युद्ध करने की आवश्यकता पड़ती है और बहुत से सुधार बिना संग्राम-शक्ति संचय किये हो नहीं सकते। व्यक्तियों की शक्ति पर राष्ट्र की

शक्ति निर्भर है, अतएव शिक्षा-प्रणाली के महत्ता-पूर्ण प्रश्न पर विचार करते समय देश-हितैषिओं को सब से पहले 'शारीरिक-स्वतंत्रता' का प्रबन्ध करना चाहिये। इसके लिये स्थान स्थान पर "Gymnasium अखाड़े, व्यायामशालायें" खोलना ठीक होगा। उन व्यायामशालाओं में धनी और निर्धनों के बालक, सुबह और शाम दोनों समय, आकर व्यायाम करें। आधुनिक,योरुपीय, ढंग की कसरतों का प्रबन्ध होना चाहिये। तैरना सीखने के लिये निर्मल जल का तालाब होना उचित है। स्नान के लिए स्नानागार हों। यदि इन व्यायामशालाओं के साथ साथ सच्चरित्रता सिखाने तथा पुस्तकावलोकन के साधन भी हों तो क्या कहना है।

ज़रा आंख उठा कर अपने बालकों की दशा देखिये। उनकी शारीरिक अवस्था बिगड़ने के कैसे कैसे भयानक साधन विद्यमान हैं। गन्दे गली कूंचे, अश्लील गीत, बुरी आदतें सिखाने वाले साथी किस निर्दयता से उनके मनुष्यत्व का नाश कर रहे हैं! हमारे नगर नगर में मन्दिर, देवालय तथा शिवालय हैं। उनमें हज़ारों उपासक नित्यप्रति जाते हैं। क्या हमारे उपास्य-देव, दुर्बलेन्द्रिय विषयी और नपुंसक सन्तान की भेंट ग्रहण कर, प्रसन्न हो सकते हैं? कदापि नहीं। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक मन्दिर के साथ चार पाँच हज़ार रुपये लागत की एक व्यायामशाला होनी चाहिये। सवेरा होते ही नागरिकों के दल वहां उपस्थित हों; बालक अपने अपने लंगोटे लिये वहां आवें। नवयुवक कंधे पर जांघिए रखे खिले चेहरों से व्यायामशाला में प्रवेश करें। वहां ईश्वर-प्राप्ति के पवित्र साधन, मनुष्यत्व की खान, आत्मा की शक्तियों का प्रादुर्भाव करने वाले यंत्र 'शरीर' को पुष्ट किया जाय। गतका, फरी, पट्टा आदि का भी अभ्यास करना चाहिये। खूब शारीरिक परि

श्रम करने के बाद थोड़ी देर आराम कर, स्नानादि से निश्चिन्त हो, धूप-दीप-नैवेद्य हाथ में लेकर, श्रद्धा से, अपने पूज्य उपास्य देव के मन्दिर में प्रवेश कीजिये। हमारी भगवती देवी, हमारे भगवान कृष्णचन्द्र, मर्य्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी तथा कैलाशपति महादेव जिस समय बलिष्ठ, वीर्य्यवान, नीरोग उपासकों को मन्दिर में प्रवेश करते देखेंगे तो उनके आनन्द की सीमा न रहेगी। परीक्षा के समय जब कभी उस देवालय की रक्षार्थ बलिदान की आवश्यकता पड़ेगी तो वीर्य्यवान सन्तान ही अपने विशाल भुजाओं से अपने इष्ट देवों की सेवा कर कीर्ति लाभ कर सकते हैं। नपुंसक, रोगी, उपासकों से देवता कैसे प्रसन्न हो सकते हैं? परमात्मा की प्राप्ति का साधन 'शरीर' यदि बिगड़ गया तो फिर भला ईश्वर दर्शन कैसे हो सकता है इसी लिए उपनिषद् कहती है—

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

बलहीन व्यक्ति को आत्मा, परमात्मा प्राप्त नहीं होते। प्रभु की गोद में बैठने के लिये भी सुन्दर शरीर चाहिये। जो लोग शरीर को तुच्छ समझ कर इसकी अवहेलना करते हैं, वे ईश्वरीय आज्ञा पालन नहीं करते।

स्मरण रखो, संसार एक संग्रामक्षेत्र है। इस क्षेत्र में हम सब सिपाही हैं, जो युद्ध हेतु यहां आये हैं। बिना युद्ध-विद्या सीखे हम इस क्षेत्र में विजयश्री लाभ नहीं कर सकते। पग पग पर हमारा कठिनाइओं से सामना है; बाधाओं का मुकाबिला करना है। उस युद्ध-विद्या सीखने का साधन शरीर है। यदि शरीर निर्बल है तो हम कभी भी संग्राम में ठहर नहीं सकते; हमको दुम दबाकर भागना पड़ेगा। वेही विजय लक्ष्मी के सिंहासन पर बैठ सकेंगे, जिन्होंने शारीरिक-स्वतंत्रता को प्राप्त की है। ब्रह्मचारी बनने के लिये, वीर्य्य-रक्षा हेतु और

विकट शत्रुओं–काम क्रोधादि--का सामना करने के लिये भी बलवान शरीर ही सहायक हो सकता है। भला कमज़ोर अंगों वाले मनुष्य काम का सामना कैसे कर सकते हैं ? वे ज़रा से धक्के में गिर पड़ते हैं और उनमें सामना करने की शक्ति नहीं रहती। संयमी बनना चाहते हो, तो पहले शरीर को साधना करो। खूब व्यायाम द्वारा इसके अङ्ग प्रत्यङ्गों को बढ़ाओ। जब साधन आपके मतलब का होगा तो उससे यथेष्ट लाभ भी ले सकोगे; बदन में फुरती चालाकी आवेगी; बीमारी दूर भागेगी; मस्तिष्क काम देगा और जीवन सुख का आनन्द ले सकोगे।

शिक्षा के इस पहले साधन 'शारीरिक-स्वतंत्रा' पर प्रत्येक देश-हितैषी को ध्यान देना चाहिये; और जहां जहां शिक्षा का प्रबन्ध किया जाए वहां सब से पहले व्यायामशाला का प्रबन्ध होना उचित है। यह आवश्यक नहीं कि बड़ी भारी, बहुत खर्च की व्यायामशाला ही हो। कम खर्च पर दो चार सौ रुपये लगाने से भी काम चल सकता है। यदि इतना भी न हो सके तो खुले मैदान में दौड़, कबड्डी, कुश्ती, मुद्गर, सौंची, बैठकी, फरी, गतका आदि कसरतों का अभ्यास कर लेना ही काफी होगा। कुछ न कुछ उपाय, कुछ न कुछ व्यायाम के साधन प्रत्येक स्कूल व पाठशाला के साथ होने चाहियें।

'शारीरिक-स्वतंत्रता' मनुष्य को शिक्षित बनाने का पहला साधन है। इसकी उपयोगिता मैं दिखा चुका; इसकी व्याख्या भी कर चुका। अब दूसरे साधन—"आर्थिक-स्वतंत्रता"—के विषय में जो कुछ मेरा निवेदन है उसे भी कृपया ध्यान पूर्वक सुनिये।

—:o:—

आर्थिक-स्वतंत्रता।

शिक्षित मनुष्य में अपना टुकड़ा कमा खाने को योग्यता का होना भी परमावश्यक है। जो मनुष्य अपने आप को पढ़ा लिखा कह कर स्वतंत्र टुकड़ा कमाने की भी शक्ति नहीं रखता उसका पढ़ना लिखना व्यर्थ है।

आज हमारे स्कूल और कालेजों में पढ़ने वाले छात्र किस प्रकार इधर उधर मारे मारे फिरते हैं। छः वर्ष के हुए, मा बाप ने स्कूल में पढ़ने को भेजा, दस वर्ष मेहनत करके परीक्षा पास की, चार वर्ष दिमाग खाली कर बी० ए० की डिग्री ले ली; डिग्री लेने पर भी प्रश्न वही सामने है—"हमें रोटी कैसे मिलगी ?" माता पिता ने अपनी जायदाद नीलाम करवा कर लड़के को पढ़ाया, हज़ारों रुपये खर्च हो गये, कर्ज़ सिर पर हो गया, जब पढ़ लिख कर बाहर निकला, और माता पिता को आशा हुई कि अब सारा दरिद्र दूर हो जायगा उस समय नया दृश्य सामने आता है। वह नया दृश्य क्या ? अब नौकरी की सिफ़ारिश करने वाला चाहिये। कहीं सिफ़ारिश लगे, किसी साहब के आगे जाकर गिड़गिड़ाया जाए, उसकी डालियां दी जाय; किसी ग़रीब की नौकरी हटवा कर अपना उल्लू सीधा किया जाय, तब कहीं जाकर नौकरी लगे, और उस बी० ए० पढ़ने का 'सब्ज़ बाग़' देखने में आवे। उस सब्ज़ बाग़ में भी क्या आनन्द है ? वहां उस बी० ए०, एम० ए० की डिग्री का बड़ा भारी पुरस्कार मिलता है। आप जानना चाहते हैं ? अच्छा सुनिये पहला पुरस्कार तो मिला—

Your most obedient servant.

'आपका निहायत ताबेदार ग़ुलाम!' यह लो पहला पुरस्कार। अब इसके आगे जिसने सिफ़ारिश लड़ा कर नौकरी दिलवाई

है; उसके घर की हाज़िरी भरना—यह नम्बर दो पुरस्कार है; तीसरा पुरस्कार है अफ़सरों की दिन रात गालियाँ सहना; चौथा पुरस्कार है अपनी आत्मा के विरुद्ध काम करना। आज हज़ारों लाखों भारतीय इन पुरस्कारों से लदे हुए हैं। उनसे जाकर पूछ देखिये। कैसे कैसे झूठ, कैसी कैसी मक्कारियाँ उनको नौकरी को ख़ातिर करनी पड़ती हैं। अपने अफ़सरों को प्रसन्न रखने के लिये उनको कैसे कैसे स्वाँग रचने की ज़रूरत पड़ती है। लड़का घर में बीमार है, छुट्टी चाहिये। अब छुट्टी कैसे मिले? अपने अफ़सर से जाकर छुट्टी माँगते हैं। वह 'काम अधिक है' का डर दिखाता है; छुट्टी नहीं मिलती। अब क्या करें? डाक्टर के पास जाकर, दस पाँच रुपये दक्षिणा दे, उससे अपनी बीमारी का सर्टिफिकेट लेते हैं और (Sick Leave) अपनी बीमारी की झूठी अरज़ी भेज कर आत्मा का हनन करते हैं। जानते हैं कि पाप कर रहे हैं, पर क्या करें—'मरता क्या नहीं करता'—लड़के के इलाज के लिये छुट्टी ज़रूर चाहिए। जब हाकिम छुट्टी न दे, तो उसकी आंखों में धूल झोंकने के लिये कुछ बहाना बनाना ही पड़ता है।

और तमाशा देखिये। नगर में कोई प्रसिद्ध व्याख्यानदाता आता है। वह जोशीला प्रभावशाली व्याख्यान देता है। सब लोग व्याख्यान सुनने के लिये जा रहे हैं, पर नौकरी का पट्टा पहिरने वाला बाबू बेचारा मन मसोस कर घर बैठा है वह अपने देश-हितैषी बन्धुओं के उपदेश तक नहीं सुन सकता। नौकरी क्या की मानो शरीर और आत्मा बेच दिये। अपने देश का हित-साधन करने में व्यग्र 'सभाओं' के अधिवेशनों में जाने को इन्हें मनाही है। वाह री शिक्षा! वाह रे इसके कड़ुवे फल!! ऐसी शिक्षा से तो मूर्ख रहना अच्छा है। क्या शिक्षा

के अर्थ यह हैं कि अपनी स्वतंत्रता बेच दी जाए? हां, यहां इसके यही अर्थ समझे जाते हैं। जब इन नौकरी के गुलाम शिक्षितों से कुछ देश-सेवा के लिये कहा जाता है तो वे आहें भर कर रह जाते हैं।

कौन समझदार इस स्कूली, स्वतंत्रता का हरण करने वाली शिक्षा को 'शिक्षा' कह सकता है। यह शिक्षा नहीं है, यह मकड़ी का ताना बाना है। जो इसमें फंसा, सो गया। एक बनिये का लड़का चार आने का चना खरीदता है। वह उसको उबाल कर, नमक मिर्च लगा कर, बाज़ार में बेच आठ आने के पैसे पैदा करता है। वह उस कलमघिस्सू, कुरसी तोड़ने वाले तथा अफ़सर की हां में हां मिलाने वाले, 'जो हज़ूर' के सम्पादक से लाख दरजे अच्छा है। उसको अपनी आत्मा का हनन तो नहीं करना पड़ता? वह जब चाहे तभी स्वेच्छानुसार घूम सकता है। वह अपनी मरज़ी का मालिक है। उसको किसी के सामने गिड़गिड़ाना नहीं है। उसको छुट्टी मांगने की ज़रूरत नहीं। वह देश-सेवा कर सकता है, देश-भक्तों से मिल सकता है; उनके व्याख्यानों का आनन्द ले सकता है, पर हमारा कालेज का ग्रेजुएट बेचारा, मिल और स्पेन्सर पढ़ कर भी, अपने गले में जञ्जीर बांधे हुए है और अपनी शक्तियों को वेश्याओं की भांति बेच रहा है!!

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के ऐसे ज़हरीले फल क्यों हैं? उत्तर स्पष्ट है। स्कूल और कालेजों की शिक्षा असल में शिक्षा नहीं है; यह केवल परीक्षा पास कराने की मशीन है। खूब रट रट कर, घोटा लगा कर परीक्षा पास कर लेना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। प्रत्येक कालेज का अधिष्ठाता परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों की संख्या बढ़ाना—फी सदी अधिक लड़के पास कराना—ही अपना उद्देश्य समझता है। स्कूलों के अध्यापक

निरीक्षकों को बड़े गौरव से कहते हैं—"देखिये महाशय! हमारे स्कूल में से इतने लड़के पास हुए।" बस मतलब पूरा हो गया; शिक्षा की इतिश्री हो गई! लड़कों की तन्दुरुस्ती, उनका चरित्र बिगड़ जाए तो बिगड़ जाय, पर 'पास' होना चाहिये। लड़के परीक्षा पास करना अपना मुख्य कर्तव्य समझ, सब कुछ उसके लिये बलिदान कर देते हैं और परीक्षा पास कर लेने पर समझ बैठते हैं—

"बस अब मैदान मार लिया। अब संसार के दुखों से छूट गये।"

बेचारे यह नहीं जानते कि उनके जीवन का सब से अच्छा समय गुज़र गया और अब मुसीबतों का आरम्भ होने लगा है। फोनोग्राफ़ की भांति उनको पढ़ाई की सब बातें याद हैं और जब चाहें तभी उन्हें उगल कर दूसरों का मनोरञ्जन कर सकते हैं। बेचारे अपने लिये कुछ नहीं कर सकते, वे केवल दूसरों के मनोरञ्जनार्थ हैं। मिल और स्पेन्सर के उपदेश तो उन्हें कण्ठ हैं पर उनसे रोटी कमाने में कुछ भी सहायता नहीं मिल सकती।

सहायता हो कैसे? पहले तो इस शिक्षा द्वारा 'शरीर' खो दिया—तन्दुरुस्ती नष्ट हुई—जो कुछ बचा उससे आर्थिक-स्वतन्त्रता लाभ करने के सर्वथा असमर्थ हैं। चौदह वर्षों की शिक्षा नवयुवकों को इस योग्य नहीं बना सकती कि वे स्वतंत्रता पूर्वक जीवन निर्वाह कर सकें। घर की पूंजी स्वाहा हो गई और परिणाम निकला—नौकरी! यदि उसी पूंजी से कालेजों में समय नष्ट न किया जाता तो अच्छे रहते। दुकान खोल कर मज़े में गुज़ारा कर सकते थे। धन भी गया; शक्ति भी गई; स्वतन्त्रता भी बेच डाली, अब जीवन का साधन केवल दूसरों पर निर्भर रहने पर ही रह गया है। दस रुपये

की नौकरी के लिए जूतियां चटखाते फिरते हैं मगर हाथ से कोई उद्योग धन्धा नहीं करेंगे। अंग्रेज़ी पढ़कर धन्धा! स्वतन्त्रता की खानि 'उद्योग' से इन्हें घृणा है। पढ़ने लिखने के अर्थ यह हैं कि केवल क्लर्की की जाए और अपने देश के अनपढ़ भाइयों का गला काट कर रुपया पैदा हो। अब बढ़िया बूट सूट चाहिये। घर में खाने को न रहे मगर फैशन पूरा हो। जहां अंग्रेज़ी की गिटपिट आई, वहीं भेष बदला और जेन्टलमैनी का भूत सिर पर सवार हुआ। यदि बाप अपने मिडल पास बेटे को बाज़ार से आटा ख़रीद लाने को कहते हैं तो बेटा बाज़ार जाकर सौदा ख़रीदने से हिचकिचाता है। यदि किसी प्रकार मान भी लिया तो दो, चार, दस सेर आटा उठाने के लिये उसे एक नौकर चाहिये। अंग्रेज़ी पढ़ने से हाथों में मेंहदी लग जाती है, और वे सुन्दर बन कर जेबों में रखने लायक रह जाते हैं।

एक बार मैं सराडीले में व्याख्यान देने के लिये गया। किसी स्कूल के अध्यापक ने बुलाया था। वे अपने विद्यार्थियों के साथ रहा करते थे। जब मैं उनके स्थान पर जाकर पहुंचा, तो उन्होंने आदर पूर्वक खाट डाल उस पर सफेद कपड़ा बिछा दिया। मैं बैठ गया। जब मैंने इधर उधर दृष्टि दौड़ाई तो खटिया के पास बहुत सा कूड़ा जमा देखा। उस विद्यार्थी से मैंने पूछा—

"क्यों बेटा! यह सब कूड़ा कर्कट क्यों जमा कर रखा है?"

लड़का बहुत झिपा, कुछ ठहर कर बोला—

"स्वामीजी हमारा नौकर आज छुट्टी पर गया है।"

मुझे बड़ी हँसी आई। एक दूसरा नौकर जो मेरे लिये जल लाया था, उसकी ओर इशारा कर मैंने कहा—

"यह आदमी किस लिये है? यह साफ कर सकता था।"

विद्यार्थी—"स्वामीजी यह तो ब्राह्मण है, यह घर में झाड़ू नहीं दे सकता। यह केवल भोजन बनाता है।"

अपने देश के बच्चों की अज्ञानता देख कर मुझे बड़ा दुख हुआ। मैंने कहा—

"क्या झाड़ू देने से हाथ घिस जाते हैं? तुम स्वयं अपने हाथ से झाड़ू दे सकते थे और कमरा साफ कर सकते थे। लाओ झाड़ू! हम कूड़ा निकालते हैं।"

मेरे इतना कहने पर वह विद्यार्थी बड़ा लज्जित हुआ। दोनों विद्यार्थी लगे मकान साफ करने। असल बात क्या थी? वे दोनों क्षत्री बालक थे; अपने हाथ से झाड़ू देना उनको अपने लिये अप्रतिष्ठा का कारण मालूम होता था। तिस पर अंग्रेज़ी स्कूल में पढ़ने वाले और धनी ज़िमींदार के लड़के हाथ से काम कैसे करें, और नौकर जो मौजूद है वह ब्राह्मण है; ऐसी दशा में कूड़ा कर्कट कौन निकाले। यह दशा इस देश के बच्चों की है। कोई सिर्फ रोटी बनाने का काम करेगा; दूसरा केवल बर्तन मांजने का; तीसरा धोती धो सकता है। मेहनत मज़दूरी से डरने वाली भारत-सन्तान आज यदि इस बीसवीं शताब्दी में निर्धन है तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है। जिस देश के शिक्षित मज़दूरी करने से भागें, जो उद्योग धन्धे की घृणा की दृष्टि से देखें, जो झूठे जाति अभिमान में डूबे रहें, ऐसा देश यदि निर्भरता के गहरे समुद्र में डूबा हुआ है तो कोई ताज्जुब की बात नहीं।

शिक्षा में Manual Training मेहनत मज़दूरी को सब से पहले स्थान मिलना चाहिये। जितना धन पैदा होता है वह सब मेहनत मज़दूरी से पैदा होता है। ईश्वरदत्त इस भूमि से यदि हम मज़दूरों द्वारा काम न लें तो हमें किसी प्रकार के धन को प्राप्ति नहीं हो सकती। हमारे भोगों के जितने सामान हैं

वे सब मज़दूरी द्वारा सिद्ध होते हैं। एक वक्त का भोजन हज़ारों मनुष्यों के परिश्रम का परिणाम है। फिर मज़दूरी से घृणा क्यों ? बढ़ई, लुहार, तेली, कहार, मोची, सुनार, किसान हमारी आंखों में जंचते हो नहीं; वे छोटी 'जाति' के लोग समझे जाते हैं; वे 'नीच' हैं। अब इनके ऊंचों की दशा देखिये। जो सब का लूट खाये; निर्दयी, सूद द्वारा ग़रीबों का खून चूस लें; रिश्वत ले ले कर बड़े बड़े मकान बना लें; जो दिन में सैकड़ों बार झूठ बोलें, एसे लोग कुलीन, ऊंचे दरजे के और भद्र समझे जाते हैं। उनकी सब जगह प्रतिष्ठा होती है।

कितना बड़ा अन्याय है। देश का धन पैदा करने वाले, ज्येष्ठ, आषाढ़ की धूप सह कर अन्न उत्पन्न करने वाले तो छोटे दरजे के समझे जाय और मुफ़्त खोरे निखट्टू लोगों की समाज में प्रतिष्ठा हो। भला एसी दशा में कौन मज़दूरी की ओर मुंह करेगा। आज मज़दूरी का ज़माना है। कल कार-ख़ाने बिना मज़दूरी के नहीं चल सकते; आविष्कार बिना मज़दूरी किये हो नहीं सकते; मशीनें बिना हाथ हिलाये चल नहीं सकतीं। अमरीका, योरप आज मज़दूरी के बल माला-माल हो रहे हैं; जापान आज उद्योग धन्धे के सहारे भारत का रहा सहा रुपया खींच रहा है। यह मज़दूरी की शताब्दी है। आज भारतीय बच्चे यदि मज़दूरी से घृणा करेंगे तो उनका गुज़ारा कैसे हो सकता है। हमारे यहां सब कोई बिना हाथ पैर हिलाये मालदार होना चाहते हैं। इसी लिये चारों ओर झूठ मक्कारी का बाज़ार गरम है। हमारा आदर्श धर्म-प्रचारक वही समझा जाता है जो निकम्मा बैठने की शिक्षा दे, और जो कर्मण्यता सिखाता है वह इनकी दृष्टि में दुनियांदार है। भीख मांग खायेंगे, पर काम नहीं करेंगे। बड़े बड़े मोटे ताज़े फकीर हाथ फैलाये दुकान दुकान पैसा मांगते फिरते हैं। उनसे काम

करने को कहा तो काट खाने को दौड़ते हैं। कहेंगे क्या!-"बाबा आप की जय मनाते हैं। राम राम जपते हैं"। बस हो गया! इनको भीख मांगते तनिक लज्जा नहीं आती। लज्जा कैसे आवे, लज्जा तो रुपया पैसा देने वालों को आनी चाहिए। मैंने ऐसा कोई मूर्ख देश नहीं देखा जहां के लोग घर का पैसा खर्च कर अपने देशवासियों को निकम्मे और आलसी बनाते हों। भारत की यह जोंक ग्राम ग्राम, नगर नगर घूम कर भारतीय किसानों का खून चूसती हैं। मेलों में देखो, नाना रूप धर कर ये पाखण्डी फ़कीर 'जनता' का पैसा ठगते हैं और मुफ़्तख़ोरों की संख्या बढ़ाते हैं। सर्व साधारण में ऐसे ही धूर्तों की पूजा होती है। ख़बर मिलनी चाहिये कि कोई बाबाजी आए हैं और वे मौनी हैं' बस फिर लोगों का ठट्ठ उनके दर्शनार्थ जाता है। सब प्रकार की भेंट पूजा होती है। भोले भाले लोगों के हज़ारों रुपये इसी प्रकार ठगे जाते हैं। देश के बच्चों के सामने अकर्मण्यता का आदर्श रखा जाता है। जिनके हाथ सूख गये हैं वे सिद्ध समझे जाते हैं। कहा जाता है कि तपस्या से उनके हाथ सूख गए हैं। अच्छी तपस्या है! इमानदार, मेहनती लोग अपने बाल बच्चों का पेट तक नहीं भर पाते और वे आलसी धूर्त अपने वारे न्यारे मुफ़्त में करते हैं।

भारतीय बच्चों के सामने हमें शिक्षा का नया आदर्श रखना है। उनको कर्मवीर बनाने की शिक्षा देनी है। उनके अन्दर स्वावलम्बन की संजीवनी शक्ति भरनी है। यह सब तभी होगा जब Dignity of labour मज़दूरी की महत्ता को शिक्षा में प्रथम स्थान दिया जायगा; जब देश के लोग चरित्र की कसौटी से ऊंच नीच की परख करेंगे। अकर्मण्यता का ज़हर जो आज हमारी समाज में फैल रहा है, उसको निका-

लता है। जो शिक्षा आज कल स्कूलों में दी जाती है वह केवल एक प्रकार का बपतिस्मा है। उससे मनुष्य केवल किसी भलेमानस की बात समझने लायक बनता है। उसको मैं शिक्षा नहीं कहता ; शिक्षा दूसरी वस्तु है। पिछले सौ वर्षों से भारत में अंगरेज़ी शिक्षा का प्रचार हुआ है, यदि यह शिक्षा असल में शिक्षा होती तो अब तक भारत का उद्धार हो गया होता। इस शिक्षा से उलटा, भीरुता, कायरता और अकर्मण्यता फैल गई हैं और हमारा बल वीर्य्य नष्ट हो गया है। इसलिए अब हमें सच्ची शिक्षा की ओर आना चाहिए और अपनी पिछली भूलों को सुधारने का यत्न करना चाहिये।

इसलिए आर्थिक स्वतन्त्रता का सबसे बड़ा साधन मज़दूरी की महत्ता है। आप अपने देश के अनपढ़ सीधे साधे मारवाड़ियों को देखिए। ये लोग बंगाल, बिहार, नैपाल, संयुक्त प्रान्त तथा भारत के सभी प्रान्तों में फैले हुए हैं। ये अनपढ़ लोग तो लाखों रुपया कमाते हैं पर कालेजों में पढ़े लिखे बी०ए० पास बेचारे कठिनता से पेट भरते हैं। क्यों? कारण स्पष्ट है! जिस समय एक मारवाड़ी घर से रुपया कमाने के लिए निकलता है तो वह मज़दूरी को महत्ता का पाठ पढ़ लेता है। कमर पर कपड़ों का गट्ठड़ लाद कर ग्राम ग्राम घूमने में इसे तनिक सङ्कोच नहीं। बर्षों इसी प्रकार दौड़ धूप करता है; शीत उष्ण सहता है। जब कुछ पूंजी हो जाती है तो अपनी दुकान कर लेता है और फिर धीरे धीरे अपनी सम्पत्ति बढ़ाता है। यह सब मज़दूरी के फल हैं। स्टेशन पर बहुत बार अपना ट्रंक आप उठाए हुए इन मारवाड़ी पुत्रों को आप लोगों ने देखा होगा ; भारी भारी बोझ उठाने में ये लोग तनिक भी हिचकिचाते नहीं। यही इनके धन कमाने का रहस्य है। इसके बपरीत हमारा दस रुपये का बाबू क्लर्क, मामूली हैण्डबेग

भी अपने हाथ से उठाना कसरेशान समझता है। उसके लिए भी उसको कुली चाहिए। भला कहिए तो रुपया कमाया जाय कैसे ? कवि ने ठीक कहा है—

"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैतिलक्ष्मीः।"

उद्योगी पुरुषसिंह को लक्ष्मी प्राप्त होती है। हालांकि ये मारवाड़ी बेचारे अनपढ़ हैं ; अपना तार ये लोग स्वयं नहीं पढ़ सकते, तिस पर भी इनकी हिम्मत देखिए। क्या अंगरेज़ी पढ़े लिखे इस प्रकार धन नहीं कमा सकते ? कमा सकते हैं और मारवाड़ियों से बहुत अधिक कमा सकते हैं, अगर वे भी इन मारवाड़ियों जैसे उद्योगी बनजायें। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो पता लगेगा कि मारवाड़ी लोग असल में व्यवसाय कुछ भी नहीं करते। ये केवल कमीशन एजेन्ट हैं। व्यापारी तो विदेशी लोग हैं जो अमरीका और योरप से माल मंगाकर इन्हें बेचने के लिये देते हैं। असली व्यवसाय तो वे विदेशी कोठिओं वाले करते हैं, मारवाड़ी बेचारों को तो छाछ मुश्किल से मिलती है। आज इस उन्नति के ज़माने में अनपढ़ आदमी व्यवसाय कर ही कैसे सकता है। जबतक योरपीय व्यापारिक रहस्यों से मनुष्य परिचित न हो; बैंकिङ्ग पूरी तरह न समझे; न्यूयार्क, लन्दन की मण्डियों की पहचान न हो ; पक्का माल तय्यार करने वाले कल कारखानों का ज्ञान न हो; कच्चा माल पैदा करनेवाले देशों की जानकारी न रखे, तबतक भला वह मनुष्य क्या व्यापार कर सकेगा। इन विषयों का परिचय प्राप्त करने में अंगरेज़ी शिक्षित लोग मारवाड़ियों से अधिक साधन सम्पन्न हैं, परन्तु व्यापारी बनने की प्रारम्भिक शिक्षा के न होने से वे कुछ नहीं कर सकते। वे समझते हैं कि मारवाड़ियों के पास पूंजी है इसलिए वे अच्छे व्यापारी हैं। यह सरासर भूल है।

व्यापार में पूंजी की आवश्यकता है सही पर इससे भी अधिक आवश्यकता मज़दूरी से प्रेम, मितव्यायिता, ईमानदारी, मधुर-भाषण, निरन्तर उत्साह आदि गुणों की है जिनके बिना बड़ी से बड़ी पूंजी वाला भी व्यवसाय नहीं कर सकता। संसार के प्रसिद्ध धनकुबेर रौकफेलर के पास कोई पूंजी न थी; बेचारा साधारण मज़दूरी किया करता था। अपने अध्यवसाय, परिश्रम, मितव्यायिता, मधुर-भाषणादि गुणों से उसने धीरे धीरे पूंजी बढ़ाई। आज वह संसार में सब से बड़े धनकुबेरों में से एक है।

इसलिए देश में धन की वृद्धि-हेतु हमें अपने बच्चों को ये सब बातें सिखलानी हैं। हमारे नवयुवक आज इन गुणों की ज़रा भी कदर नहीं जानते। बनारस में एक बार कुछ नव-युवक मुझसे मिलने आए। एक नौजवान से मैंने पूछा—

"कहो भाई क्या काम करते हो?"

नवयुवक—"कुछ नहीं करता।"

मैंने आश्चर्य से पूछा—

"तो फिर खाते कहां से हो?"

लड़का—"ससुर के घर में रहता हूं।"

मुझे बड़ा शोक हुआ। ससुर के घर में रह कर पेट भरना इसमें तनिक भी लज्जा उस नवयुवक को मालूम न हुई। वह मनुष्य जो निकम्मा बैठा रहता है और अपने हिस्से का पैदा नहीं करता, उसको खाने का क्या अधिकार है। हमसे तो चींटियां अच्छी हैं जो उद्योग करके पेट भरती हैं। हमारे यहां Joint Family System है। घर में एक पुरुष कमाने वाला है और बाकी बैठ कर खाने वाले हैं। यह कहां का न्याय है? घर के प्रत्येक नवयुवक को अपना अपना बोझ स्वयं उठाना चाहिए। दूसरों की की हुई कमाई पर गुलछर्रे उड़ाना यह मनुष्यत्व

नहीं है। स्वत्वाभिमानी अपनी भुजाओं से पैदा करता है और खाता है। यदि हम अपना बोझ आप नहीं उठा सकते, यदि हम मेहनत कर रुपया पैदा नहीं करना चाहते तो हमें चाहिए कि श्री-गंगाजी में डूब मरें ताकि हमारे इस स्वार्थी जीवन का अन्त हो जाए। भारत जननी पर व्यर्थ का भार बढ़ाना पाप है। हम यदि माता का बोझ हलका नहीं कर सकते तो उलटा बढ़ाते क्यों हैं। यहां के धनिकों के लड़के पिता, पितामह के कमाए हुए धन पर चैन उड़ाते हैं। वे ईश्वर से प्रार्थना करते रहते हैं कि कब बुड्ढा बाप मरे और वे उसका माल स्वतन्त्रता पूर्वक उड़ावें। हमारा यह स्वभाव सा हो गया है कि हम अपने बजुर्गों की कमाई पर लट्टू होना ही जानते हैं और आप स्वयं कुछ करना नहीं चाहते। इस पुरानी बीमारी का अब इलाज करना है और हमें स्वयं अपने पावों के बल खड़े होना सीखना है। यह तभी होगा जब हम हृदय से अपनी कमज़ोरी को अनुभव कर लें और उसके हानि लाभ स्पष्ट तौर से जान जायें।

इस व्याधि का इलाज हमारे मौजूदा स्कूल, कालेज, विश्व-विद्यालय नहीं कर सकते। हमें अब 'नौकर' गढ़ने वाली इन फेक्टरिओंकी संख्या बिलकुल कम कर देनी चाहिए। नौकरियों के दिन गए; अब क्लर्कों की ज़रूरत नहीं है। देश को इस समय कला कौशल सिखलाने वाले विद्यालयों की आवश्यकता है।प्रान्त प्रान्त में Technichal Schools कलाकौशल सम्बन्धी स्कूल, विश्वविद्यालय खोलकर विज्ञान और हुनर की वृद्धि करनी चाहिये साहित्य, विज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि विषयों को सिखलाने के लिये अपने ढंग के कम खर्च वाले विद्यालय खोलने उचित हैं। उनमें मातृभाषा द्वारा सभी वैज्ञानिक और साहित्य सम्बन्धी विषयों की उच्च शिक्षा बहुत कम समय में हो सकती

है। हम लोग तीस करोड़ से भी अधिक हैं। जिस समय सादा जीवन व्यतीत करने वाले हमारे मज़दूर, कलाकौशल सम्पन्न होकर, स्वदेशी पक्का माल तय्यार करेंगे तो संसार की सभी जातियां हमारे सुन्दर और सस्ते माल की कदर करेंगी; और हमारे देश का बाहर गया हुआ धन फिर लौट आ सकता है। हम बुद्धि और मस्तिष्क बल में किसी जाति से कम नहीं। आज भी अपनी इस पतित अवस्था में हमारे विद्यार्थी योरप और अमरीका के विश्वविद्यालओं में जाकर दूसरी सभ्य जातियों के विद्यार्थियों का मुकाबिला करते हैं, और किसी बात में भी कम नहीं निकलते। हमारे में कमी यदि है तो यह कि हम अन्य जातिओं की तरह साधन सम्पन्न नहीं हैं। अतएव अब हमें देश कालानुसार अपने बच्चों को आर्थिक स्वतंत्रता दिलाने वाली शिक्षा देनी चाहिए।

यह कार्य्य कैसे हो सकता है? यह कार्य्य देश के धनिक लोग कर सकते हैं। आज इस आपत्काल के समय देश के प्रत्येक धनी पुरुष को देश सेवा पर कमर कसनी चाहिए। जैसे स्वनामधन्य महाराजा महेन्द्रप्रताप जी ने अपनी जायदाद लगा कर श्री प्रेम महाविद्यालय की जड़ जमा दी है इसीप्रकार दूसरे धनिकों को करना चाहिए। अमरीका के धनकुबेर कारनेगी ने करोड़ोरुपए लगाकर पिटसवर्ग,में 'Technichal Institute' कला-भवन की बुनियाद डाली है। उस कला भवन में हज़ारों छात्र कलाकौशल सीख कर लाभ उठाते हैं। धीमान् बरोदा-नरेश ने भी अपने राज्य में कला भवन खोल अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है। स्थान स्थान पर ऐसे ही छोटे बड़े 'कलाभवन' खुलने चाहियें। जो जो पक्का माल हम बाहर से मगाते हैं वह सब हम अपने यहां बनाना सीखें। ब्राह्मण, क्षत्री,

वैश्यों के लड़कों को दस्तकारी के औज़ारों का प्रयोग बचपन से सीखना उचित है। मज़दूरी से घृणा का जो भाव है उसको दूर भगा दीजिए। मैं तो एक भङ्गी को, जो इमान्दारी से समाज की सेवा करता है, लाख दरजे अच्छा उस मनुष्य की अपेक्षा समझता हूं, जो धूर्तता से दूसरों का माल ठग ठग कर अपनी जेब भरता है।

आप जानते हैं अमरीका के धनवान् होने का कारण क्या है? अमरीका में कोई मनुष्य मज़दूरी से नफरत नहीं करता। सब मेहनत मज़दूरी करने को तय्यार रहते हैं। परिणाम यह है कि वे जहां जाते हैं वहीं धन पैदा कर सकते हैं। हमारे यहां जिनके पास थोड़ा सा रुपया हुआ वे झट नौकरों के गुलाम बन जाते हैं। अमीर का लड़का है। वह स्कूल जाता है तो साथ एक नौकर उसका बस्ता उठाने वाला चाहिये। धनवान होने का अभिप्राय यह समझा जाता है कि अपने हाथ से कोई काम ही न किया जाए। धीरे धीरे यहां तक आदत बिगड़ती है कि चाहे प्यासे बैठे रहें मगर उठ कर पानी नहीं पी सकते। अपने हाथ से उठ कर पानी पीयें तो अमीरी को बट्टा लग जाए। ये नौकरों के भी नौकर हैं। इनको पता नहीं कि धन केवल धर्म करने के वास्ते है; धन निकम्मा बनने के लिये नहीं। इसका यह अभिप्राय नहीं कि नौकरों से काम ही न लिया जाए। नौकरों से काम लो लेकिन उनके गुलाम मत बनो। जब नौकर है तो उससे काम लीजिए, यदि नहीं है तो झट से उठ कर स्वयं काम कर डालिए। अमरीका में अमीरों के लड़के अपना कमरा साफ करना, किताबें झाड़ बुहार डालना आदि कार्य्य सब आप कर लेते हैं। उनको अपने ऊपर निर्भर रहने की शिक्षा दी जाती है। यही आर्थिक स्वतंत्रता का मूल मंत्र है।

शिक्षा के इस दूसरे ढंग आर्थिक स्वतंत्रता पर मैंने अधिक कहने की चेष्टा क्यों की है ? इसका विशेष कारण है । किसी देश की धार्मिक अवस्था सुधर नहीं सकती, जिसकी आर्थिक अवस्था बिगड़ी हुई है। धार्मिक अवस्था का आर्थिका अवस्था के साथ बहुत बड़ा सम्बन्ध है । भूख से आतुर भारत वासी आज घृणित से घृणित नौकरियां इसी लिए कर रहे है कि उनको पेट भर अन्न मिलने का दूसरा उपाय नहीं है । जब घर में बच्चे भूखे मरते हैं तो दूसरा उपाय जीवन निर्वाह का न देख बेचारे अपनी आत्मा की हत्या करने के तय्यार हो जाते हैं । इसलिए देश भक्तों का मुख्य कर्तव्य है कि वे देश की आर्थिक स्वतन्त्रता की चिन्ता करें । मैं उसी मनुष्य के बड़ा योगी, बड़ा सन्यासी मानता हूं जो देश के बच्चों के लिए रोटी का प्रबन्ध करता है। जो रोटी के प्रश्न के हल करेगा, वही भारत सन्तान का सच्चा हितैषी होगा ।

अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए देश के कुछ नवयुवकों को प्रत्येक वर्ष विदेशों में भेजना पड़ेगा । वहां वे आधुनिक वैज्ञानिक ढंग की असली शिक्षा प्राप्त कर स्वदेश में उसका प्रचार कर सकेंगे। समाज शास्त्र, राजनीति ,विज्ञान आदि विषयों की पूर्ण शिक्षा प्राप्त कर वे अपने यहां के विद्यालयों में उसकी शिक्षा दे सकेंगे । इस प्रकार आर्थिक स्वतंत्रता के प्रत्येक साधन को जुटाने का उद्योग करना चाहिये॥ जिस प्रकार जापान ने सभ्य देशों के विश्वविद्यालयों से फायदा उठाया है उसी प्रकार हम भी लाभ उठावें । साथ ही अपने देश के प्राकृतिक तथा भौगोलिक विषयों का ज्ञान भी हमारे लिए परमावश्यक है । इसके लिए भिन्न भिन्न प्रान्तों में, समय समय पर जाकर सब बातों का परिचय प्राप्त करना चाहिए। कौन सी वस्तु कहाँ पैदा होती

है ? किस धातु की खान कहाँ पर है ? किस प्रान्त में कृषि अच्छी होती है ? कहाँ प्राकृतिक सुविधायें अधिक हैं ? कहाँ का जल वायु नीरोग है ? कहा तक लिखें, सैकडो बातें हैं जिनका परिचय हमें भली प्रकार करना चाहिये। जब इस प्रकार काल्पनिक शिक्षा को छोड कर हम व्यवहारिक शिक्षा की ओर आयेंगे तभी हमें 'आर्थिक स्वतन्त्रता'' मिल सकती है।

शिक्षित मनुष्य के लिए आर्थिक स्वतन्त्रता का होना परमावश्यक है इसको मैने भली प्रकार समझा दिया है। अब मैं शिक्षा के तीसरे गुण –

मानसिक-स्वतन्त्रता

की ओर आता हू। जब मनुष्य का शरीर हृष्ट पुष्ट है, उसमें स्वतन्त्रता से जीवन निर्वाह करने की शक्ति है तब वह सुभीते से अपनी मानसिक स्वतन्त्रता पर विचार कर सकता है। मानसिक स्वतन्त्रता क्या है ? पहले इस पर कुछ कहना उचित होगा।

पशुओं में विचार शक्ति नही है। उनमें एक दूसरे के पीछे चलने की आदत है। वे अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं समझते; उनमें जीवनयात्रा के प्रश्नो पर विचार करने की शक्ति नहीं है। मनुष्य को परमात्माने दो साधन मस्तिष्क और हृदय—ऐसे दिए हैं जिनकेद्वारा वह जीवन यात्रा का सुख अनुभव कर सकता है और अपने मनुष्य जन्म को सार्थक बना सकता है।

शिक्षा का बडा भारी उद्देश्य यह है कि इसके द्वारा मनुष्य की मानसिक शक्ति बढे और वह स्वतन्त्र विचार करना सीखे। मनुष्य समाज में जो झगडे, फिसाद, दुख क्लेश हम देखते हैं उनका अधिकाश भाग केवल आपस की 'गलतफहमी' के

कारण है। मैंने एक बात उड़ाई; दूसरे ने मुझसे सुनी; तीसरे ने चौथे से कही, बस चला सिलसिला—सभी विश्वास करते गए। भ्रम को लबड़धोंधों का एक वृहत् जाल बिछ गया। अब कोई उसको कहां तक सुलझावे; बात का बतंगड़ बनाकर मुल्क के झगड़े खड़े किए जाते हैं। यह सब बुद्धि के उपयोग न करने का फल है। झगड़ा करने वालों में से कोई भी असली बात नहीं जानता, सभी ने दूसरों से सुनकर उसको निगल लिया है। सभी के गले में काँटा अटका हुआ है। मानसिक-स्वतंत्रता की पहली शर्त यह है कि मनुष्य दूसरे के मस्तिष्क का दास न हो, वह स्वयं अपना हित अहित सोचने की शक्ति रखता हो।

किसी ने समाचारपत्र में यह पढ़ा कि मंगल ग्रह से एक लम्बी दुमवाला आदमी अमरीका के किसी नगर में उतरा है! बस विश्वास कर लिया। युक्ति यह दी कि अमुक समाचारपत्र में छपा है। कुछ भी उस खबर पर विचार नहीं किया; कुछ उसके सम्बन्ध में नहीं सोचा। करोड़ों आदमी दुनियां में ऐसे हैं जो स्वयं सोचने का कष्ट नहीं उठाते; वे दूसरों के सोचे हुए मार्ग पर चला करते हैं। क्योंकि अमुक मनुष्य ने ऐसा कहा है इस लिए यह बिल्कुल ठीक होगा। ऐसे लोग पशुओं की तरह हैं। इनमें नए नये मत-पन्थ--बहुत जल्द चल सकते हैं। इनको ठगना बड़ा आसान है। कोई चालाक आदमी इनकी आँखों में धूल झोंक, इनको कठपुतली की तरह नचा सकता है। संसार में जितने झगड़े फसाद मज़हबों के लिए हुए हैं उनका मूल कारण "मानसिक-दासत्व" था। भारतवर्ष में जो कुछ खटपट हिन्दू मुसल्मानों में है उसका असली कारण यही 'दिमाग़ी-गुलामी' है। बहुत से धूर्त मक्कार लोग अपना

उन्हें सीधा करने के लिए अगडबगड बातें मूर्खों में फैला देते हैं। सभी कानों के कच्चे हैं; सुनकर झट मान लेते हैं और तत्काल फसाद का बीज बोया जाता है।

इस लिए मानसिक स्वतंत्रता का पहला गुण यह है कि किसी की बात बिना सोचे समझे नहीं मानना चाहिए। प्रत्येक बात को मानने से पहले उस पर खूब विचार करो। हमारी शिक्षा का ढंग ऐसा होना चाहिए कि जिससे स्वयं सोचने की शक्ति आवे। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में यह बात नहीं है। जो कुछ स्कूलों में पढ़ाया जाता है उसी को ब्रह्म-वाक्य समझ कर निगल लेते हैं। यह कभी नहीं सोचते कि लेखक भी भूल कर सकता है। संभव है उसने स्वार्थवश अगडबगड बातें लिख दी हों। अध्यापक लोग भी अपने अध-कचरे विचारों को लड़कों के दिमागों में ठूंसते हैं। परीक्षा पास करने की धुन में फसे हुए विद्यार्थी उन अधकचरे विचारों को और भी मट्टी पलीद करते हैं। परिणाम यह है कि हमारे शिक्षित समुदाय में स्वतंत्रता से विचार करने वाले लोगों का अभाव सा है।

मेहनत मज़दूरी (Manul Training) की शिक्षा इस अभाव को बहुत अधिक पूरा करेगी। हमारे बहुत से लोग शंका करते हैं कि सब को मज़दूरी की शिक्षा देने से क्या लाभ होगा? उनकी सेवा में हमारा निवेदन है कि मानसिक-स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए ही कलाकौशल की शिक्षा की आवश्यकता है। अब हम जो कुछ स्कूल कालेज और पाठशालाओं में पढ़ते हैं, वह केवल बातूनी शिक्षा है। उसका अधिक प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर नहीं पड़ता। पड़े कैसे? मन में उसी वस्तु का पूरा फोटो खिंच सकता है जो व्यवहार में लाई जाए।

जो घनद्रव्य (Concrete) स्वरूप में हो। अमूर्त (Abstract) ढंग की शिक्षा से कुछ विशेष लाभ नही होता ; वह शीघ्र भूल जाती है। कालेजों में हमने इतिहास, भूगोल, पदार्थ विज्ञान, वनस्पति शास्त्र, दर्शन शास्त्र आदि विषय पढ़ लिए—केवल काल्पनिक बातों (Theory) को घोट लिया—उस से हमारा क्या भला हो सकता है ? इसके विपरीत मेहनत मज़दूरी की शिक्षा से हमारे अङ्गों में फुरती आवेगी ; औज़ारों का प्रयोग हमको निरीक्षण करने का अभ्यास डालेगा ; भारतीय स्वभाव में जो अनिर्णय (Vagueness) का दोष है वह निकल जायेगा ; हम लोगों को सत्यता (Accuracy) का ज्ञान होगा। रसक्रिया-स्थानों (Laboratories) में कार्य्य करने से हमें चीज़ों के यथार्थ गुण दोष मालूम होंगे ; इस से पुस्तकों में पढ़ी हुई कल्पनाओं का तत्व निकल आएगा। जिन नामों को याद करते करते स्मरण-शक्ति थक गई थी, उनका साक्षात् कर लेने से प्रकृति के सौन्दर्य्य का आनन्द मिलेगा। साथ ही कर्मवीर बनने की सामग्री प्राप्त होगी। वह कैसे ? बात साफ है। जब स्वयं काम करना पड़ेगा तो अपने दोष, अपनी कमज़ोरियां तथा अपने गुण मालूम होंगे ; निरन्तर मेहनत करने से दोष दूर हो जायेंगे और सद्गुणों की वृद्धि होगी। यही कर्मवीर बनने की सीढ़ी है।

अच्छा और क्या लाभ होगा ? सुनिये। कला कौशल की शिक्षा से काम को ठीक ठीक करने का ढंग मालूम हो जायगा। यहां यह बात तो है हो नहीं कि आपने शेखचिल्लियों की तरह आकाश पाताल के कुलाबे मिला दिए, दो बातें इधर की और चार बातें उधर की कह दीं—ठीक हों तो लाभ क्या और अण्ड-बण्ड हों तो हानि क्या—व्यवहारिक शिक्षा में इधर से उधर निकल भागने को जगह नहीं मिलती। यहां या तो आप कार्य्य को ठीक ही करेंगे, या चौपट ही कर डालेंगे ; दो में से एक

बात हो सकेगी, तीसरी नहीं। आज कल के शिक्षितों में हम क्या देखते हैं? वे बातें करेंगे, मगर स्वयं समझेंगे नहीं कि क्या कह रहे हैं। एक बार मैं देहली से प्रयाग आ रहा था। मेरी गाड़ी में मेरठ के एक विद्यार्थी बैठे हुए थे। वे प्रयाग कानून की परीक्षा देने आ रहे थे। बात होते होते देश की चर्चा चली। आप बोले —

"साहब, मेरे ख़याल में तो आज कल साधुओं में Reform (सुधार) होना चाहिये।"

मैंने पूछा —

"कहिये क्या होना चाहिये?"

वे बोले— "साहब उनके लिए पाठशालायें खोलनी चाहियें।"

मैंने फिर पूछा—"वहां क्या पढ़ाया जाए।"

बस इसके आगे कुछ नहीं, बेचारे घबरा से गये। उन्होंने इस विषय में कुछ सोचा हुआ नहीं था, कोई निश्चित बात उनके दिमाग़ में न थी। ये सब दोष हमारी वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली के हैं। कला कौशल दस्तकारी की शिक्षासे चरित्रबल बढ़ेगा, क्योंकि करके दिखलाने की आदत पड़ जायगी।

यही कारण है कि अमरीका की शिक्षा प्रणाली में उद्योग, दस्तकारी की शिक्षा को प्रथम स्थान दिया गया है। मानसिक स्वतन्त्रता लाने के लिये यह पहली सीढ़ी है। इससे मानसिक तरङ्गों का उद्देश हो और हो जाता है; वे बातूनी जमा खर्च की ओर नहीं चलतीं। उन में सम्भल कर चलने की आदत पड़ जाती है। अमरीकन विश्व विद्यालओं में प्रोफेसर लोग कभी

भी अपने विचारों को अपने विद्यार्थियों के अन्दर भरने का यत्न नहीं करते। उनको सदा यही कोशिश रहती है कि विद्यार्थी स्वयं स्वतन्त्र विचार करने का अभ्यास करे। वह केवल घटनाओं को सामने धरने का यत्न करता है और तत्सम्बन्धी सभी सामग्री जुटा देता है। उसको सदा यही इच्छा रहती है कि दूसरा कोई विद्यार्थी उस से भी दो कदम आगे बढ़ कर नई बातें निकाले। इसी कारण अमरीका में नित्य नए आविष्कार होते हैं। प्रकृति माता के खज़ाने खोलने के लिये इसी प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है।

परन्तु भारतीय समाज में एक और बड़ी भारी बीमारी है। यहां धार्मिक बातों में बुद्धि का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते। धर्म के नाम पर कैसी हो असंभव बातें कही जायें, वे सब मानने के लिए झट तय्यार हो जाते हैं। अपने निज के कामों—दुकान्दारी व्यवहार—में तो कुछ सोच कर काम भी करेंगे, पर धार्मिक बातों को बुद्धि से परे समझते हैं। यह सरासर भूल है। धर्म को भी अमली जामा पहनाना चाहिये। उस पर भी विचार-शक्ति को काम में लाना चाहिए। लाखों मनुष्य इसी लिए ठगे जाते हैं कि वे धर्म के नाम पर सब कुछ आँखें मूंद कर मान लेते हैं। शास्त्रों को उन्होंने पढ़ा नहीं; वेदों को उन्होंने देखा नहीं; जिसने जो कुछ ऊट पटांग शास्त्रों की आड़ में कह दिया उसे झट स्वीकार कर लेते हैं। संस्कृत का श्लोक होना चाहिए; उसका अर्थ समझें न समझें, जिसने जो श्लोक सुना दिया वही उनके लिए वेद वाक्य है। यह भयङ्कर गुलामी है। इस दासता से निकलने की बड़ी ज़रूरत है। इस दासता के कारण समाज में बड़े बड़े अत्याचार हो रहे हैं और दुर्दङ्ग लोग मनमाने श्लोक रचकर ठग विद्या चला रहे हैं। इसलिये सब काम सोच विचार कर करना चाहिये,

चाहे वह इस लोक के लिए हो या परलोक के लिए। धार्मिक बातों पर भी अन्धा विश्वास हानिकारक है। पक्षपात छोड़कर धर्म के प्रत्येक अङ्ग पर विचार करना ठीक है। सन्मार्ग पर चलने के लिए सद्विवेकिनी बुद्धि होनी चाहिये। न्याय युक्त कार्य्य तभी हो सकता है जब व्यक्ति उस काम को अच्छे प्रकार समझ लेता है। बिना समझे बूझे काम करने वाले मनुष्य, किसी सत्पुरुष के उपदेश से भले हो कभी अच्छा काम कर बैठें, किन्तु वे भूलें अधिक करेंगे। वे दुर्जन और सज्जन पहचानने की योग्यता के न होने से धोखा खा जायेंगे। विचारशील मनुष्य अपने कर्मों का आप स्वामी है, वह स्वतन्त्र है। सोच समझ कर कार्य्य करने के बाद यदि उसमें कहीं त्रुटि हो भी जाती है तो किसी तरह का शोक नहीं होता; दूसरी बार वह अपनी भूल को शीघ्र सुधार लेगा और इस प्रकार धीरे धीरे उन्नतपथ पर आरूढ़ हो सकेगा।

मानसिक-स्वतन्त्रता का दूसरा गुण 'धार्मिक-सहन-शीलता' है। शिक्षा द्वारा मनुष्य में विचार-स्वातन्त्र्य आना चाहिए। आज हम क्या देखते हैं? कालेजों से पढ़े हुए हमारे छात्र आपस के वैर विरोध नहीं छोड़ते। स्वार्थ में फसे हुए, नौकरिओं की खातर, वे सर्वसाधारण में मज़हबी द्वेष की आग फूंक कर अपना मतलब निकालते हैं। यह सर्वथा अनुचित है। शिक्षित व्यक्ति वह है जो अपने विरोधी को मानसिक स्वतंत्रता देने का ऐसा ही पक्षपाती हो जैसा कि वह अपने लिए चाहता है। शिक्षित मनुष्य को 'विभिन्नता' के सिद्धांत का तत्व समझ लेना चाहिए। संसार में प्रत्येक वस्तु एक दूसरे से भिन्न है, मनुष्यों के स्वभाव एक दूसरे से अलग हैं। देशों की सभ्यता एक दूसरे से जुदा जुदा है,

इसलिए हमारे विचार यदि एक दूसरे से भिन्न रहें तो इसमें आश्चर्य्य की कोई बात नही है। शिक्षा का उद्देश्य यह है कि विभिन्नता से एकता हो ; हम में विभिन्नता सहन करने की आदत आजानी चाहिए। यदि हमारा किसी से किसी विषय में मतभेद है तो हमें तत्काल यह परिणाम नहीं निकालना चाहिए कि इसमें अमुक व्यक्ति का कुछ न कुछ स्वार्थ है। इसमें संदेह नहीं कि बहुत से लोग स्वार्थवश मतभेद रखते हैं और द्वेषाग्नि फैलाते हैं परन्तु यह आम कायदा नहीं है। परस्पर की धार्मिक सहनशीलता से समाज में शान्ति रहती है और उन्नति का कार्य्य मज़े में चला जाता है।

भारतवर्ष में भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के लोग आपस में लड़ते झगड़ते रहते हैं, इससे देश में एकता नहीं होने पाती। देश प्रेमियों का यह ख़ास लक्ष्य होना चाहिए कि ऐसे लड़ाई झगड़े दूर हों। सोच विचार कर ऐसी शिक्षा प्रणाली की जड़ जमानी चाहिए जो एकता का प्रचार करे। योरप में भी ऐसे ही मज़हबी दङ्गे होते थे ; रूस में अब भी होते हैं ; टर्की में भी आरमीनियन और मुसलमानों में चल च होती रहती है, लेकिन योरप ने अपनी इस कमज़ोरी को वैज्ञानिक शिक्षा द्वारा दूर कर लिया है। जब लोग प्राकृतिक नियमों को समझने लगे ; उनमें स्वतन्त्र विचार करने की शक्ति आई ; पादरियों का प्रभाव कम हुआ तो धार्मिक सहनशीलता भी धीरे धीरे समाज में आने लगी। भारतवर्ष में अभी हम मानसिक-दासता में फसे हैं, और सम्प्रदायों का पक्षपाती रंग हम पर चढ़ा हुआ है, इसी कारण ये सब मज़हबी झगड़े होते हैं। अब ऐसे विद्यालयों की ज़रूरत है, जहां विशुद्ध भारतीयता सिखाई जाय। जहांके विद्यार्थी राष्ट्रीय संगठन को लक्ष्य मानकर एकताका मंत्र पाठ करें। इसका यह अभिप्राय नहीं कि हम अपने विरोधियों

के सामने एकता के लिए गिड़गिड़ाते फिरें, बल्कि इसका केवल मात्र उद्देश्य "न्याय और सत्य" पर चलना है। सर्व-साधारण में जो झूठ मूठ का पक्षपात घुसा हुआ है उसको दूर करने की चेष्टा करनी चाहिये। ऐसे सैकड़ों उपदेशकों की आवश्यकता है जो चरित्र-संगठन और धार्मिक सहन-शीलता का स्थान स्थान पर उपदेश दें। मुसलमान नेताओं को इस बात पर विशेष ध्यान देना उचित है। उन्हें कई एक 'मकतब' खोल कर इसी ढंग के लेकचरार तय्यार करने की बड़ी ज़रूरत है। मुसलमानों में धार्मिक-सहन-शीलता की बड़ी कमी है, और सच्चरित्रता सिखलाने वाले नेताओं का अभाव सा है। मुझे अपने देश के मुसलमान नवयुवकों को कुमार्ग पर चलते हुए देख बड़ा कष्ट होता है, पर क्या करूं, कुछ पेश नहीं आती। देश में राष्ट्रीयता के अभाव से अभी मुसलमान देश-बन्धु हिन्दु उपदेशकों की बात पर ध्यान नहीं देते। वे समझते हैं कि हिन्दू उनके हित की बात नहीं कह सकता; यही मज़हबी पक्षपात है।

इसलिए 'पक्षपात' के इस गहरे समुद्र में डूबी हुई भारत जनता को आजकल की रद्दी शिक्षा की ज़रूरत नहीं। इसके लिये खास ढंग की पुस्तकें बनानी पड़ेंगी; स्थान स्थान पर चिन्ताशील, उदार विद्वानों के उपदेश कराने होंगे, वैज्ञानिक शिक्षा के सचित्र व्याख्यानों द्वारा जनता की मूर्खता दूर करनी होगी। कहां तक कहें, हमारे सामने बड़ा भारी काम है। हमें शीघ्र काम में लगना चाहिए। आज आर्य्य-समाज, सनातन-धर्म सभाओं के शास्त्रार्थों के कैसे ज़हरीले फल देखने में आ रहे हैं; हिन्दु मुसलमानों के पारस्परिक द्वेषों से देश की कैसी हानि हो रही है। जो शिक्षा हमें आजकल मिल रही है उससे परस्पर के भेद बढ़ रहे हैं। परस्पर मिल कर

उन्नति करने के बदले हम केवल अपने स्वार्थ को ही सर्वोपरि समझते हैं। जिस ऐतिहासिक शिक्षा का उद्देश्य, उदार विचारों का फैलाना और अपनी भूलों का सुधार करना है, उसी को पढ़ कर हमारे बच्चे संकुचित विचारों के हो रहे हैं।

प्यारे बन्धुओ, अब आप अपनी दशा देखिये। आप शिक्षा प्रचार करना चाहते हैं? उसके लिए रुपया खर्च करने को तैय्यार हैं? बहुत अच्छा, कृपया अपने उद्देश्य को निश्चित कर वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के गुण दोष समझ कर काम कीजिए। देश की वर्तमान आवश्यकताओं को सामने रख कर काम करना उचित है। वर्तमान भारत के मज़हबी झगड़े दूर करने की अत्यन्त आवश्यकता है। आपका एक पैसा भी झगड़े फैलाने वाली 'शिक्षा' के लिए खर्च न होना चाहिए। आपके द्वारा ऐसे झगड़े फैलाने वाली पुस्तकों का प्रचार सर्वथा निन्दनीय है। हमारा उद्देश्य भारत-सन्तान को एक सूत्र में पिरोना है; उनकी एक माला बनानी है।

मानसिक-स्वतन्त्रता का तीसरा गुण चरित्र का सुधार करना है। शिक्षित मनुष्य में अच्छे काम करने की आदत होनी चाहिए। जैसे पशु अपने स्वभावानुसार काम करता चला जाता है, वह अच्छा बुरा नहीं जानता, वैसे ही हमें शिक्षा द्वारा अपने आप को ऐसा बनाना है कि हम सत्य ही सोचें, सत्य ही बोलें और सत्य ही करें। हमारे में जो पशुपन है उसे हमको निकालना है। वह निकले कैसे? उसके तीन चार उपाय एक अमरीकन विद्वान ने बतलाए हैं, उनको मैं नीचे लिखता हूं—

(क) पशुपन के स्वभाव छोड़ने के इच्छुक को प्रथम अपनी इच्छा के विरुद्ध अच्छे काम करने का अभ्यास करना चाहिए। जिसको धन से प्रेम है उसे दान देने की

आदत डालना उचित है; जो दूसरों से द्वेष करने की आदत रखता है वह दूसरों की सेवा करने का अभ्यास करे। तात्पर्य्य यह है कि श्रेष्ठ कामों को आरम्भ करो। सोचने में—दीर्घसूत्रता में—समय नष्ट करना ठीक नहीं। आरम्भ कर दो। लोगों से अपना रोना मत रोते रहो। जिस बुरी आदत को आप छोड़ना चाहते हैं वह आपके उद्योग करने ही से छूटेगी।

(ख) जब आप किसी बुरी आदत को छोड़ने का सङ्कल्प कर लें तो तत्सम्बन्धी सभी सहायक साधनों को इकट्ठा करने का उद्योग कीजिये। यदि आप शराब पीते हैं और आपकी इच्छा है कि आप उस बुरी आदत को छोड़ दें, तो आपको उन सब साधनों को काम में लाना चाहिए जो उसके छोड़ने में आपकी सहायता कर सकते हैं। साथ ही जिन कारणों से आप उस आदत में फँसे हैं—जैसे बुरी संगत—उन कारणों से भी आप दूर रहिए। यदि सौ पचास आदमियों के सामने प्रण करने से वह आदत छूटती हो तो उसे भी करने से न चूकिए। तात्पर्य्य यह है कि सभी प्रकार के उचित दबाव डाल कर उस बुरी आदत से युद्ध करने की ठान लीजिए।

एक बार किसी शराबी ने समाचारपत्र में विज्ञापन दिया था—"जो कोई मुझे शराब पीते हुए किसी दुकान में पकड़ पायगा उसको मैं डेढ़ सौ रुपया इनाम दूंगा; क्योंकि मैंने अपनी धर्मपत्नी के सन्मुख शराब छोड़ने की प्रतिज्ञा की है"। जब इस प्रकार का दृढ़ सङ्कल्प किया जायगा तो भला फिर बुरी आदत क्यों न छूटेगी।

(ग) किसी बुरी आदत को छोड़ते समय यह निश्चय कर लीजिए कि हम उसके पालन करने में किसी 'अगर' या 'अपवाद' को स्थान नहीं देंगे। बहुत से लोग अपनी बुरी आदतों को धीरे धीरे छोड़ने का वचन दिया करते हैं, जो सर्वथा असंभव है। जब शत्रु को भगाना है तो धीरे धीरे कैसा? हां, धीरे धीरे आप तय्यारी कर सकते हैं, मगर जब भगाना होगा तो गला दबाकर धता ही करना ठीक है। शत्रु को अपने ऊपर जमने का अवसर ही न दीजिए; उसके ज़रा ज़रा प्रभाव को निकालते जाइए; उसकी नसें ढीली कर दीजिए। जब निकालने का समय आवे तो अपनी सारी शक्तिओं को जुटाकर उस पर धावा कीजिए। यही विजय प्राप्त करने का तरीक़ा है। आप चुरट पीना छोड़ना चाहते हैं, आप कहते हैं—"अच्छा सुबह शाम दो बार पिया करेंगे"—यह भूल है। इस प्रकार आप अपनी बुरी आदत नहीं छोड़ सकते; क्योंकि यहां तो—"अंगुली पकड़ते पहुंचा पकड़ा"—वाली बात है। जब एक बार आप अपने शत्रु को अवसर देंगे तो फिर वह आप पर पूरा अधिकार जमा लेगा। उसको दूर भगाने का एक मात्र उपाय यही है कि उससे किसी प्रकार का सरोकार न रखे; उसके सभी साथिओं का बहिष्कार कर दे, और प्रण कर ले कि शत्रु से युद्ध में कभी न हारूंगा। इस कुमति और सुमति के युद्ध में यदि शत्रु को ज़रा इञ्च पर भी लाभ मिल जाता है तो समझ लेना चाहिए कि हमारे वर्षों के उद्योग पर पानी फिर गया। इन विकट शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के

लिए "No compromise." किसी प्रकार का अध-कचरा सौदा नहीं करना चाहिए। बहुत लोग जब अफीम छोड़ने लगते हैं तो उसकी बजाय कोई दूसरा नशा लगा लेते हैं। यह बड़ी भूल है। एक शत्रु को भगा कर दूसरे को बुलाना इसमें कुछ भी बुद्धिमत्ता नहीं। यत्न ऐसा कीजिए कि अपनी बुरी आदत के विरुद्ध सब प्रकार की सामग्री जुटाते जाइए, जब आपको निश्चय हो जाय कि हमारा दुर्ग दृढ़ हो गया है तो शत्रु से दो दो हाथ कीजिए। जितनी बार आप शत्रु को परास्त करेंगे उतना ही अधिक आपका आत्मिक बल बढ़ेगा, और अन्त को आपकी पूरी विजय हो जायगी।

(घ) प्रत्येक शुद्ध सङ्कल्प की पूर्ति के हेतु प्रथम संभव अवसर को काम में लाओ। नवीन उत्साह से पूर्ण शुभ सङ्कल्पों को शीघ्र कार्य्य में परिणत करना चाहिए। उनका निरादर करने से आत्मिक बल घटता है और अविद्या का गहिरा आवरण चित्त पर छा जाता है। शुद्ध सङ्कल्प दैवी सूर्य्य की उन रश्मियों का प्रकाश है, जो हमारे मलिन संस्कारों के आवरण में से छन कर हम तक पहुंचता है। उस प्रकाश से लाभ उठाना हमारा कर्तव्य है; इसी पर हमारी भावी मानसिक उन्नति निर्भर है। चाहे लाख हम अच्छे अच्छे ग्रन्थ पढ़ें; लाखों बार योग दर्शन के सूत्र रटें, यदि हम प्रत्येक सुअवसर पर उन उप-देशों के अनुसार कार्य्य करने पर कटिबद्ध न होंगे तो हम कभी भी अपना सुधार नहीं कर सकेंगे।

मानसिक-स्वतन्त्रता के इस गुण 'सच्चरित्रता' की प्राप्ति के लिए मैंने उपरोक्त चार तरीके, बुरी आदतों के सुधार के, बतलाये हैं। आशा है कि मेरे प्यारे पाठकों को उनसे अच्छी सहायता मिलेगी।

मानसिक-स्वतन्त्रता का चौथा गुण व्यक्ति की आन्तरिक शक्तिओं का विकास करना है। मनुष्य को परमात्मा ने ग़ज़ब की शक्तियां दी हैं। वे बीज रूप हमारे अन्दर विद्यमान हैं। शिक्षा एक साधन है जो उन शक्तिओं के विकास करने में सहायता देता है। जिस शिक्षा से हमारी ये सब शक्तियां दबी पड़ी रहें और उनकी वृद्धि न हो, वह शिक्षा केवल लपोड़संख, समय नष्ट करने वाली है। हम संसार में उन्नति करने के लिए आए हैं, न कि टुकड़ा कमा कर केवल पेट भरने के लिए। पेट भरना ठीक है, आवश्यक है, परन्तु वह उद्देश्य नहीं है। हमें अपने उद्देश्य को सदा सामने रखना चाहिए। हमें संसार के लिए लाभदायक बनना है। हमें अपनी शक्तिओं का विकास कर दूसरों की सेवा करनी है? जो शिक्षा केवल रट्टू है; केवल घोखा घोखी है; उससे हमारा कुछ भी उपकार नहीं हो सकता। जब वह शिक्षा व्यवहार में लाई जाए; जब उसको हम अपने शरीर का अङ्ग बना लें; जब उसको स्वाधीन कर उसे लाभकारी बना सकें, तभी उस शिक्षा से हमारी शक्तिओं का विकास हो सकता है, और वह अपने उद्देश्य को सार्थक कर सकती है। शिक्षा व्यवहारिक Practical हो; उसको हम काम में ला सकें। हम उसे काम में तभी ला सकेंगे जब उसको हमने अपने अन्दर धारण कर लिया हो। ऐसी शिक्षा किसी काम की नहीं, जो परीक्षा पास करने के समय तक हमारी स्मरण-शक्ति का बोझ बना रहे। जहां इम्तिहान पास हुआ, फौरन उस बोझ को उठा कर फेंक

दिया। ऐसी शिक्षा से मस्तिष्क बिगड़ जाता है और मनुष्य कोई व्यवहारिक कार्य्य-सम्पादन योग्य नहीं रहता।

अतएव शिक्षा के प्रेमियों को इस अङ्ग की ओर भी विशेष ध्यान देना चाहिए। प्रत्येक बालक को इस प्रकार की शिक्षा मिले, जिससे उसकी आन्तरिक शक्तियों के विकास में सहायता हो। हम सब में जुदा जुदा शक्तियां हैं। एक ही प्रकार की शिक्षा सब के लिए हानिकारक है। जिसमें जैसा बीज है उसको वैसी ही खाद मिलनी चाहिए। ऐसे स्कूल और कालेज खोलो जहां विद्यार्थी अपनी इच्छानुकूल—अपनी रुचि अनुसार—शिक्षा पा सकें, उनको किसी विषय के पढ़ने के लिए मजबूर न किया जाए। जड़ जमाने के लिए तो प्रारम्भिक शिक्षा में समानता रहेगी ही, परन्तु आगे चल कर प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी रुचि अनुसार पढ़ना ठीक होगा। कहने का तात्पर्य्य यह है कि शिक्षा को स्वाभाविक बनाना चाहिए। आज हमारे देश में अस्वाभाविक ढग की शिक्षा का प्रचार है और बच्चों के जीवन नष्ट किए जाते हैं। हमें अब शीघ्र इसको रोकना चाहिए।

मानसिक-स्वतन्त्रता के चार गुणों को बतला कर अब हम शिक्षा के आदर्श, उस शिखर, की ओर दृष्टि करते हैं जिसके लिए यह सब सामग्री जुटाई गई है; जो हम सब का लक्ष्य होना चाहिए, जिसके लिए हम सब ने इस शरीर को धारण किया है। उस आदर्श, उस लक्ष्य का नाम, मैंने—"आत्मिक-स्वतन्त्रता" रखा है।

—:०:—

आत्मिक-स्वतन्त्रता ।

शरीर किस लिए पुष्ट किया जाए ? आत्मिक-स्वतन्त्रता के लिए। आर्थिक-स्वतन्त्रता की आवश्यकता क्यों है ? आत्मिक-स्वतन्त्रता हेतु । मानसिक-स्वतन्त्रता प्राप्त करने से क्या मिलेगा ? उत्तर वही है–"आत्मिक-स्वतन्त्रता" । यही हम सब का लक्ष्य है ; यही भारतीय सभ्यता का उद्देश्य है ।

आप पूछेंगे कि वह आत्मिक-स्वतन्त्रता क्या है ? उसके गुण क्या हैं ? उसकी व्याख्या होनी चाहिए। यही अब मैं करने की चेष्टा करूंगा । आपके सामने हृदय को चीर कर रखूंगा । क्योंकि मस्तिष्क का विकास, बुद्धि की कुशाग्रता शरीर का बल, धन की शक्ति सभी तुच्छ हैं, यदि हमने आत्मिक-स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं की। आत्मिक-स्वतन्त्रता के प्रकाश के बिना सभी अन्धेरे में हैं । क्या आज बड़े बड़े लम्बे चौड़े पंजाबी सिक्खों की कमी है ? क्या वे बलिष्ठ नहीं हैं ? क्या आज भारत में दानी नहीं हैं ? क्या आज हमारे में ऊंचे मस्तिष्क वाले बाबू नहीं हैं ? क्या आज बाल की खाल उतारने वाले पण्डितों का हम में अभाव है ? ये सब हैं, पर उस ढंग के नहीं, जिनकी व्याख्या मैंने अपने व्याख्यान में की है । यदि उस ढंग के होते तो आत्मिक-स्वतन्त्रता का बहुत सा प्रश्न हल हो गया होता। इसी लिए मैंने उन साधनों की व्याख्या, और शिक्षा के आदर्श की पूर्ति करने वाले अङ्गों की मीमांसा, पहले कर दी है ताकि रास्ता साफ हो जाय, और लक्ष्य के आगे जो रुकावटें हैं वे दूर कर दी जाएं । जब भूमि साफ हो गई, बाधाओं को हटा दिया गया, सब सामग्री जुट गई तब परिणाम पर पहुंचने में कुछ भी कठिनाई न होगी ।

आत्मिक-स्वतन्त्रता क्या है ? मनुष्य जो संसार में आया है उसका उद्देश्य—खाना पीना, धन इकट्ठा करना, अच्छे अच्छे आविष्कार कर लेना—यही नहीं है, क्योंकि आखिर इन सब वस्तुओं का कुछ परिणाम होना चाहिए। मनुष्य संसार में अपने आपको जानने तथा अपने स्वरूप को पहचानने के लिए आया है। अज्ञानवश वह समझता है—"मैं कुछ नहीं हूं, मुझसे कुछ नहीं हो सकता; मेरे में कुछ भी शक्ति नहीं है"—इत्यादि भाव उसके अन्दर हैं। वह अपने स्वरूप को देख तथा पहचान नहीं सकता। पहचाने कैसे ? जिस शरीर में उसका निवास है, जिस कमरे में वह रहता है उसकी दीवारों पर 'दासता' के लाखों भद्दे चित्र खिंचे हैं। यह नियम है कि अपना मुंह खुर्दरी, छेदों से भरी हुई, ऊंची नीची तल वाली वस्तु में दिखाई नहीं देता। ज़रूरत है कि उस खुर्दरेपन को दूर किया जाय, छेद भरे जाय और ऊंचनीच दूर कर दीवारों का समतल बनाया जाए। जबतक यह कमी दूर नहीं की जायगी तब तक अपना स्वरूप दिखाई नहीं देगा। शरीर एक साधन है, जो इन्द्रियों द्वारा वाह्य जगत् से संस्कारों को ग्रहण करता है। वही अच्छे बुरे संस्कार उसको बना दें या बिगाड़ दें। जिस समय हम यह कहते हैं कि अमुक पुरुष महान आत्मा रखता है, या अमुक पुरुष में बड़ा आत्मिक बल है तो इसका तात्पर्य्य यह है कि वह पुरुष अपने स्वरूप को पहचानने लग गया है। आत्मा बढ़ घट नहीं सकती, वह तो एक सी रहती है, केवल भेद इतना हो जाता है कि महान् आत्मा वाला पुरुष अपने शरीर रूपी कमरे की दीवारों में अपना मुंह देखने लग जाता है; उसने उन भेदों, उन छिद्रों, उस खुर्दरेपन को कुछ न कुछ दूर कर दिया है इसी लिए वह दूसरे साधारण मनुष्यों से भिन्न हो जाता है। उसको अपने अस्तित्व का

पता लग जाता है और जिस पवित्र श्रोत से उसका सम्बन्ध है उसका कुछ न कुछ ज्ञान उसे हो जाता है। जितना अधिक जिस आत्मा के शरीर रूपी कमरे की दीवारें साफ सुथरी होती जाती हैं उतना अधिक उसका आत्मिक बल बढ़ता जाता है; जैसे जैसे कुसंस्कारों से वे दीवारें भोंड़ी होती जाती हैं वैसे ही वह अपने को भूल कर घृणित चेष्टायें, और कुकर्म करने लगता है। इसलिए आत्मिक-स्वतन्त्रता का पहला लक्षण अपने स्वरूप को पहचानना है। 'मैं' जो इस शरीर में बोल रहा है, वह शरीर नहीं, बल्कि शरीर से भिन्न जीती, जागती, अजर, अमर, नित्य, शाश्वती शक्ति है। उस शक्ति को—उस आत्मा—को न आग जला सकती है, न पानी डुबा सकता है, न तलवार काट सकती है, न बन्दूक की गोली मार सकती है। उस आत्मा का सम्बन्ध अमृत के स्रोत परमात्मा से है जो सारे ब्रह्माण्ड पर अखण्ड राज्य करता है। इसलिए आत्मा 'अमृत-पुत्र' है। यह ज्ञान, यह जागृति, यह आत्मिक स्वरूप सत्ता का ज्ञान हमारी शिक्षा का आदर्श है। मैं शरीर से भिन्न, लेकिन शरीर रूपी साधन द्वारा, संसार में अपने पिता परमात्मा का न्यायशील राज्य स्थापित करने के लिए आया हूं। मुझे उस प्रभु ने अपना सिपाही बना कर इस संसार में फैले हुए, प्रकृतिवाद के दोषों को दूर करने के लिए भेजा है। मैं कमज़ोर नहीं हूं; मैं दुर्बल नहीं हूं; मैं किसी का 'ताबेदार गुलाम' नहीं हूं। मैं आत्मा हूं, आत्मा! वह आत्मा जिसमें असीम बल है; जो असम्भव को सम्भव कर सकता है; जिसमें पहाड़ को उड़ा देने की शक्ति है; जो अग्नि, जल वायु सब को वश में कर सकता है।

इसी आत्मा का ज्ञान आत्मिक-स्वतन्त्रता की कुंजी है। शरीर आपका पुष्ट है, खाना कमाने की शक्ति आप में है, बुद्धि-

बल भी है, इतना पाकर आप अपने स्वरूप आत्मा को पहचानिए। क्या आपको कोई डरा सकता है? डराता किसको है, आपको? डर उसमें रह नहीं सकता जो अपने आपको 'आत्मा' समझता है। शरीर टूट फूट सकता है, बिगड़ सकता है; मगर आत्मा? न किसी से टूटे न बिगड़ सके। फिर किसका डर है। यदि हमें ईश्वरीय आज्ञा पालन करने में कोई डर दिखाए, तो डर दिखाने वाले की यह अपनी बेवकूफी है; वह केवल अपनी भीरुता का परिचय देता है।

अतएव प्रत्येक बालक बालिका को, प्रत्येक स्त्री पुरुष को, इस पवित्र मन्त्र की दीक्षा देनी चाहिए। यह स्वतन्त्रता का मूल मन्त्र है। इसी का, भगवान कृष्णचन्द्र जी ने, अपनी गीता में उपदेश दिया है—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्, नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो, न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

फिर आगे कहते हैं—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरो पराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा, न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

आर्य्य-सन्तान, सुना आपने! ऐसा स्पष्ट, ऐसा सुन्दर, ऐसा निर्मल उपदेश आत्मिक-स्वतन्त्रता का आपको कहां से मिलेगा। भगवान कहते हैं—

"यह आत्मा न उत्पन्न होता है, न यह मरता है; न यह कभी हुआ और न होकर इसका अन्त हुआ। यह जन्म नहीं लेता; यह नित्य है; सदा रहने वाला है; सदा एकरस है, इसलिए जब किसी का शरीर कट जाता है तो आत्मा वैसे का वैसा ही रहता है, यह नहीं मारा जाता"।

"जैसे हम पुराने कपड़े उतार कर नए कपड़े पहन लेते हैं, ऐसे ही आत्मा पुराने शरीर को उतार कर नया शरीर धारण कर लेता है।"

आहा! क्या सुन्दर उपदेश है। क्या इस उपदेश को धारण करके भी कोई भीरु रह सकता है? कदापि नहीं। सब प्रकार के भय, सब तरह की कठिनाइयां उसी समय हवा हो जाती हैं जिस समय इस उपदेश को हम अपने हृदय पर लिख लेते हैं। यह उपदेश सर्व प्रकार के बन्धनों को काट देता है; यह अन्याय को जड़ से उखाड़ने वाला है; यह असीम आशा, मधुर आनन्द, का रस पान कराता है। यह मुरदों में जान डाल सकता है; यह कायरों को वीर बनाने वाला है।

यदि शिक्षा पाकर भी हम भीरु ही रहे, यदि शिक्षा ने हमारी कायरता भी दूर न की, यदि शिक्षित होकर भी हम—"हां हज़ूर फिदवी आपका गुलाम है; यह ख़ाकसार है"—आदि दीनता के वचनों से पेट पालते रहे तो हमारी शिक्षा किसी भी काम की नहीं। हमें मनुष्य बनना है और हम अपने अधिकारों में किसी से कम नहीं हैं। प्राचीन आर्य्य-मातायें अपने बच्चों को—

"शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि"

के मन्त्र सुना कर प्यार किया करती थीं। इसी लिए उनकी सन्तान "दीनता, पलायनता, अधीनता" इन दुर्गुणों से अपरिचित थी। वे आर्य्य-वीर मृत्यु के साथ कुश्ती करने के लिए सदा उद्यत रहते थे और "न्याय" तथा "ईश्वरीय राज्य स्थापना" हित सिर देना अपना अहो भाग्य समझते थे।

अतएव मेरे प्यारे बन्धुओ, आत्मिक-स्वतन्त्रता के प्रथम गुण—आत्मा का स्वरूप—को भली प्रकार समझ लीजिए। अपने आपको शरीर से अलग अजर, अमर, और अविनाशी जानिए। अपने सब तरह के डर निकाल डालिए, और अपने आपको ईश्वर-पुत्र समझकर प्रभु का पवित्र झण्डा उठाइये। यह झण्डा उठाने से आपको अपने स्वरूप का ज्ञान हो जायगा और संसार में प्रत्येक शरीर के अन्दर आपको अपने जैसी आत्मा दिखाई देगी। आपको पता लगेगा कि हम सब एकही पिता के पुत्र हैं, और हमारा परस्पर एक दूसरे के साथ द्वेष करना वृथा है। संसार एक सुन्दर उद्यान है; उसमें हम सब के लिए काफी फल लग सकते हैं यदि हम न्याय पूर्वक उनका भोग करना सीखें। मनुष्यों के स्वभावों में जो विभिन्नता है, वह उनके आत्माओं के कारण नहीं, बल्कि भिन्न भिन्न संस्कारों से युक्त शरीरों का परिणाम है। द्वेष-भाव त्याग कर संसार में शान्ति की स्थापना करनी चाहिए। भला जो व्यक्ति अपने जैसी आत्मा को दूसरों में देखेगा, वह किसी से द्वेष कैसे कर सकता है? कदापि नहीं। अब अपना स्वरूप पहचान लेने से प्रकृति के यथार्थ गुणों का ज्ञान हो जायगा तो ये झूठे सांसारिक मद भी धीरे धीरे कम होते जायेंगे। अपने सामने संसार में देखो क्या हो रहा है? किस प्रकार मनुष्य मनुष्य का शत्रु बना हुआ है, और एक जाति दूसरी जाति को नीचे गिराने में, कूट नीति के कैसे कैसे गर्हित उपायों का, अवलम्बन करती है। जिसको सभ्य जातियां "Diplomacy राजनीति" कहती हैं वह सचमुच वंचकता की खानि हैं। हा! इस अधम स्वार्थ के लिए कैसे कैसे पाप किए जाते हैं; मनुष्य अपने भाई मनुष्य को धोखे से बहका कर ले जाता है; उसको बेच कर पचास साठ रुपया पैदा करता है। वह बेचारा

ग़रीब अपने घर से हज़ारों मील दूर द्वीपों में जाकर किस निर्दयता से मारा जाता है, उसको स्मरण करने से रोंगटे खड़े होते हैं।

प्यारे भारतीओ? उठो, अपने मिशन को देखो। भगवान् कृष्ण जी की गीता का उपदेश धारण करो। यदि संसार में शान्ति की स्थापना और ईश्वरीय राज्य की जड़ जमाना चाहते हो तो उसका एक मात्र उपाय अपने स्वरूप को पहचानना है। आप अपने स्वरूप को भूल गए हैं। आज आप अपने आपको समझते हैं—"हम कुछ नहीं हैं"—इस भयङ्कर भूल को निकाल दो। जिस परम-पिता के आप पुत्र हैं वह सर्वदा आपके साथ है; वह आपकी सदा रक्षा करता है। उसकी शक्ति के सामने चक्रवर्ती राजा की तोपें, बन्दूकें, फौज आदि तुच्छ हैं। वे कुछ भी हक़ीक़त नहीं रखतीं। इसी सत्यसिद्धांत को समझ कर महात्मा बुद्ध देव जी ने, राज पाट को छोड़ कर, अक्षयकीर्ति लाभ की, और संसार को जीत लिया। इसी बल से हज़रत ईसामसीह चक्रवर्ती राजाओं के सिरताज हुए। इसी ज्योति के प्रकाश से हज़रत मुहम्मद साहब ने अरब के रेगिस्तान में रहने वाले जंगलियों को ख़ुदापरस्त बना दिया। उठो गीताजी के उपदेशों को कंठाग्र करो; उनपर विचार करो; उनको जीवन का अंग बनाओ। अपनी आत्मिक ज्योति के दिव्य प्रकाश को देखो। इसके सामने तलवार की चमक, बारूद की लपलप, विद्युत की जगमगाहट ठहर नहीं सकती। आत्मा के इस दैवी प्रकाश से प्रकाशित होकर खड़े हो जाओ, और भारत-जननी के दुखों को दूर करने का संकल्प कर लो।

आप पूछेंगे यह क्यों? जब सारे संसार में ईश्वरीय राज्य स्थापित कर शान्ति फैलाना है तो फिर भारत के दुख दूर

करने का संकल्प क्यों? इसका उत्तर भी बालक कृष्ण ही देंगे। मैं आपको इसका उत्तर क्या दे सकता हूं।

एक बार बालक कृष्ण ने अपने साथिओं के साथ खेलते खेलते थोड़ी सी मिट्टी उठा कर मुंह में डाल ली। साथियों ने जब देखा तो माता यशोदा जी के पास जाकर इसकी सूचना दी। यशोदा जी ने बालक कृष्ण को बुला कर धमकाया और मुंह खोलने के लिए कहा। जब कृष्ण जी ने मुंह खोल कर दिखलाया तो उसमें तीनों लोक दिखलाई दिए। भगवान ने उपदेश दिया—

"यदि सारे संसार का भला करना चाहते हो, यदि सारे संसार में शान्ति स्थापित करने की इच्छा रखते हो तो उसका द्वार—उसका एक मात्र उपाय—भारत-जननी की सेवा करना है। यही सभ्यताओं की माता है; यही सब धर्मों की खानि है; यही सब प्रकार के दुख दूर करने के साधन रखती है।"

इसलिए बिना भारत-माता का उद्धार हुए संसार का उद्धार नहीं हो सकता। सैकड़ों वर्षों के कष्ट सह कर जो यह अब तक जीवित है उसका एक मात्र कारण यही है कि संसार की शान्ति इसके जीवन पर निर्भर है। इसको अपना मिशन पूरा करना है। वह तभी पूरा होगा जब सब भारत-सन्तान भारतीय राष्ट्र के लिए अपना तन, मन, धन न्योछावर करने के लिए तैय्यार हो जायेंगे; जब हम सब एक भारतीयता के रंग में रंगे जाकर "धन्य भारत! धन्य भारत!!" की पवित्र ध्वनि से अपने अन्तःकरण को शुद्ध करेंगे। जब हम सब इस मन्त्र —भारत के मोक्ष में हमारा मोक्ष है; भारत के बन्धन में हमारा बन्धन है" की सार्थकता सिद्ध करने के लिए अपने स्वार्थों को छोड़ने पर कटिबद्ध होंगे।

बहुत से देश-बन्धु यहां पर ये शंकायें करेंगे कि वे क्या देश-सेवा कर सकते हैं? किस प्रकार भारतीयता के रंग में रंगा जा सकता है? वे कहते हैं कि उनके पास धन नहीं, विद्या नहीं, बुद्धि नहीं, फिर भला वे कैसे अपने आपको अपने देश के लिए उपयोगी बना सकते हैं?

इन प्रश्नों का उत्तर देना आवश्यक है। सुनिए। किसी बड़े भवन के बनाने के लिए सब प्रकार के कारीगरों की ज़रूरत पड़ती है। वहां बढ़ई, तक्षक, लुहार, शिल्पी, मज़दूर प्रभृति सभी प्रकार के काम करने वालों की आवश्यकता है। एक साधारण मज़दूर, जो केवल ईंट मिट्टी उठा कर लाता है, ऐसा ही उपयोगी है जैसा कि अच्छा कुशल बढ़ई। आप यह समझते हैं कि बढ़ई कम मिलते हैं और मज़दूर अधिक, इसलिए बढ़ई अधिक उपयोगी है। यह आपकी स्वार्थ की दृष्टि है; आप 'रुपये' की कसौटी से आदमी की उपयोगिता समझते हैं, जो नितान्त भूल है। भवन नहीं बन सकेगा, यदि मज़दूर न मिलेंगे। भवन बनाने वालों को उनकी ऐसी ही आवश्यकता है जैसी कि एक कुशल मेमार की; इसलिए भारतीय-राष्ट्र-अट्टालिका बनाने के लिए ग़रीब, अमीर, विद्वान, स्त्री, पुरुष, बालक वृद्ध सभी प्रकार के काम करने वालों की आवश्यकता है। यहां स्वार्थ की कसौटी से मज़दूरी नहीं दी जाती, यहां की कसौटी केवल "शुद्ध अन्तःकरण" है। यदि आपके पास भारत-जननी की सेवा के लिए विद्या नहीं है तो न सही, हृदय तो है? इसी की ज़रूरत है; यदि आपके पास माता की भेंट करने को धन नहीं है तो न सही, श्रद्धा तो है? यही चाहिए। परमात्मा अच्छी अंग्रेज़ी, शुद्ध संस्कृत, रत्न जटित थाल, उम्दा भोजन की भेंट से प्रसन्न नहीं होते वे तो केवल एक बात की आशा अपने भक्तों से करते हैं और वह केवल 'श्रद्धा-रक्षित'

हृदय है। यदि आप सच्चे दिल से भारत-माता के भक्त हैं तो आप सब तरह उसकी सेवा कर सकते हैं।

गुरुनानकदेव जी के विषय में एक कथा प्रसिद्ध है। वे एक बार किसी गांओं में उपदेश देने के लिए गए। जब उनके आने की खबर ग्राम में फैली तो एक ग़रीब किसान, महाराज जी के दर्शन करने के लिए आया, और पाओं पर सिर रख कर बोला—

"महाराज, आज मुझ दास के घर का भोजन ग्रहण कीजिए।"

गुरू महाराज खिले चेहरे से बोले—

"अच्छा भाई, जैसी आपकी मरज़ी।"

वह किसान गद्गद् हो गया और अपने घर जाकर भोजन की तैयारी करने लगा। प्रेम-पूर्वक अपनी स्त्री से बोला—

"देख, आज मैं तर गया। गुरू महाराज ने मुझ ग़रीब के घर का सूखा मिस्सा अन्न क़बूल किया। धन्य मेरे भाग! धन्य!! धन्य!!!" उसकी पतिव्रता स्त्री बड़ी प्रसन्न हुई और बड़ी श्रद्धा से भोजन बनाने लगी। उधर गुरुनानकदेव जी के पास उस किसान के चले जाने के बाद, गांओं का धनी महाजन, पालकी में बैठ कर अपने नौकरों सहित आया, और गुरू जी को भोजन का न्योता दिया। महाराज ने उसका भी न्योता स्वीकार कर लिया। लोग दर्शनार्थ आने लगे; अच्छी भीड़ हो गई। नियत समय पर भोजन आया। वह महाजन पालकी में बैठा हुआ, सुन्दर स्वर्ण थालों में रखे हुए भोजन को अपने नौकरों के कन्धों पर रखवा कर लाया। उधर से वह ग़रीब किसान मकई के आटे की मोटी रोटी, गाय के शुद्ध मक्खन में

सना हुआ सरसों का साग और मीठी छाछ का भरा हुआ एक लोटा लेकर प्रेम में झूमता हुआ आ रहा था। किसी ने उसकी ओर दृष्टि भी नहीं की ; सभी उस महाजन की प्रशंसा कर रहे थे।

गुरुनानकदेव जी ने इस बात को देखा। जब किसान निकट आया तो उन्होंने बड़े स्नेह से उसको पास बिठलाया। सब दर्शक चकित होकर देखने लगे। वह महाजन भी चुप-चाप खड़ा देखता रहा। जब गुरूजी किसान के लाए हुए भोजन को प्रेम सहित खाने लगे तो वह महाजन चित्त में बड़ा क्रुद्ध हुआ। अपने क्रोध को कुछ रोक कर बोला—

"महाराज, आप मेरा ऐसा स्वादिष्ट, छत्तीस प्रकार का भोजन छोड़ कर इस मोटे अन्न को क्यों खाते हैं ? मैं कुशल रसोइयों के हाथ से उत्तम भोजन बनवा कर, स्वर्ण के थालों में रखवा कर आपके लिए लाया हूं, आप इसे न खाकर उस दरिद्री के घर का खाना खाते हैं। यह आपने ठीक नहीं किया।"

सारी सभा एकटक दृष्टि से गुरुनानकदेव जी के मुख की ओर देख रही थी। महाजन के अनादर-सूचक वचनों को सुनकर गुरुदेव मुस्कराये, और अपने मुखारबिन्द से फरमाया—

"हमारी इच्छा इस विषय में कुछ कहने की न थी, पर हम देखते हैं कि उपस्थित लोग सभी इसका कारण जानने के अभि-लाषी हैं, इसलिए आप सब को इसका रहस्य समझाते हैं।"

यह कह कर उन्होंने महाजन के लाये हुए थाल में से पांच चार पतली पतली रोटी उठा कर सारी सभा के सामने उनको दोनों हाथों से दबाया। उन रोटिओं में से लहू की धा

निकलने लगी। सब लोग हैरान हो गए। गुरूजी महाजन को सम्बोधन कर बोले—

"देख लिया, यह आपका भोजन किसी धार्मिक मनुष्य के खाने लायक़ नहीं, यह ग़रीबों का खून इकट्ठा किया हुआ है। अब इस मोटे अन्न के गुण देखिए।"

यह कह कर उन्होंने मकई की रोटी को पकड़ कर दबाया तो उसमें से दूध और शहद टपकने लगा। महाजन हक्का बक्का रह गया। गुरु महाराज सारी सभा की ओर दृष्टि कर बोले—

"यह भोजन, जिसको आपके गांओं का महाजन 'मोटा' बतलाता है, प्रेम और श्रद्धा से सना हुआ है। इसको एक ईमानदार सच्चरित्र पुरुष ने अपने पसीने की कमाई से पैदा किया है। जो भक्त अपने इष्ट देव के सम्मुख शुद्ध अन्तःकरण से मोटी वस्तु धरता है, भगवान उसको प्रेम-पूर्वक अपनाते हैं। जो लोग रिश्वत, सूद, मक्कारी से धन कमा, फिर सुन्दर वस्त्राभूषणों द्वारा अपने ईश्वर को प्रसन्न करना चाहते हैं वे बड़ी भूल में फँसे हैं। परमात्मा प्रेम से मिलता है।"

गुरुनानकदेव जी के अमृतमय वचनों का सब श्रोताओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा। सब ने गुरु जी के सदुपदेश के सामने सिर झुकाया। कहने का तात्पर्य्य यह है कि यदि हम शुद्ध हृदय से भारतजननी की सेवा के लिए कटिबद्ध हो जायें तो देश का कल्याण बहुत जल्द हो सकता है। सोचने की बात है कि जब हमारे घर में कोई बीमार होता है तो हम सब तरह की ख़ुशियां भूल जाते हैं। हमें उठते, बैठते, चलते फिरते अपने लड़के या स्त्री की बीमारी की चिन्ता लगी रहती है। हम सब प्रकार के ख़र्च कम कर बीमारी के इलाज का उद्योग करते हैं और अपनी शक्ति भर कोई कसर उठा नहीं रखते।

लज्जा की बात है कि हम अपने घर के कार्य्यों में तो इतने सावधान, पर देश के कामों में इतने उदासीन ? जब इकतीस करोड़ बच्चों की माता-भारतजननी व्याधि-शय्या पर पड़ी हुई हाहाकार कर रही है तो फिर भला हम किस मुंह से रंग-रलिओं में पड़े हुए हैं ? क्या इसी का नाम देश-प्रेम है ?

प्यारे बन्धुओ, जिस दिन देश की दुर्दशा आपके हृदय के टुकड़े टुकड़े कर देगी, उस समय आपके हँसी मज़ाक, रंगरलिया, विवाह तमाशे सब काफ़र हो जायेंगे। उस समय से आपके चेहरे की दशा दूसरी हो जायगी; आपका रंग ढंग बदल जायगा। आपका चेहरा आपके हृदय की दशा बतला देगा और आप "Right earnest" अनन्य उद्योग से देश का दुख दूर करने पर लग जायेंगे।

इसलिए अपने उद्देश्य साधनार्थ प्रत्येक व्यक्ति को खड़े हो जाना चाहिए। यदि आप दुकान्दार हैं तो आप उठते बैठते चलते फिरते यही सोचिए—

"मैं अपने ग्राहकों के कानों तक भारतीयता का सन्देश कैसे पहुंचा सकता हूं ?"

जो ग्राहक सौदा लेने आवे, आप उसे भारत-पुत्र होने का शुभ सम्वाद सुनाइए, और उससे नम्रता-पूर्वक कहिए कि अपने ग्राम में जाकर इस नवीन 'राष्ट्रीय-धर्म' का प्रचार करे। यदि रेल के बाबू हैं तो आप निर्धन मुसाफिरों के साथ प्रेम का बर्ताव कीजिए; उनको आराम पहुंचाने के ढंग सोचिए, और फुरसत मिलने पर उनको भारतीयता के रंग में रंगने का यत्न कीजिए। यहां सब के लिए काफ़ी काम है; केवल करने वाले दरकार हैं। जिस समय भारतीयता के नशे में चूर इकतीस कोटि भारतसन्तान भारतजननी के दुख दूर करने

के लिए खड़े हो जायेंगे तो क्या कोई शक्ति इनके रास्ते में बाधा उत्पन्न कर सकती है ? कभी नहीं।

प्यारे बन्धुओ ! शिक्षा के आदर्श पर मैंने आप लोगों के सम्मुख अपने विचार प्रगट किये हैं, इनको ध्यान से मनन कीजिए। अपने देश की वर्तमान आवश्यकताओं को समझ कर शिक्षा सम्बन्धी विचारों का प्रचार बढ़ाइए। यदि आप स्कूल, पाठशाला खोल सकते हैं तो उसका लक्ष्य वही रखिए जो मैंने आपकी सेवा में निवेदन किया है। हमको शारीरिक, आर्थिक, मानसिक और आत्मिक-स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है। इस उद्देश्य के रास्ते में जो बाधायें हैं उनको दूर करने से कभी न डरिए। हमारा लक्ष्य आगे बढ़ना है। हम सब ईश्वर के सिपाही हैं। जब हमारा परम पूज्य नेता हमको आज्ञा देता है—"आगे बढ़ो"—उस समय हमें, दहिने बायें न देख, सामने अपने निशाने की ओर देखना चाहिए। यदि इस कर्तव्य पालन के युद्ध में हमारे साथी, हमारे सम्बन्धी, गिर पड़ते हैं तो भी उनकी परवाह न कर केवल अपने निशाने की ओर देखना उचित है। "दीनता और पलायन" ये दो शब्द सिपाही के लिए डूब मरने के हैं। जब संसार के मामूली संग्राम में एक सिपाही "दीनता और कायरता" को घृणा की दृष्टि से देखता है, तो क्या हमें परम पिता परमात्मा के अमृत-पुत्र होकर, उसके पवित्र झण्डे को उठाकर, अपने कर्तव्य से विमुख होना उचित है ? कभी नहीं, कभी नहीं। उठो, स्थान स्थान पर व्यायामशालायें खोलकर अपने अङ्ग प्रत्यङ्गों को दृढ़ करो और सदा यही प्रतिज्ञा करो—

"यह शरीर मेरा नहीं, बल्कि मेरे देश का है। इसका एक बून्द वीर्य्य भी नष्ट करने का मुझे

अधिकार नहीं । जब मेरे देश को मेरे शरीर की आवश्यकता होगी तो मैं तत्काल देश की वस्तु देश के अर्पण कर दूंगा ।"

इस प्रतिज्ञा को सामने रख कर आगे बढ़ो । स्थान स्थान पर आर्थिक-स्वतन्त्रता दिलाने वाले कला-भवनों की स्थापना करो, और "नौकरियों" से घृणा कर, स्वतन्त्र जीवन निर्वाह के उद्योग धन्धे सीखो । लक्ष्य यही हो—

"जो धन मैं कमाऊँगा वह मेरे
प्यारे देश की सेवा में खर्च होगा ।"

यह लक्ष्य सामने रख कर मानसिक-स्वतन्त्रता के साधनों को जुटाओ । भारत के सभी सम्प्रदायों से प्रेम करते हुए अपना मुख्य धर्म यही स्थिर करो—

मातृ-भूमि तो मुझे स्वर्ग से बढ़ कर भावै,
सच्चा जीवन-मुक्त वही जो इसको ध्यावै ।
भारत का जो भक्त वही मेरा है भाई,
चाहे हिन्दू हो या मुसलमान या हो ईसाई ॥

बस, इस प्रकार उन्नति करते हुए अपने जीवनोद्देश्य आत्मिक-स्वतन्त्रता की ओर मुंह करो, और अपने आपको अविनाशी आत्मा जान गीता के इस वाक्य को स्वर्णाक्षरों में छाती पर लिख लो—

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥"

अर्थात् इस मेरी आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, आग नहीं जला सकती, जल इसे भिगो नहीं सकता, और न इसे

वायु सुखा सकती है। इस सञ्जीवनी-बूटी को पीकर मस्त हो जाओ। परमात्मा आपके साथ है; वे कठिन कार्यों में आपके सहायक होंगे और विघ्न बाधाओं को दूर करेंगे।

परम पिता से मेरी यही प्रार्थना है कि हम सच्ची शिक्षा-प्रचार करने में शीघ्र बद्ध परिकर हों। हम अपनी सारी शक्तियों को देश की सेवा में लगा दें, और अपने अधम स्वार्थ को छोड़ कर ईश्वरीय राज्य स्थापन करने के शुभ कार्य्य में अपना जीवन प्रदान करें।

यही शिक्षा का सच्चा आदर्श है। संसार में सत्ययुग लाने का यही एक मात्र उपाय है।

॥ समाप्त ॥

"To stand with a smile upon your face against a stake from which you can not get away that, no doubt, is heroic. But the true glory is resignation to the inevitable. To stand unchained, with perfect liberty to go away, held only by the higher claims of duty, and let the fire creep up to the heart, this is heroism."

—*F. W. Robertson.*

नई पुस्तक ! लीजिए !!

लेखन-कला

हिन्दी साहित्य में निबन्ध रचना पर कोई पुस्तक आधुनिक आवश्यकताओं के अनुसार न थी। लखनऊ में लेखन-कला पर व्याख्यान देते समय स्वामी सत्यदेव जी ने वचन दिया था कि इस विषय पर एक पुस्तक लिख कर हिन्दी-संसार को भेंट करेंगे। वही पुस्तक छप कर तैयार है। इसमें निबन्ध-रचना सम्बन्धी सभी आवश्यक बातों का ऐसी अच्छी तरह से वर्णन किया गया है कि पाठशाला के विद्यार्थी इसे सहज में समझ सकते हैं। प्रत्येक हिन्दी पाठशाला के अध्यापक तथा अंग्रेज़ी में निबन्ध-रचना सीखने वाले विद्यार्थी को इसे अपने पास रखना अत्यावश्यक है। अमरीका के प्रसिद्ध लेखकों की निबन्ध रचना शैली के आधुनिक ढंग का समावेश इस पुस्तक में किया गया है। अच्छे और बुरे निबन्धों के उदाहरण भी दिखलाए गए हैं। हिन्दी के प्रत्येक लेखक को इसे मँगा कर देखना चाहिए। मूल्य ॥~) नौ आना।

निवेदक—

मेनेजर, सत्य-ग्रन्थ-माला आफ़िस,

इलाहाबाद।

मेरी कैलाश-यात्रा

सत्य-ग्रन्थ-माला की यह आठवीं संख्या हमारे प्रेमी पाठकों का आह्लाद बढ़ाने वाली है। हिन्दू होकर कैलाश-दर्शन नहीं किया तो क्या किया। सचमुच यदि श्री विश्वनाथ जी के प्राकृतिक मन्दिर के भव्य दर्शन करना चाहते हैं तो इस पुस्तक को मंगा कर पढ़िए। पिछली जून १९१५ को स्वामी सत्यदेव जी पूज्य हिमालय के १८,३०० फीट ऊँचे श्वेत भवन को लांघ कर श्री कैलाश जी के दर्शन करने गये थे। कैसा विकट मार्ग है, कैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, इन सब बातों की बहार यदि आप देखना चाहते हैं तो इस पुस्तक की एक प्रति मंगा कर पढ़िए। मानसरोवर के जगत् प्रसिद्ध राजहंसों की सुन्दर मोहिनी सूरत, उनका स्वर्गीय आलाप, वहां के नैसर्गिक दृश्यों की छटा इस पुस्तक द्वारा देखिए। मानसरोवर के निर्मल पावन जल में स्नान का पुण्य संचय कीजिए। साथ ही तिब्बतियों का रहन सहन, उनका रंग ढंग, उनका राक्षसी भोजन, उनकी धार्मिक बातें, सब कुछ इस पुस्तक द्वारा जानिए। जिस हिमालय की प्रशंसा के आप गीत गाते हैं, उसके श्वेत भवन का आंखों देखा अनुपम वर्णन आज तक आपने न पढ़ा होगा। जैसे स्वामी जी की अमरीका सम्बन्धी पुस्तकों ने आपको मुग्ध किया है, वैसे ही इसको भी पढ़ कर आप आनन्द से गद्गद हो जायँगे। जिस रास्ते से स्वामी जी गये थे, उसका नक़शा भी पुस्तक में दिया गया है। यात्रा का वर्णन अधूरा नहीं बल्कि सम्पूर्ण इस पुस्तक में है। दाम आठ आने।

निवेदक—

मैनेजर, सत्य-ग्रन्थ-माला आफ़िस,

इलाहाबाद।

हित-शिक्षा

प्रकाशक—
कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन
प्रेम मंदिर आरा

अनुवादक—
भैयालाल जैन

हित-शिक्षा.

मूल लेखक

श्रीयुक्त वाडीलाल मोतीलालजी शाह.

अनुवादक

भैयालाल जैन,

गाडरवारा.

"अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः ।"

"Heaven will be inherited by every man who has heaven in his soul."

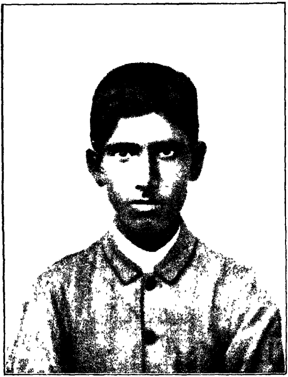
"Religion is the hospital of the souls which the world has wounded."

प्रकाशक--

कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन,

प्रेम मन्दिर—आरा.

प्रथमवार] सम्वत् १९७६ वि० [मूल्य ।=)



स्वर्गीय बाबू अमृतलालजी जैन

स्वर्गवास

आश्विन कृष्ण ४ सं० १९७३ वि०

समर्पण.

स्वर्गवासी अनुज अमृतलालजी जैनकी
पवित्र स्मृतिमें—

हे स्वर्गस्थित सुमन ! सुखी कर पितु-माली को,
तुमने अतिशय किया सुशोभित कुल-डाली को ।
पर, असमय में हाय ! अधम आँधी ने हा ! हा !!
वृन्त-च्युत कर तुम्हें, नियतिका नियम निबाहा ॥
थीं बड़ी बड़ी शुभ भावना, बड़े बड़े अरमान थे ।
तुम सहसा ही चल बसे हा ! जो भैया प्रिय प्राण थे ॥
विदित जगत में दान छीन लेना पातक है ;
किन्तु यहाँ तो जीव—प्रदायक ही घातक है ।
प्रभुकी माया अगम ! रही मनही में मनकी ;
भैया अमृत ! भेंट नहीं अब भौतिक तनकी ॥
शुचि सौरभ भेंट समेटकर, स्नेह—वायु द्वारा मुदित ।
प्रेषित 'हित शिक्षा' ग्रहण कर, अनुज करो मुझको सुखित ॥

तुम्हारा शोक-सागर-निमग्न भ्राता,

भैयालाल (वीर)

भूमिका.

आजकल इस देश में जहां तहां धर्म-सुधारकी पुकार मची हुई है। कोई कहता है कि वैदिक धर्म अच्छा है, कोई कहता है ईसाई धर्म सर्वश्रेष्ठ है, कोई कहता है मुसलमानी धर्म से ही निस्तार होगा; इसी प्रकार कोई कुछ कहता है और कोई कुछ। भिन्न २ धर्मों के प्रचारक तो धार्मिक दृष्टि से ऐसा कहते है; पर कई लोगों के मतसे हमारे सामाजिक, राजनैतिक *तथा आर्थिक इत्यादि सभी कष्टों का मूल कारण धर्म-विभिन्नता* ही है। वे कहते हैं कि भिन्न २ धर्मों से देशवासियों में मत-भेद की वृद्धि और एकताका ह्रास होता है तथा किसी भी उन्नति के कार्य को सब देशवासी एक दृष्टि से नहीं देख सक्ते। इन लोगों का कहना है कि जबतक सारे देश में सर्व-साधारण का एकही धर्म न हो तबतक वास्तविक उन्नति प्रायः असम्भव है। उपरोक्त मतसे चाहे हम पूर्णतया सहमत भले ही न हों; पर प्रत्येक विचारशील मनुष्य यह कहे बिना नहीं रह सक्ता कि इसमें कुछ न कुछ सत्यांश अवश्य है। हम सब लोग जानते हैं कि धार्मिक विवादों में, शास्त्रार्थ या मुबाहसों में अपने २ ही पक्षको सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च सिद्ध करनेकी धुन में

बड़े २ विद्वान भी कैसी हठधर्म्मी करते हैं तथा सर्व साधारण में कितना वैमनस्य फैलाते हैं। इसी प्रकार 'हिंसा,' 'अहिंसा' इत्यादि सिद्धान्तों पर मत–भेद होने से कभी २ कितना अनर्थ हो जाता है। विभिन्नता की ओर दृष्टि करनेसे अनैक्य–वृद्धि अवश्य होती है और बहुधा इन्हीं विवादास्पद सिद्धान्तों पर निर्भर हो एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म पर आघात करते हैं; इससे दोनोंही पक्ष-वालों की हानि होती है और उनमें वैमनस्य बढ़ता है। पर यदि प्रत्येक धर्मावलंबी अपने २ सिद्धान्तों पर चलें, एक दूसरे पर आघात प्रत्याघात न करें, तो बहुत अच्छा हो। ध्यानपूर्वक विचार किया जाय तो भिन्न २ धर्मों में कई सिद्धान्त ऐसे हैं जो सर्वमान्य हैं। इन सब मुख्य २ सिद्धान्तोंको एक स्थान पर रखने और उनका प्रचार करने से एकताके प्रचार में तो कमसे कम अवश्य ही वृद्धि होगी, क्योंकि वर्तमान भारत की परिस्थिति पर विचार करनेसे सारे भारतवर्ष के लिये एकही धर्म का हो जाना तो प्रायः असम्भव ही है। हमारी समझ मेंइस वाञ्छनीय एकता के प्रचारार्थ ऐसी पुस्तकों से बहुत कुछ लाभ होसक्ता है जिनमें प्रायः सब धर्मों के सामान्य और मुख्य २ सिद्धान्तों का वर्णन हो। प्रस्तुत पुस्तक में ऐसे ही सर्वमान्य और मुख्य २ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

प्रत्येक देश अपने २ लक्ष्य को ध्यान में रखकर आगे बढ़े हैं; और कई उद्देश्य रहते अवश्य हैं, पर किसी विशेष लक्ष्य को प्रधानता दी जाती है। *रोम अपने आधिपत्य को लक्ष्य*

करके आगे बढ़ा था; कार्यज्ञ धनको लक्ष्य कर उन्नति की ओर अग्रसर हुआ था तथा भारतवर्ष का प्रधान लक्ष्य धर्म ही रहा है और अब भी अन्य बातों के साथ धर्म ही को प्रधान लक्ष्य बनाने पर यह देश उन्नति कर सकेगा। यहां प्रश्न यह होता है कि वह धर्मोपदेश कैसा हो जिससे सर्व साधारण लाभ उठा सकें। प्रायः देखा गया है कि उपदेशकगण बहुधा बड़ी २ बातें करते हैं और ऐसी २ बातें बतलाते हैं, जिनसे लोगों में कदाचित् कभी कभी कुछ शास्त्रीय ज्ञानका प्रचार होता हो तो होताहो पर बहुधा वे बिचारे उन बड़ी २ बातों को सुन किं कर्त्तव्यविमूढ़ हो हताश हो जाते हैं और अपने को उन बातों के प्राप्त करने में असमर्थ समझने लगते हैं। वे लोग उन छोटी २ महत्त्वशील बातों को नहीं बतलाते जो दिन रात काम में आती हैं और जो सरलता से साध्य हैं पर उनके करनेका सुमार्ग न जानने से सर्व साधारण कोई लाभ नहीं उठा सके।

कोई भी कार्य क्रमसे करने में सरलता होती है और वह समाप्त भी शीघ्र होजाता है। एकही छलांग में स्वर्ग पाने का उपदेश अनुचितही नहीं किन्तु मूर्खता से भरा हुआ समझना चाहिये। जिन कामों से विरक्त होना आवश्यक है; जिनसे मानवसमाज को विशेष हानियां होती हैं और जिनमें मनुष्य बिना सोचे बिचारे या किसीको करते देख अन्धानुकरण से क्षणिक इन्द्रियसुखके लिये लग गए हैं; उनका चित्र स्पष्ट शब्दों में खींच देना तथा उनके नाशकारक फलोंका त्रासदायक हृदय

सामने खड़ा कर देना चाहिये जिससे वे उन कृत्योंसे दूर रहनेकी इच्छा आपही आ र करें।

शिक्षण—पद्धति में भी नैतिक शिक्षा को विशेष स्थान दिया गया है। धर्म तथा नीति, शिक्षा के मुख्य अङ्ग हैं। इंग्लेण्ड, जापान तथा अमेरिका आदि उन्नत देशोंने अपने २ यहां विद्यालयोंमें इस विषय को बहुत अधिक महत्त्व दिया है। वहां आरम्भ से बालकों को आख्यायिकाओं द्वारा तथा अन्य कई प्रकार से धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा दीजाती है। परिणाम भी इसका बहुत श्रेयस्कर हुआ है। खेद है हमारे धर्म प्रधान भारत में कई कारणों से पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं है पर अब कुछ कालसे हमारी सरकार तथा शिक्षा-विशारदों का ध्यान नीतिशिक्षा की ओर झुकने लगा है। नैतिक शिक्षा के अभाव से जैसे २ दुष्परिणाम होते हैं उन्हें देख, अब यह बात भली भांति ध्यान में आगई है कि सच्चरित्रता और चरित्र संगठन के बिना विद्या प्राप्त करलेने पर भी कोई वास्तविक मनुष्यत्व नहीं प्राप्त कर सका।

श्रीयुत बाबू भैयालालजी जैनने एक गुजराती पुस्तक के आधार पर इसे लिखा है। प्रस्तुत पुस्तक की शिक्षाएं देखने में छोटी किन्तु महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें मुख्य २ धर्मों के ग्रन्थों से प्रमाण देकर कुछ आदेश तथा कुछ निषेधात्मक नैतिक सिद्धान्त स्पष्ट रीति से समझाये गये हैं। एक मुनि महाराज द्वारा उनके भिन्न २ धर्मावलम्बी शिष्योंको व्यावहारिक उपदेश दिल-

पाये गये हैं। भिन्न भिन्न धर्मोंके जो विवादास्पद सिद्धान्त हैं उन्हें महत्त्व न दे प्रायः सभी धर्मोंके ऐसे मुख्य मुख्य सिद्धान्त वर्णन किये गये हैं जिनसे धर्म तथा नीति प्रचार के अतिरिक्त भिन्न २ धर्मावलम्बियों में एकता की भी बहुत कुछ वृद्धि हो सकी है।

निषेधात्मक सिद्धान्तों के ऊपर लिखते हुए दिखाया गया है कि हत्यादिक जो नीच कर्म हैं उनका परित्याग इसलिए करो कि वे तुम्हें स्वयं दुःखदयी हैं; दूसरों के स्वत्व की रक्षा इसलिये करो क्योंकि तुम अपने स्वत्व हरण होनेसे दुःखी होते हो। विश्वास-घातसे तुम्हारी अभीष्टप्राप्तिमें अन्तर पड़ता है। आहार व्यवहार की असावधानीसे तुम्हारा शारीरिक ह्रास होता है। आलसी होने तथा मितव्ययी न होनेसे तुम कितने संकटोंमें पड़ते हो तथा अपना और अपने देशका कुछ भी उपकार नहीं कर सकते। मृत्युसे डरनेमें तुम अपनी हानि कर बैठते हो और जो कुछ कर सकते हो उसके करनेमें भी अयोग्य हो जाते हो। इसके अति-रिक्त कुछ आदेशात्मक बातें भी हैं; जैसे स्वदेश क्या है ? उसके प्रति प्रत्येकका कर्त्तव्य क्या है ? उसका पालन तुम किस प्रकार कर सकते हो इत्यादि, इत्यादि। इसी प्रकार निःस्वार्थता, दया, कृतज्ञता और कर्त्तव्य आदि सद्गुणोंका वर्णन है जिन पर हमारी समझमें, यहां कुछ लिखने की अपेक्षा पाठकोंका ही विचार करना अच्छा होगा।

उपदेशका क्रम ऐसा रक्खा गया है कि पहले वे ही बातें

बतलाई गई हैं जो बहुधा स्वाभाविक ही मनुष्योंके मनमें उठती हैं और फिर उपदेश द्वारा उनकी भूलें बताते हुए उनके दोष दिखाये गये हैं तथा अन्तमें उनसे होने वाले दुष्परिणाम बतला कर उन दुर्गुणोंका निषेध कर उनके स्थानमें कुछ सद्गुण और उनके प्राप्त करनेके उपाय बतलाये गये हैं और उनके अनुसार चलनेका आदेश दिया गया है। कहीं कहीं विद्वानों की कहावतें उद्धृत की गई हैं। प्रायः सब मुख्य २ धर्म, जैसे हिन्दू, जैन, बौद्ध, मुसलमान, ईसाई, यहूदी और पारसी आदिके विद्वानों की उक्तियां तथा धर्मग्रन्थोंके वाक्यों द्वारा उपदेशों की पुष्टि की गई है। सारांश यह कि उपदेश किसी एक धर्मको लक्ष्य करके नहीं दिया गया ; मुख्य २ धर्मोंकी सामान्य बातोंका इसमें वर्णन है और सभी धर्मोंके मनुष्य इन्हें मान सक्ते हैं।

उपरोक्त सब बातें होने पर भी सम्भव है, कोई कोई सज्जन इस पुस्तकके सब विचारोंसे सहमत न हों ; पर पुस्तकमें तो केवल विचार प्रगट किये गये हैं उन्हें मानना न मानना सहृदय पाठकों पर छोड़ दिया गया है। इस विषय पर अधिक न कह इसी पुस्तकमेंसे पांचवें दिवसके एक दो वाक्य उद्धृत करना यथेष्ट होगाः—

"भाइयो तथा बहिनो, तुम सब उत्साहपूर्वक मेरा उपदेश सुनते हो, यह देखकर मुझे आनन्द होता है ; परन्तु मैं तुम्हें अन्धश्रद्धा की सलाह कभी नहीं दे सक्ता। यद्यपि मैं अपने उपदेशमें अपनेसे अधिक समर्थ पुरुषोंके अभिप्रायका समावेश कर

जहा तक हो सका है, इस बातका ध्यान रखता हूं कि वह सर्व-योग्य बने तथापि उसकी भी सत्यता तुम अपनी विचारशक्ति की कसौटी पर कस देखो और पश्चात् उसे स्वीकार करो।"

ऐसे विषय पर पुस्तक लिखते समय भाषा प्राय क्लिष्ट कर दी जाती है, पर श्रीयुत जैनने ऐसा नहीं किया। इस पुस्तक की भाषा सुबोध है और नैतिक तथा धार्मिक ऐसे गूढ विषयोंके रहते हुए भी जहा तक हो सकता है, लेखनशैली रोचक बनाई गई है जिससे सर्वसाधारण, बाल वृद्ध सब इससे लाभ उठा सकें।

ऐसी उपदेशप्रद पुस्तकको हिन्दी रूपमें लानेके लिये जैन महाशय हमारे धन्यवादके पात्र हैं। इस 'हित शिक्षा'से किसी का कुछ भी 'हित हुआ तो वे अपने परिश्रमको सफल सम झेंगे।

भालदारपुरा जबलपुर | **रामचन्द्र संघी बी० ए०,**
२५ दिसम्बर १६१८ | *विशारद।*

मेरे दो शब्द.

आज जिस पुस्तकको लेकर, मैं पाठकों की सेवामें उपस्थित होता हूं, उसके मूल लेखक श्रीयुक्त वाडीलाल मोतीलाल जी शाह, सम्पादक 'जैन हितेच्छू' हैं। आप बड़े ही प्रतिभाशाली लेखक हैं। आपकी कलममें जादू है। आपकी ओजस्विनी भाषाको पढ़कर, मृत-प्राय हृदयों तकमें नये जीवनका सञ्चार होने लगता है। आप बड़े ही उदार और कर्मशील पुरुष हैं। आपने थोड़ेसे समयमें खूब रुपया कमाया। पर उससे आपने न कोई रहनेके लिये मकान बनवाया है, न गाड़ी जोड़ी खरीदी है और न विलासिताके दूसरे साधन ही खड़े किये हैं; पर हजारों रुपया धर्मकार्यों में लगाया है। बहुत सा द्रव्य तो आपने निर्धन विद्यार्थियों की सहायतार्थ ही दिया है।

यद्यपि आपकी मातृभाषा गुजराती है तथापि आप हिन्दी की उन्नतिके लिए, प्राण-पणसे उद्योग कर रहे हैं। झालरापाटन की राजपूताना हिन्दी-साहित्य-समितिके लिए, आपने नक़द दो हज़ार रुपयोंकी सहायता दी थी। सप्तम हिन्दी-साहित्य-सम्मे-

लनके समय, हिन्दीमें एक सर्वोत्तम निबन्ध लिखने वालेके लिए, आपने ५०० रुपयेका एक पारितोषक देना मंजूर किया था।

१० जून १९१७ में आपने बम्बई और अहमदाबादमें ४० हज़ार रुपया एक मुश्त देकर, दो जैन बोर्डिङ्ग हौस स्थापित किये हैं ; और असमर्थ विद्यार्थियोंके लिए छात्रवृत्तियोंके देनेका उचित प्रबन्ध किया है। दान कई करते हैं, पर अधिकांश तब करते हैं जब घरमें रुपयोंके रखनेके लिए जगह नहीं रहती ; पर श्रीयुक्त शाह ऐसे समयमें कर रहे हैं, जब अहमदाबादमें—आपके मूल निवास स्थानमें—आपका एक निजी मकान भी नहीं है। बम्बईमें आप किरायेकी एक बहुत साधारण जगहमें रहते हैं।

श्रीयुक्त शाह महाशयने गुजराती भाषामें कई उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिखे हैं। प्रस्तुत पुस्तक आपके द्वारा कार्तिक सं० १९६२ वि० में लिखी गई थी। पुस्तकका इतना आदर हुआ कि, उसके गुजरातीमें कई संस्करण निकल चुके, और प्रत्येक आवृत्तिकी हजारों प्रतियां हाथों हाथ बिक गईं। गायकवाड़ शिक्षा विभाग ने उसे शालाओंके पुस्तकालयोंमें रखो जाने, और पारितोषकमें दिये जानेके लिए मंजूर किया है। आशा है, हमारे हिन्दी पाठक भी इसे प्रेम की दृष्टिसे देखेंगे।

श्रीयुक्त शाह महाशयने उक्त पुस्तकके अनुवाद करने की आज्ञा प्रदान करनेमें बड़ी ही प्रसन्नता दर्शायी है ; अतएव इस कृपाके लिए, मैं आपका हृदयसे आभार मानता हूं।

श्रीयुक्त बाबू रामचन्द्रजी संघी बी० ए० विशारदने भूमिका लिखकर, तथा बाबू मुरलीधर तारवाले, पण्डित शिव-बालक जी, पण्डित शालग्राम जी द्विवेदी विशारद प्रभृति मित्रोंने इस पुस्तकके तैयार करनेमें, किसी न किसी रूपमें सहायता पहुंचा कर, मुझे बहुत ही अनुगृहीत किया है।

पुस्तक के उत्तम रूप में प्रकाशित होने का सारा श्रेय मेरे परम शुभचिन्तक भ्राता श्रीमान कुमार देवेन्द्रप्रसाद जी रईस आरा को है।

अन्तमें पाठक महाशयोंसे निवेदन है कि, वे इस पुस्तकको आप पढ़ें, तथा अपने सम्बन्धियों और भिन्न भिन्न धर्मावलम्बी मित्रोंको पढ़नेके लिए देवें, जिससे आपसका धार्मिक द्वेष दूर हो कर, जनतामें एकताका सञ्चार हो। यदि इस निवेदन पर ध्यान दिया गया औ इससे देशका कुछ भी कल्याण हुआ तो मैं अपने परिश्रमको सफल समझूंगा।

कटनी मुड़वारा
मकर संक्रान्ति सम्वत् १९७५ वि०

विनीत—
भैयालाल जैन।

अनुक्रमणिका.

हित-शिक्षा

(प्रवेश)

एक दिन प्रातः काल एक महात्मा बहुतसे स्त्री पुरुषोंको धर्मोपदेश कर रहे थे। उनका उपदेश अत्यन्त ही व्यवहारिक और सर्वमान्य था। उनके उपदेशका तत्त्व यह न था कि वे श्रोतागणोंसे अपनी पूजा अर्चा करावें, या उनका उपदेश न सुनने वालोंको नास्तिक अथवा धर्म ग्रहण करनेके अयोग्य कहें; और वे ऐसा उपदेश देनेका साहस भी नहीं कर रहे थे कि मठ, मन्दिर या देवालय बनवाने वालोंको निश्चय ही स्वर्ग मिलेगा।

मुनिका उपदेश व्यवहारिक था। संसारके व्यवहारमें ऐसे उपदेशकी आवश्यकता सैकड़ों बार होती है। उपदेश सुननेवाले मनुष्य गृहस्थ थे, और मुनि उनको संसारमें—गृहस्थाश्रमके सुखकी समाधिमें—निर्दोष जीवन व्यतीत करनेकी युक्ति सिखलाते थे।

मुनिका वेष जैसा साधारण था, वैसी ही उनकी भाषा भी सादी थी। उनको आडम्बर बिलकुल पसन्द न था। संस्कृतके विद्वान् होने पर भी वे साधारण व्यवहारमें जनता की भाषाका उपयोग करते थे। उनके सरल किन्तु गम्भीर उपदेशको सुनकर मनुष्य "साधु, साधु," कहे बिना न रहते थे। इतना ही नहीं, किन्तु सरल स्वभाव वाले भद्र पुरुष तो उनके प्रत्येक शब्दको बहुमूल्य रत्नके समान ग्रहण कर, उससे अत्यन्त सुखी होनेकी आशा रखते थे।

उनका उपदेश सुननेके लिये भिन्न भिन्न जाति और धर्मके लोग एकत्र हुए थे। उनका उपदेश इतना सामान्य था कि जैन, वैष्णव, शैव, इसलामी, जरथोस्त आदि भिन्न भिन्न धर्मके लोग उस उपदेशको अपने ही पन्थका उपदेश समझते थे।

उपस्थित व्यक्तियोंमें एक युवक आधुनिक शिक्षा प्राप्त किये हुए था। वह एकाग्र चित्तसे उपदेश सुनता और कभी कभी उपदेशक के हेतु, श्रोताओं पर होने वाले उपदेशके प्रभाव, तथा मनके उद्भवित विचारको बीच बीचमें अपने समीप बैठे हुए एक मित्र पर प्रकट करता जाता था। महात्माजीका उपदेश लगातार चौदह दिन तक भिन्न भिन्न उपयोगी विषयों पर होता रहा। उपदेश-क्रम इस प्रकार था।

पहिला दिवस.

"स्वार्थ ही के स्वप्नमें लवलीन मत रहो."

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभि.।
परोपकार पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

आधे दोहामे भरा, सब ग्रंथोका सार। पर पीडा पाप है, परम धर्म उपकार ॥

शिक्षित युवासे उसके मित्रने पूछा, मित्र! यह उपदेश है कि मनाई? आदेश है या निषेध?

शिक्षित युवाने उत्तर दिया, भाई! जो काम बड़ी बड़ी बातोंसे नहीं सध सकता, वह स्पष्ट शब्दोमें कहे गए केवल एक निषेधसे हो सकता है। ईसाई धर्ममें पांच निषेध कहे हैं, और उन्हींके ऊपर उस सारे धर्मका पाया खड़ा है। यदि किसी मनुष्यको कोई काम करनेसे रोके, तो उसके मनमें यह प्रश्न अवश्य उठेगा कि यदि मैं यह न करूं तो क्या करूं। इस प्रकार सोचते सोचते वह खोटी राह छोड़ कर सत्य मार्गकी खोज आप ही आप कर लेगा। मित्रने "बहुत ठीक" कहते हुए उपदेश की इस पद्धति की सराहना की और वह मुनिराजके कथनको एकाग्र चित्तसे सुनने लगा।

मुनिने 'निषेध' पर विवेचन करना आरम्भ किया—भाइयो और बहनो! तुम सबको सुख तो बहुत प्रिय है। सुख ही के लिये तुम सब कार्य करते हो, और सुख ही की आशासे सब काम काज छोड़ कर यहाँ आए हो। इसी प्रकारसे प्राणी मात्रको सुख प्रिय है। तुम्हारे भाई बन्धु, कुटुम्ब कबीले को भी सुखकी इच्छा है। तुम्हारे कुटुम्बियों, सम्बन्धियोंको भी सुख की आशा है। तुम्हारे सब देशभाइयोंको भी सुख प्यारा है। केवल मनुष्योंको ही नहीं, किन्तु पशुपक्षियोंको भी सुख प्रिय है।

जिस मार्गसे तुम्हें सुख प्राप्त होता हो, उस मार्गमें यदि कोई पुरुष बाधा डाल कर अपना सुख साधना चाहे, तो तुम्हें कैसा लगेगा? कदाचित् अवश्य बुरा लगेगा, तुमको दुःख होगा, तुम उसकी स्वार्थ बुद्धि पर तिरस्कार करोगे। उसी प्रकार जब तुम अपने सुखके लिये अन्य प्राणियों, कुटुम्बियों, देशभाइयों, पशु पक्षियों आदिका अनिष्ट करोगे, तो उनको दुःख अवश्य पहुंचेगा। इसलिये जो तुम स्वतः दुःखका अनुभव कर लोगे, तो तुम दूसरेके दुखका भी अनुमान कर सकोगे।

तुम स्वार्थके लिये किस प्रकार दूसरोंको दुःख दे सकते हो—यह मैं किसी दूसरे उपदेशमें कहूंगा, अभी तो केवल इतना ध्यान कराना चाहता हूं कि जिस प्रकार तुम स्वार्थ साधना चाहते हो उस प्रकार स्वार्थ यथार्थमें सध सकता है या नहीं?

देखो, जो पुरुष स्वार्थमें ही दिन रात लिप्त रहता है, उसकी

बुद्धि एकपक्षीय हो जाती है। यहां तक कि न्याय और विवेक तो उसका साथ बिलकुल छोड़ देते हैं। न्याय और विवेक बुद्धिके बिना यह जीवन तुच्छातितुच्छ है। ऐसे जीवनमें स्वार्थ से पैदा की हुई सम्पत्ति या सत्ता कभी सुख नहीं दे सकती। यहां तक कि इन्द्रिय सुख थोड़े ही समयमें कण्टक रूप बन जाता है।

यदि स्वार्थ ही में लिप्त रहनेसे सुख मिलता तो राजा महा-राजा लोग मखमलके बिछौने छोड़ रणक्षेत्रमें कभी प्राण विस-र्जन करनेके लिये उद्यत न होते। पण्डित लोग निजगृहकी शीतल छाया छोड़ कर ग्राम ग्राम फिरते हुए, माथा पच्ची करके कभी उपदेश न देते। श्रीमन्त लोग अपनी सम्पत्तिको राग रंगमें व्यय करनेके बदले गरीबोंके पोषण तथा विद्यावृद्धिमें कभी खर्च न करते। ये सब—महाराजा, पण्डित, श्रीमन्तलोग जो परमार्थ करते हैं वह केवल स्वार्थ हीके लिये किया जाता है। उनके अन्तःकरण में परमार्थसे अनिर्वचनीय आनन्दका स्रोत उत्पन्न होता है। वे अपनेसे अल्प शक्ति वालों पर उपकार करके उनको कृतार्थ करते हैं और स्वयम् भी कृतकृत्य हो जाते हैं।

जो जैन धर्मावलम्बी हैं वे लोग हजारों वर्ष पहिले अवतरित महावीर भगवानको आज दिन भी क्यों मान की दृष्टिसे देखते और पूजते हैं? जो वैष्णव हैं वे किस लिये विष्णु भगवानको अपना सर्वस्व अर्पण करनेको तैयार होते हैं? जो शैव हैं वे भगवान शिवको क्यों भजते हैं? ईसाईलोग क्यों ईसाईसाको

स्मरण करते हैं ? और जो पारसी हैं वे किस लिये अशोजर थोस्त की प्रार्थना करते हैं ? इस सबका हेतु यही है कि ये सब उनको देव मानते हैं। और जब ये देव देहधारी मनुष्यके रूपमें थे, तब सब प्राणियोंकी ओर परमार्थ वृत्ति बतलाते थे , सबको सुख पहुचानेके लिये उन्होंने अपने सुखका त्याग किया था। अब विचार करो कि तुम जिनको पूजते हो—मानते हो—अपना उद्धार करने वाला प्रभु—समझते हो, उनने जब प्राणी मात्र पर दया भाव—जिसका दूसरा नाम परमार्थ है बतलानेमें स्वार्थका समावेश किया, यहा तक कि दया—परमार्थ—में ही सुख समझा, तो तुम उनकी सन्तान तथा अनुचर हो कर उनके विरुद्ध क्यों चलते हो ? और उनके विरुद्ध चलनेमें तुम सुख की आशा कैसे कर सकते हो ? क्या तुम प्रकृतिके नियमके विरुद्ध चलोगे ? इसलिये भाईयो ! तुम अब समझ गये होगे, और बहिनो ! तुम्हें विश्वास हुआ होगा कि स्वार्थ साधनेका एक ही रास्ता है और वह रास्ता दूसरा कोई नही, परन्तु परमार्थ ही है। परमार्थके विषयमें तो स्वामी तुलसीदास जी की कही हुई ये पंक्तिया ध्यानमें रखनी चाहिए—

योग वियोग भोग भल मन्दा । हित अनहित मध्यम भ्रम फन्दा ॥
जन्ममरण जह लगि जग जालू । सपति विपति कर्म अरु कालू ॥
धरणि धाम धन पुर परिवारू । सरग नरक जहं लगि व्यवहारू ॥
देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं । मोह मूल परमारथ नाहीं ॥
मोह निशा सब सोवनि हारा । देखहिं स्वप्न अनेक प्रकारा ॥
यहि जग यामिनि जागहिं योगी । परमारथ पर पंच वियोगी ॥

यहाँ मुनिका उपदेश पूर्ण हुआ और सभा विसर्जित हुई । स्त्री पुरुष उनका गुणानुवाद गाते हुए घरको गये, यद्यपि मुनि जी अपनी प्रशंसाके इच्छुक न थे। उन दोनों मित्रोंने भी अपनी राह ली। मार्गमें विद्वान् नवयुवकने अपने मित्रसे कहा कि भाई, महात्माजीका उपदेश स्वार्थ रहित होने और परमार्थकी इच्छासे दिये जानेके कारण दूना असर करता है।

यहासे दोनोंका रास्ता अलग अलग आता था, इससे वे एक दूसरेको नमन् कर अपने अपने घरकी ओर बढे।

दूसरा दिवस.

Thou Shalt not kill.

"हत्या मत कर"—बाइबिल।

दूसरे दिन नियमित समय पर सभा भरी और मुनिने अपना व्याख्यान आरम्भ किया।

"किसी भी प्राणीकी हत्या मत कर।"

विद्वान् युवकने अपने मित्रसे कहा—देखा, मित्र! आजका निषेध कलके निषेधका शाखा रूप है, तौ भी उसे दूसरा रूप देकर मुनिजी किस उत्तमताके मनुष्यों पर जमाना चाहते हैं। कल उन्होंने कहा था कि—तुम किस किस प्रकारसे दूसरोंको अर्थात् कुटुम्बियों, सम्बन्धियों, स्वदेशियों, जन-समाज और पशु पक्षी आदि जीवोंको अपने स्वार्थके निमित्त दुःख दे सकते हो। इसी बातको अब वे आगे चलकर स्पष्ट करेंगे। इस कथनके अनुसार अब वे बतलाना चाहते हैं कि मनुष्य प्राणियों को दुःख किस प्रकार और किस कारण से देता है और ऐसा करनेसे वह अपनेको किस प्रकारसे ठगता है। क्लेश देनेसे, मार गिरानेसे,

ऐसे ही और कई प्रकारसे एक प्राणी दूसरे प्राणी को दुःख दे सकता है; परन्तु वध करके जो दुःख देता है वह सब से अधिक त्रासदायक होता है। इसी बात को मुनि ने सब से प्रथम हाथमें लिया है। अच्छा देखो, अब मुनि अपनी वक्तृता आरम्भ करते हैं। मुनिने अपना व्याख्यान आरम्भ किया।

भाइयो तथा बहनो! क्या कभी तुमको पागल कुत्तेने काटा है? क्या सांप या बिच्छूने कभी डंक मारा है? क्या ज्वर अथवा और किसी व्याधिने कभी तुम पर धावा किया है? यदि किया हैं तो उस समय तुम्हारी हड्डी पसली कैसी काँपती थी? तुम्हारे अवयव कैसे ढीले हो जाते थे? तुम कैसे चिल्लाते थे? और तुम कैसे कातर स्वरसे किसी बलवान पुरुषकी अथवा वैद्यकी सहायता मांगते थे?

विचारशील भाइयो तथा बहनो! जब तुमको मौतका तो क्या परन्तु केवल दुःख का ही इतना त्रास होता है तब विचारो गूँगे पशु पक्षी पर यदि तुम अत्याचार करो तो उससे उन्हें उसी प्रकार का त्रास होगा कि नहीं?

तुम्हारे दुःख के समय तो सैकड़ों मनुष्य तुम्हारी सहायता को आजाते हैं; किन्तु जब किसी झाड़ पर के एक शान्त मधुर स्वरसे किलोल करते हुए निर्दोष पक्षीके जोड़ेको गुलेल मार कर धराशायी कर देते हो और वह पंख फड़ा फड़ा कर असह्य वेदनासे आर्त्तनाद कर फड़फड़ाता है तब उस की सहायताको कौन आता है? या जब एक गरीब गाय किसी कसाई वाड़ेमें

जानेसे पीछे हटती है और सड़ासड़ डंडे मारकर और रस्सीसे बाँधकर पटक दी जाती है और कसाई केवल थोड़े से पैसों के स्वार्थके लिये अपनी चमचमाती हुई छुरी जब उसकी गर्दन पर फेरता है और वह अपनी बड़ी बड़ी आंखें निकाल कर दीनतासे चारों ओर देखती है तब उसकी सहायताको कौन हाथ बढ़ाता है ? उस पर किये गये इस अत्याचारका वैर भंजानेके लिये कौन आगे आता है ? स्वार्थी मनुष्य, जब तुझे दया की भिक्षा की आवश्यकता होगी, तब तू भी इससे बढ़ कर दया जैसी कि तूने उस गूंगे प्राणी पर दिखलाई है पानेकी आशा मत रखना।

मनुष्य चार कारणोंसे हिंसा करता है—(१) देवताके निमित्त (२) भोजनार्थ (३) प्रयोगके निमित्त और (४) कई विविध कारणोंसे।

मैं इन चारों कारणोंकी भूल बतलाऊंगा और दिखला दूंगा कि इस अति निंद्य स्वार्थ बुद्धिसे भविष्यमें मनुष्य अपना जरा भी हित साधन नहीं कर सकता ; और जिसको यह त्रास दिया जाता है उस बिचारेका तो इससे बढ़ कर और क्या अहित हो सकता है ?

प्रथम मैं पहिले कारणके ही सम्बन्धमें कहूंगा। देवताके निमित्त जो हिंसा की जाती है उस विषयके कहनेमें ही लज्जित होना पड़ता है। इस बहानेको आगे रख कर मनुष्य अपनी न्याय बुद्धिको तो बिलकुल ही एक ओर रख देता है और अपने

धर्मकी निन्दा कराता है। सब धर्म आत्माके कल्याणका दावा करते हैं ; और सब धर्मों की नींव प्राकृतिक नियमोंके ऊपर ही जमी हुई समझी जाती है। यद्यपि कुछ विचारोंमें भिन्नभिन्न धर्म मतभेद रखते हैं, पर सत्य और अहिंसाका उपदेश एकसा देते हैं और उन उपदेशोंकी सफलता पर ही अपनी विजयका आधार मानते हैं।

जैन धर्म कहता है कि—

एयंखु नाणिणो सारं जनहि संई किंचणं ।
अहिंसा समयचेव एत्तावत्तं वियाणिया ॥

अर्थात्—ज्ञानी पुरुषके ज्ञानका, सार यह है कि किसी भी जीव की हिंसा न करे, जीव दया ही प्रधान है, जो विवेकी होते हैं वे ही ऐसा जानते हैं।

वेदका मत है कि–

अहिंसा परमो धर्मस्तथा हिंसा परोदया ।
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः ॥

अर्थात्, अहिंसा ही बड़ा धर्म हैं, यही दम है, यही बड़ा दान है और यही बड़ा तप है।

कुरानमें भी कहा है—मांस और रुधिर मुझे नहीं पहुंचेगा ; केवल परहेज़गारी ही मुझे पहुंचेगी। (सुराहहज) औरभी,–

वमामिन दाब्बतिन फिल अंदेवला तैरून ।
यतीरोब बजाहिय्ये ईल्ला उममुन अमसालाकुम ॥

अर्थात् जो पशु पृथ्वी पर चलते हैं और जो पक्षी अपने

पक्षीसे उड़ते हैं, वे दूसरे कोई भी नहीं हैं परन्तु तुम्हारे ही समान प्राणी हैं। —(कुरान-सुरे आन् आम)

इसी लिये पैगम्बर हज़रत मुहम्मद नवी साहबके ख़लीफा हज़रतअली साहबने आदेश किया है कि—"तू पशु अथवा पक्षी की कबर अपने पेटमें मत बना।"

पारसी भाइयों की धर्म पुस्तक ईजसमें कहा है कि—जो संसारके प्राणियों पर दया नहीं करता, वह दया हीन 'देव' अथवा नारकी पुरुष है।

जरदस्त नामामें भी लिखा है—

वकुयातन नीयारंद कसकु वरेह।
न ऑंगुश फंदाके वाशद बरेह॥

अर्थात्—कभी कोई भी जानवर बड़ा अथवा वृद्ध हो या छोटा बच्चा हो किसी भी प्रकारके जीवित प्राणीको मारनेकी साफ मनाई है।

खि्स्ती धर्म की इसिया नामक पुस्तकके आठवें अध्यायमें लिखा है—

And when ye spread forth your hands, I will hide mine eyes from you. Yes, when ye make many prayer, I will not bear. Your hands are full of blood.

अर्थात्, जब तू अपने हाथ (प्रार्थनाके लिये) ऊँचे करेगा तब मैं (ईश्वर) अपने नेत्र तेरी ओरसे दूसरी ओर फेर लूंगा, और तू प्रार्थना करेगा तो भी मैं ध्यान न दूंगा क्योंकि तेरे हाथ (प्राणियोंके मारनेसे) लोहू लुहान हैं।

प्रिय श्रोताओ ! देखो, प्रत्येक धर्म दयाका उपदेश करता है, हिंसाका निषेध करता है, हिंसाके लिये तिरस्कार करता है, तिस पर भी उसी धर्मके उपदेशक अमुक अमुक निमित्त बतला कर हिंसा की छूट देते हैं। हाय हाय ! हिंसाका आदेश करना कैसे संताप की बात है ! यह स्वधर्म को नीचा दिखलाना नहीं तो और क्या है ? अहिंसाके पाये पर स्थापित किया हुआ धर्म, धर्म ही के लिये हिसाका आदेश दे, यह कौन विचारवान पुरुष मान सकता है ? क्या ऐसा आदेश निकाल कर बताने वाले पुरुषोंका गुप्त स्वार्थ छिपा रहेगा।

ऐसा हुआ है कि कई उपदेशक अज्ञानतासे धर्म पुस्तकोंका मर्म बराबर नहीं समझे और उन्होंने अर्थ का अनर्थ कर डाला है। कई उपदेशकोंने मांस मदिराके लालचसे—कि दूसरे लोग न खायं और गुरु खाय, उससे अपनी निन्दा हो और मान द्रव्यादि मिलना बन्द होगा, ऐसा समझ कर धर्म पुस्तकोंमें अपना मतलब गांठने को कई शब्द और भर दिये हैं जिससे पढ़ने वाले इन पेटार्थी गुरुओं पर आक्षेप न करें।

धर्मके लिये हिंसा करनेके सम्बन्धमें वे धर्म स्वतः अपना क्या मत देते हैं सो हम तुम्हें बतला चुके हैं। हमारे कई ब्राह्मण बन्धु अश्वमेध, गोमेध, अजोमेध यज्ञोंका पक्ष करते हैं। इस सम्बन्धमें श्रीमद्भागवत जो कि उन की पवित्र पुस्तक समझी जाती है, और जो मनुष्यके देहान्त होनेके समय उसके कल्याणार्थ पढ़ी जाती है यह बात प्रामाणिकताके

चौथे स्कन्धके २५ वें अध्यायमें सातवें और आठवें श्लोकमें बतलाती है कि—

प्राचीन कालमें वहीं नामक राजाने अपनी मनोकामना पूर्ण करनेके लिये यज्ञ करके सहस्रों पशुओंका वध किया। यह देखकर, नारद जीने निषेध करते हुए उस राजासे कहा—

> भो भो प्रजापते राजन् पशून पश्य त्वयाध्वरे।
> संज्ञापिताञ्जीव सघान् निर्घृणेन सहस्रश ॥
> एते त्वा संप्रतीक्षते स्मरेतो वशसं तव।
> सपरतमय कूटैश्छिन्दन्त्युथितमन्यवस्थि ॥

अर्थात्, हे राजन्! तूने जो यज्ञमें सहस्त्रों पशुओंको मारा है, वे सब तेरी बाट देख रहे है और तुझे बारम्बार स्मरण करते हैं। क्योंकि जब तू मरेगा तब वे भी तुझे उन्ही हथियारोंसे काटेंगे।

ऐसा कह नारद जीने उस वहीं राजाको वे सब पशु अपनी दिव्य दृष्टि दे दिखलाए। उन्हें देखकर, उस राजाने भयभीत होकर कहा कि "भविष्यत्में फिर कभी ऐसा कार्य मैं न करूंगा।"

भाइयो! तुम विचारो तो सही कि अश्वमेध है क्या? ईश्वर की प्रेम भक्ति ही अश्वमेधयज्ञ है। प्राचीन कालमें जो अश्व मेधयज्ञ होता था, वह और कुछ न था, केवल घोडा छोड़ दिया जाता था, और उसे जब कोई साहस करके बाँध लेता था वही कार्य अश्वमेध यज्ञ कहलाता था। इसी प्रकार गोमेध यज्ञमें भी

गो शब्दका अर्थ गाय नहीं किन्तु भूमि है—अर्थात् शुद्ध भूमि पर हवन करके वायु स्वच्छ की जाय—वही गोमेध यज्ञ है। गो का अर्थ मधुर वाणी भी होता है। इसी प्रकार अजामेध यज्ञके अर्थ समझनेमें भी भूल हुई है उसका अर्थ—अ = नहीं ज = उत्पन्न होना—फिरसे उत्पन्न न हो ऐसे अन्न (जव) का हवन करना यही अजामेध है, उसके बदले बेचारे निर्दोष बकरेका वध किया जाता है। अपने को तनिक भी पीड़ा होनेपर परमेश्वरको दयाके लिये पुकारने वाला मनुष्य उस बेचारे निर्दोष प्राणीकी दयापूर्ण चिल्लाहट और गिड़गिड़ाहट न सुनकर जंगली बाघके समान कठोर हृदय होकर नाखून रूपी तलवार आरपार करदेता है प्रकृति पर कैसा भारी अन्याय! देवताको ठगनेका कैसा अद्भुत ढोंग! कैसा क्रूर व्यवहार! क्या जानवरको मारनेवाला मनुष्य समय पाकर, मनुष्य पर निर्दयता करना नहीं सीख सकता? क्या इसकी गणना भारी अपराधमें नहीं है?

होम करनेके सम्बन्धमें, महाभारतमें लिखा हुआ एक श्लोक ब्राह्मण बन्धु तथा जैन बन्धु, ऐसे ही न्यायप्रिय मुसलमान, पारसी और ईसाई भाइयोंको अपने हृदय पटलपर अंकित कर लेना चाहिये। वह श्लोक यह है—

ध्यानाग्नि जीव कुडंस्थे दममारुत दीपिते।
असत्कर्म समिधक्षेपैरग्निहोत्रं कुरुत्तम॥

अर्थात् जीव रूपी कुण्डमें ध्यान रूपी अग्नि जलाकर इन्द्रिय दमन रूपी पवनसे अग्नि होम करो जिसमें असत्कर्म रूपी लकड़ी जल जावे।

नई रोशनी वाले बन्धुओ! तनिक विवेक की रोशनीमें विचार करो कि जब तुम देव को भैंसा, बकरा अथवा और किसी प्राणीका बलि देते हो, तब क्या उसके बदलेमें वह देव तुमको मनवांछित वस्तु दे सकता है? जो देव तुम्हें धनधान्य, स्त्री-पुत्र, सुख स्वास्थ्य, देनेमें समर्थ है क्या वह अपने लिये भोजन सामग्री प्राप्त करनेमें असमर्थ है? जिसमें तुम्हारे बलवान शत्रुका संहार करने की शक्ति है क्या वह अपने लिये एक प्राणीका बलि अपने लिये आवश्यकता पड़ने पर (जो यथार्थमें, उनको कभी नहीं पड़ती) लेनेकी शक्ति नहीं रखता? क्या देव भी अपने समान नीच, स्वार्थी तथा तुच्छ बुद्धिके हो सकते हैं? सब शास्त्रोंमें देवके लिये परम कृपालु आदि विशेषण दिये गये हैं। तब उसके परम कृपालुपन पर ऐसे कर्म, दोषकी छाया ही डालते कि और कुछ! महाभारतके शान्ति पर्वमें बहुत ठीक उपदेश कहा गया है कि—

अन्य स्थाने कृतं पापं धर्म स्थाने विमुच्यते।
धर्म स्थाने कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति॥

अर्थात् दूसरे पाप तो धर्म कार्य करनेसे टल जाते हैं; किन्तु धर्मके नाम पर किये हुए पाप तो वज्रलेष हो जाते हैं। उनके छूटने की तो आशा ही न करना चाहिए।

इसी प्रकार हमारे बहुतसे भोले भाई और बहनें देवको नारियल आदिका लोभ देकर मनोकामना पूर्ण करने की विनती करती हैं। जिसके पास दूसरोंको देनेके लिये बहुत सा द्रव्य

है, क्या वह हमारे नारियल की आशा रखेगा और क्या तुम देवोंको ऐसे स्वार्थी, और चापलूसोंके शुभेच्छुक मानते हो ? जो ऐसा ही हो तो ऐसे देव किसीका कुछ भी कल्याण नहीं कर सकते, और यह समझना बिलकुल आसान है। मुसलमान भाई बकरीद करते हैं ; परन्तु बाघ ईद कोई नहीं करता। क्या दयालु अल्लातालाने इतने बहुतसे पशु पक्षी तथा मनुष्योंमेंसे बिचारे बकरेंको ही तुम्हारे खानेके लिये बनाया है ? नहीं नहीं, उस दयालु खुदाके नाम पर हे मुसलमान भाइयो ! तुम कलंक मत लगाओ। तुम उस साहब की आज्ञा बराबर समझनेका प्रयत्न करो। इब्राहिम पैगम्बरने जब धर्म—ईमान—में प्रवेश किया, तब उनके ईमान की परीक्षा लेनेके लिये अल्लाताला ने उनसे कहा कि, "तू मुझे अपनी प्यारीसे प्यारी वस्तुका भोग दे"। इस पर इब्राहिम पैगम्बरने अपने इकलौते पुत्र इसाइलको मारनेके लिये तैयार किया। और ज्योंही वह आंखों पर पट्टी बाँधकर, उस पर छुरी चलाने वाला ही था त्योंही अल्लाने उस छोकरेके स्थान पर दुम्बा भेड़ ला कर खड़ी कर दी। यथार्थ बात यह थी कि अल्लाका विचार भेड़के भोग लेनेका नहीं था ; परन्तु इब्राहिमका उन पर किस सीमाका प्रेम था, इस बातकी परीक्षा करनी थी। उसने तो फिर उस जानवरको भी सजीव कर दिया। हिन्दू भाइयोंमें भी एक ऐसी ही कथा प्रचलित है कि शगालसा सेठने अपने कुंवर केलैय्याको ओखलीमें डालकर कूट दिया था ; परन्तु ईश्वरने उसे सजीव किया था। इन

सब उदाहरणोंसे यह सिद्ध होता है कि ईश्वरका हेतु मांस भक्षण करनेका नहीं; परन्तु अपने भक्तोंको कसौटी पर कसनेका ही है।

ईद करने वाले भाइयोंको अपने मनमें इतना ही विचार करना चाहिए कि जब वे ईदका त्यौहार उपरोक्त बातके लिये करते हैं तो उन्हें बकरेका नहीं, किन्तु इब्राहिमके समान अपनी प्यारीसे भी प्यारी वस्तुका बलि देना चाहिए। क्या यह उनसे बन सकेगा?

कुरानमें सूरा उलमायदके सिपारा ४ मंजल २ आयत ३ में लिखा है कि "मक्केकी हद्द भरमें कोई जानवर न मारे, यदि भूलसे मार डाले, तो उसके बदले अपना पालतू जानवर वहां छोड़ देवे, अथवा दो भले आदमी जो क़ीमत उस जानवर की नियत कर दें उतनी क़ीमतका खाना गरीबोंको खिला देवे।" यदि हिंसा अपवित्र न होती, तो धर्म क्षेत्रमें उसकी खास मनाई कैसे हो सकती है?

अब हम अपने पारसी भाइयोंके धर्मकी ओर फिरते हैं। पारसी भाई अपने हिन्दू भाइयोंसे बहुतसी आचार विचार की बातोंमें मिलते हैं। वह धर्म भी हिन्दू धर्मके समान अच्छा है। जैन धर्मके समान उसमें तो यहां तक कहा है कि "अरे ज़रदस्त! जब तेरे जीव जानेकी अन्तिम घड़ी आजावे तब तू मेरी प्रार्थना करना! और साथ ही साथ मेरी जो सृष्टि है उसकी भी आराधना करना! और साथ साथ सब देवी देवता गोसफन्दों—तथा

जलमें रहने वाले सब जीवोंको और पृथ्वी पर रहने वाले सब प्राणियों तथा नभचरोंको भी आराधना—क्षमा मांगना—तो मैं तुझे नर्कसे बचाऊंगा।"

ऐसे उत्तम धर्ममें हिंसाका पक्ष तथा आज्ञाका होना सम्भव ही कैसे हो सकता है? असोजरथोस्तने जिन कार्योंके करनेको अवतार लिया था उन कामोंमेंसे पशु रक्षा भी एक था; और इसी कारण उसे "पशु रक्षक जरथोस्ती दीन" नाम दिया गया है। पारसी धर्मशास्त्र यदि हिंसा और मांस भक्षणके पक्षमें होते तो इसका क्या कारण है कि पारसी भाई प्रतिमास, चार दिवस अर्थात् वमन; मोहोर, गोश और राम, इनमें और वमन मासमें जशनके दिन और कुटुम्बियोंकी मृत्युके तीन दिन तक मांससे विशेष रूपसे दूर रहते है। जरथोस्तके समयमे गुस्तास्प बादशाहका पौत्र बह्मन अन्न, फल और शाकके अतिरिक्त कुछ नहीं खाता था, और ईरानी परहेजगारोंका बड़प्पन देख कर, डाओजीनिस, पीथोगोरस, प्लेटो और प्लूटार्क आदि महापुरुष भी मांस भक्षण नहीं करते थे। ईरानका प्रख्यात यात्री 'सर-जान मालकम' लिखता है कि मैंने बुद्धिमान और परहेज़गार—संयमी—मोबेद शरोशसे सुना है कि, ज़रदस्तके पिताके पास एक गाय थी, वह झाड़ों परसे गिरी हुई पत्तोंके सिवाय और कुछ भी नहीं खाती थी। यह गाय जितना दूध देती थी, उसके अतिरिक्त कोई भी खुराक ज़रदस्तका पिता नहीं लेता था।

इससे मालूम होता है कि पारसी धर्म भलाई की राह पर है, परन्तु बादमें किसीने व्यर्थ युक्तियां पुस्तकोंमें शामिल करके और मिथ्या उपदेश करके मासांहार भर दिया है।

अपने ईसाई भाइयोंकी धर्म पुस्तक बाइबिलमें भी कहा है कि "देख! पृथ्वी पर जो भाजी तरकारी और फल तेरे लिये दिये गये हैं उन्हें तू अपने खानेके काम में लाना" एक समय प्रसिद्ध बर्नस कवि खेतमें हल चला रहा था उस वक्त एक चूहेका बिल हलकी नोकसे उखड पडा, उसमेंसे एक चुहिया भयभीत होकर इधर उधर दौड़ने लगी, उसे देखकर उसने कहा कि मुझे निस्सन्देह बडा खेद है कि मनुष्य प्रकृतिके परस्पर स्नेहको तोड डालते हैं किन्तु मैं ऐसा नहीं करता।

वर्ड्सवर्थ कवि कहता है कि हे भाई ऐसी किसी भी बातमें आनन्द मत मानना, जिसमें उसके सम्बन्धी वस्तुको दुःख पहुंचे अंग्रेजी उपन्यासकार रावर्ट बचेनन कहता है कि भगवान ने जिन पामर पशुओंको गूंगा बनाया है उनकी भयंकर वेदनाए बोलने की शक्ति रखने वाले मनुष्यकी पीड़ासे बहुत ही दया जनक है। अपनी तर्क शक्तिके विशेष पवित्र सम्बन्धसे वह मरणका आवागमन जान सकता है और उससे डरता है, और कई वार तो उसे अपना जीवन इतना अधिक प्रिय होता है कि देहसे प्राण बहुत कठिनाईसे भिन्न होते हैं। क्या अपने को मनुष्य की मृत्यु-शय्याके समीप बैठकर आंसू बहाना चाहिए, और पशुके मरनेके समय खाली आंखसे देखते रहना चाहिए?

एकतः कांचनो मेरुर्बहु रत्नावसुंधरा
एकतो भयभीतस्य प्राणिनं प्राण रक्षणं ॥

अर्थात् एक ओर तो कोई पर्वतके बराबर स्वर्णरत्नोंसे भरी सारी पृथ्वी दान करे और दूसरी ओर कोई भयभीत प्राणी के प्राण की रक्षा करे तो ये दोनों ही बराबर हैं।



तीसरा दिवस.

द्वितीय निषेधपर विशेष विवेचन.

"Flesh eating is not unnatural to our physical constitution only. The mind and intellect are made gross by gorging and repletion—Plutarch."

"मांसाहार केवल अपने शरीर-गठनके ही लिये प्रतिकूल नहीं है ; किन्तु उस खुराकसे मन और बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाते हैं—प्लुटार्क"

"A vegetarian diet is pre eminently the diet of beauty, energy, activity and enjoyment."

"शाक भोजन निस्सन्देह सौन्दर्य्य, शक्ति, चचलता और आनन्द देने वाला उत्तम भोजन है।"

—डाक्टर टी० एल० नीकाल्स, एम० डी०

भाइयो और बहनो ! कल हमने तुम्हें समझाया था कि कोई भी धर्म हिंसा अथवा मांस भोजन की आज्ञा नहीं देता; बल्कि उसका स्पष्ट रीति से निषेध करके, दया और मनुष्यत्व का उपदेश करता है।

आज मैं तुम लोगोंके समक्ष इसी विषय पर दूसरी दृष्टिसे विवेचन करूंगा।

सबसे पहिले, मैं यही लूंगा कि हम सब आर्य लोग जो शाक भोजन परम्परासे खाते आए हैं, वह मांसाहारसे कितना श्रेष्ठ है। अपना शरीर एक प्रकारका यन्त्र है। जिस प्रकार यंत्रका अमुक भाग उसकी गतिसे घिस जाता है, उसी प्रकार अपने शरीरके अवयव श्रम से घिस जाते हैं। इस घिसी हुई कमीको पूर्ण करनेके लिये हमें भोजन करनेकी आवश्यकता पड़ती है।

अब इस भोजनमें भिन्न भिन्न प्रकारके ऐसे पदार्थ होने चाहिएं जो शरीरके प्रत्येक अवयवको पुष्ट कर शरीरमें शक्ति तथा गर्मी उत्पन्न कर सकें। ऐसे पदार्थोंके नाम और उनका विवरण इस प्रकार है—(१) नाइट्रोजन वाले पदार्थ शरीर गठन करते हैं (२) कारबन वाले पदार्थ शरीरमें गर्मी उत्पन्न करते हैं और उसका संग्रह रखते हैं (३) तेलवाले पदार्थ चर्बी पैदा करते हैं, और (४) भिन्न भिन्न प्रकारके क्षार विविध प्रकारके रसोंकी वृद्धि करते हैं और रुधिरको पुष्टता प्रदान करते हैं। अपने शाक भोजनमे इन सब तत्वोंका समावेश है। मांसाहार यथेष्ट भोजन नहीं है, अर्थात् अकेले इसीको खानेसे हमारा कार्य नहीं चल सकता : उसके साथ शाक भोजन न लेनेसे 'रक्तपित्त' की बीमारी हो जाती है ; क्योंकि उस खुराकमें 'स्टार्च सुगरका' भाग बिलकुल नहीं है, और इसके बिना मनुष्य शरीर चल ही नहीं सकता।

कई वनस्पतियों तथा दूध, दही, घी, मक्खन इत्यादि पदार्थों में जितना पौष्टिक सत्व है उतना मांसाहारमें है ही नहीं ; और इतना होने पर भी ये पदार्थ मांस खुराकसे सस्ते, नेत्रको प्रिय, सुगन्धित और महापाप किये बिना ही मिलते हैं ।

मांसाहारी लोग प्राणियोंका कलेजा या गुरदा खाते हैं, वह क्या है ? यह बारीक नलियोंका बना हुआ मांस पिण्ड है। इन नलियोंके आस पास रुधिर की जाली बंधी हुई रहती है ; और उसके द्वारा भोजनसे रुधिर बनता और व्यर्थ द्रव्य पदार्थ सूखकर बाहर आता है। गुर्देके भीतर एक ओरसे गड्ढा दृष्टि पड़ता है। वहा एक दियासलाईके समान मोटी नली रहती है। उस नलीके द्वारा गुर्देमें खिंचता हुआ मूत्र टपक टपक कर पेशाबके फुक्केमें आता है। पेटमें खुराक जाने पर, जब उसका अन्न रस हो जाता है, तब अपने कोठेमे स्थित प्रत्येक अवयव अपना अपना काम करते हैं; जैसे कि अन्न रसमेसे कलेजा पित्त पैदा करता है और पेटकी रोमके समान नलियां जठर रस पैदा करती है, फेफड़ा रुधिर स्वच्छ करता है, अन्तःकरण सबमें रुधिर पहुँचाता है , और गुर्दा प्रवाही पदार्थको बम्बे की नलीके समान चूस चूस कर व्यर्थ पानी फुक्कामें उतारता है। अब यह गुर्दा निरोगी ही होगा इसका क्या विश्वास ? प्रमेह, गर्मीका चिट्टा, पथरी रेती, मीठा मूत्र, और बहुत सी बीमारियां उसके खाने वालोंको होती हुई देखनेमें आती हैं ।

मरोर, अतिसार, बात, मृगी और लकवा के रोगी जब तक

मांस त्याग न करें तब तक अच्छे चंगे नहीं होते। हैजा के रोगीको मांस का पानी भी इसी प्रकार हानि पहुंचाता है। बीमारीसे उठकर मनुष्य यदि मांस खाय, तो उसे तेज़ बुखार आता है।

मछलीका मांस खाने वालोंमेंसे कई बड़े माथे वाले हो जाते हैं, और उनके फोड़ेके समान गोल गोल चिन्ह हो जाते हैं। उत्तर रशिया, नार्वे, स्वीडन, और आयर्लैंडमें यह रोग बहुत देखनेमें आता है।

सूअरका मांस खानेसे शरीरमें एक प्रकारके फोड़े होना सम्भव है, जिससे कि मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। इसी कारणसे मुसलमान भाई सूअरका मांस छूते तक नहीं हैं।

गाय तथा बैलके कलेजे और आंतों पर जो सफेद दाने दृष्टि पड़ते हैं, वे एक प्रकारके कीड़े हैं। वे मांसाहारीके शरीरमें आकर, दांत और दाढ़ोंके शत्रु बन बैठते हैं, इतना ही नहीं, किन्तु डाकृर टालके कथनानुसार तो उससे भेजे की बीमारी पैदा हो जाती हैं। इसी कारण पारसी भाई गो मांस कभी उपयोगमें नहीं लाते।

लन्दनका सरकारी डाकटर कहता है कि "यहां बेचे जाने वाले गाय बैलके मांस की जांच करनेसे, सैकड़ा पीछे पांच ही निरोगी जानवरोंका मांस बिकता हुआ मालूम पड़ता है।" और आक्सफर्ड यूनिवरसिटीके वैद्यक विभागका निरीक्षक डाकटर

ओकलैंड कहता है कि "रोगी जानवरका मांस खानेसे सात प्रकारके भयानक रोग होते हैं :—

(१) ढोरोंके समान चर्बी (२) टाइफोइड, मोतीझिरा, (३) पसली, बगल और फेफड़ेका दर्द (४) मुंह और पैरोंमें सुजनका रोग (५) 'अन्थ्रकोइड' रोग (६) रुधिरका बिगड़ना और (७) क्षय उत्पन्न करने वाला गांठोंका रोग।"

मांस खानेसे दूसरा जो भयंकर बिगाड़ होता है, वह ध्यानमें रखने योग्य है। डाक्टर टी० एल० नीकोल्स एम० डी० कहते हैं किमांसाहार कृत्रिम जोश उत्पन्न करता है। इस कृत्रिम जोशसे मनुष्य विषय भोगी बनता है, इससे थकावट उत्पन्न होती है। थकावट दूर करनेके लिये जोश की आवश्यकता होती है, और जोश लानेके लिये मनुष्य फिर मांस भक्षण करता है। परिणाम यह होता है कि एक गोलेके आस पास ही वह चक्कर लगाता रहता है, और विनाशका कार्य चलता ही रहता है। इस प्रकार मनुष्य की तामसी वृत्ति बनाने वाली यह खुराक मनुष्यका मनुष्यत्व छीन लेती है और उसे निर्दयताका दूसरा अवतार बना देती है।

मेरे इतने विवेचन परसे तुम समझ गये होगे कि मांसाहार —(१) बहुत सी बीमारियां उत्पन्न करता है (२) मनुष्यको तामसी वृत्ति वाला बनाकर नीतिभ्रष्ट करता है (३) वनस्पति भोजन—शाकाहारके—समान वह यथेष्ट आहार नहीं है और उसके साथ शाकाहारका उपयोग करना ही पड़ता है (४) वह

बहुत समय तक रक्खा नहीं जा सकता क्योंकि वह बिगड़ जाता है (५) देखनेमें अस्वच्छ रोंगटे खड़े कर देने वाला और (६) अनाज की अपेक्षा मँहगा है।

अब मैं तुम्हें यह सिद्ध कर बतलाऊंगा कि अनाज की अपेक्षा मांसाहार कितना कम बल देने वाला है। अपने राज्यको जंगली और अप्रसिद्ध स्थितिमेंसे बहुत ही बलवान तथा भव्य बनाने वाला ईरानका बादशाह साइरस बालपनसे शाकभोजी था। वैसे ही उसके सिपाही बालापनसे वनस्पत्याहारी थे, तो भी वह बहुत थोड़े समयमें अपने सिपाहियोंके साथ सैकड़ों मील कूच करनेकी शक्ति रखता था इसी प्रकार उसने अनेक लड़ाइयां लड़कर, अपनेसे दुगनी फौजों पर, असाधारण विजय लाभकी थी। ऐसे ही ग्रीस और रोम की सेनाओंके विषयमें गाथा प्रसिद्ध है। मि० हेन्डरके पत्रमें लिखा है कि रूसमें एक तलवार चलाने वाले लोगोंकी सबसे बढी चढ़ी जाति है, जिसमें छः फीटसे कम ऊँचा कोई भी मनुष्य नहीं है। उस जातिका प्रत्येक मनुष्य, प्रतिसप्ताह आठ सेर काली रोटी, चार सेर तेल और एक सेर निमक खाता है। उनको देखनेसे विश्वास होता है कि वे मांसाहारी लोगोंसे कदापि नहीं हार सकते। मथुराके चौबे तथा अयोध्यामें रहने वाले पुरबिये शाकाहारी होते हैं। वे भी पहलवानोंको पछाड़ने वाले होते हैं। ईसाइयों की धर्म पुस्तकमें लिखा है—"दानिअल और उसके साथी, जो दाल खाते और पानी पीते थे, सब मांसाहारियों की अपेक्षा अधिक मस्त

और सुन्दर थे।" स्पार्टाके निवासी जो संसारके सब लोगोंसे शारीरिक बलमें और शरीरकी गठनमें बढ़े चढ़े थे, तथा जिनकी बराबरी कोई भी जाति न कर सकती थी सब शाक भोजी थे। वैसे ही यूनान देश की प्रसिद्ध व्यायाम शालाओं—अखाड़ों—में, जो मनुष्य कि शारीरिक शक्तिसे अनेक चमत्कार दिखलाते थे, वे भी शाक भोजी थे। इससे सिद्ध होता है कि शाकाहार मांसाहार की अपेक्षा किसी भी प्रकार कम शक्ति वाला नहीं है, बल्कि यदि ध्यान पूर्वक देखा जावे, तो उससे कहीं अधिक शक्ति वाला है।

शाकाहार अपना असली भोजन है। वेद और दूसरे हिन्दू शास्त्रोंमें शाकाहार ही की आज्ञा है। एशिया खण्डकी दूसरी प्राचीन जातियोंका वृत्तान्त देखनेसे मालूम होगा कि वे भी वनस्पति भोजनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं खाते थे। अरबके लोग सीरियाके निवासी तथा जापानी भी वनस्पति खाकर रहते थे। ईरान देशके प्रसिद्ध यात्री सर जान मालकमने लिखा है कि प्राचीन कालमें ईरानी लोग, अपने निर्वाहका अधिकांश आहार, अपने बगीचों पर रखते थे। प्राचीन ग्रीक तथा रोमन लोग वनस्पत्याहार करते थे। डाइकन कविने लिखा है कि मनुष्य फलाहार करते थे तथा प्राणियोंके मांससे अपने मुखको अपवित्र नहीं करते थे। पशु, पक्षी तथा शशक स्वतन्त्रता पूर्वक बेधड़क विचरते थे। पोप, टॉमसन तथा सैली नामक प्रसिद्ध कवियोंने वनस्पत्याहार की प्रशंसामें बहुत गान किया है और

प्राणियोंके वधकी बेतरह निन्दा की है। बाइबिलके पहिले तथा दूसरे जेनिसिसमें ईश्वरने आदमसे कहा है कि इन वृक्षों पर जो फल हैं उन्हें खाना। एथीनियन लोग अंजीर खाकर रहते थे। वे बुद्धि बल तथा विद्याकलामें, संसार-भरमें श्रेष्ठ थे; तथा आरकेडियन लोग 'एकार्व' नामक फलखाते थे मुसलमानों की धर्म पुस्तकोंमें लिखा है कि अल्लाने संसारके आरम्भमें प्रथम बाबा आदम और बीबी हव्वाको पैदा किया और वह तुरन्त आदमकी पूर्व बालूमें जो एक बगीचा था उसमें उतरा। वह बगीचा शाक भाजी तथा फल फूलसे भरपूर था। उन्हें उसमें रखकर, उस बगीचेमें उत्पन्न होते हुए फलादिक खाने की आज्ञा दी। इन सब दृष्टान्तों परसे सहज ही सिद्ध होता है कि वनस्पत्याहार ही अपना मूल भोजन है; अतएव शाकाहार ही अपना स्वाभाविक भोजन है। भिन्न भिन्न प्राणियोंकी शारीरिक रचना परसे मालूम पड़ता है कि प्रकृतिने मनुष्यके लिये वनस्पतिका ही भोजन निर्माण किया है और वही उसके अनुकूल भी है। व्याघ्र, सिंह, कुत्ता इत्यादि प्राणियोंके लिये मांसका भोजन है; वह उनके स्वभावके अनुकूल है। घोड़ा, हाथी गाय इत्यादि प्राणियोंके लिये घासकी खुराक है; उसके सिवाय दूसरा भोजन उनकी प्रकृतिके अनुकूल नहीं है। मांसाहारी प्राणियोंके पंजे और नख होते हैं। कुत्तोंके दांत बड़े और लम्बे होते हैं और पाचन क्रियाका स्थान छोटा होता है इस रचनाके कारण मांसाहार उनके अनुकूल होता है। सारांश यह है कि उनको

अपना भक्ष्य पकड़ने और फाड़नेके लिये पक्के साधन प्राप्त हैं; परन्तु मनुष्य की शरीर रचना ऐसी नहीं है। यही हाल घास खाने वाले प्राणियोंका है। इससे स्पष्ट है कि मनुष्यको वनस्पति भोजन ही अनुकूल है। लीनीयस, बेरन, कुवीअर और टमस बेल इत्यादि डाक्टरोंका यह मत है कि मनुष्यके शरीरकी रचना विशेषतः पेट, हाथ और मुंह—देख कर ऐसा मालूम पड़ता है कि प्रकृतिने उसके लिये वनस्पति भोजन ही उत्पन्न किया है।

जिन देशोंमें मांसाहारका अधिक प्रचार है, वहां भी थोड़ी आय पर जीवन निर्वाह करनेवाले लोगोंको, मांसाहारसे दूरही रहना पड़ता है। मितव्ययताके लिये वनस्पति भोजनका ही आश्रय लेना पड़ता है।

इन सब बातोंसे सिद्ध होता है कि वनस्पति भोजन (१) मनुष्यके लिये स्वाभाविक भोजन है; (२) सुखदायक आहार है; (३) शक्ति देने वाला पदार्थ है; (४) आवश्यकतानुसार थोड़ी या बहुत मिल सकती है; (५) मितव्ययी भोज्य है; (६) शान्तिसे प्राप्त होने वाला है; (७) मनुष्यका मनुष्यत्व बनाये रखने वाली वस्तु है; (८) आंख और नाकको जिससे घृणा न हो ऐसा भोजन है; और (६) अपनी असली खुराक है। * * * * * * *

मुनिका भाषण कुछ धीमा पड़ते ही पूर्वोक्त शिक्षित युवा बोला—महात्मन्! आपने मांसाहारके विरुद्ध कई सबूत देकर तथा मांस और शाकाहार की तुलना कर हिंसाका जो बड़ा

कारण मांसाहार है उसे दूर करनेका आदेश दिया है। आपका उपदेश अत्यन्त हृदय भेदी और योग्य है; परन्तु जब कोई पण्डिताईका ढोंग करने वाले वादविवादमें यह बात उपस्थित करते हैं कि "जीवो जीवस्य जीवनम्" तब उन की इस दलीलका क्या उत्तर देना चाहिए?

मुनिने उत्तर दिया—ठीक है। 'जीवो जीवस्य जीवनम्'—इस बातको कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता; परन्तु उसके अर्थमें कई लोग बड़ी भूल करते हैं। एक जीव दूसरे जीवका जीवन अर्थात् सहायक है। गाय, भैंस, बैल इत्यादि जीव अपने लिये दूध, दही, घी, अनाजादि उत्पन्न करते हैं; इसलिये वे अपने जीवन ही समझे जाते हैं। क्या माता अपने पुत्रको अपना जीवन नहीं समझती! क्या स्त्रियां अपने पतिको 'जीवन' कह कर सम्बोधन नहीं करतीं? तब क्या उनका मतलब पुत्र और पतिको अपना भोजन बनानेका है अथवा अपना सर्वस्व कहनेका?

तुम्हारा प्रश्न बहुत विवेक पूर्ण है। मांसाहारी लोग अपने थोड़ेसे स्वार्थ—मजा मौज (न कि आवश्यकता)—के लिये देश भर की कितनी हानि करते हैं। यह समझानेके लिये मुझे तुम्हारे प्रश्न परसे एक बात याद आती है।

यह समझानेके लिये मैं 'गोरक्षा' ग्रन्थके कर्त्ताके ही शब्दोंमें बतलाता हूं कि—"सारे हिन्दुस्थानमें प्रति वर्ष एक लाख गायोंका वध होता है, और उससे उसकी पांच पीढ़ीके हिसाबसे (उससे

उत्पन्न होते हुए दूध, अनाजादि की उपज इकट्ठी करनेसे) २०, ७५, ६२, ५०,००,०००) बीस खर्ब, पचहत्तर अरब, बान्वे करोड़, पचास लाख) रुपया नुकसान हिन्दुस्थानका होता है।" हा ! इस प्रकार बराबर हानि होती रहनेसे देश की अधिक से अधिक दुर्गति होती जाय, इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

ढोरोंको हिन्दुओंमें श्री अर्थात् लक्ष्मीके समान मानते हैं। पत्र व्यवहारमें हम भाई श्री ५, सेठश्री ५ आदि लिखते हैं। इसका अर्थ यह है कि पांच प्रकारकी लक्ष्मी युक्त भाई अथवा सेठ हैं।

प्रथम अन्न अरु फिर है धन।
पुनि है स्त्री अरु चौथा तन॥
पञ्चम होता पशुका संच।
लिखिए पत्र मध्य—'श्रीपञ्च'॥

राजाको गादी और हाथी ये दो श्री अधिक होती हैं इस लिये उन्हें ७ श्री, लिखी जाती है।

इस प्रकार ढोरोंको जो लक्ष्मीके समान माना है, उसमें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं समझ पड़ती। देखो ! पशु अपनेको दूध, मलाई, और घी आदि पौष्टिक पदार्थ देते हैं, उष्णता प्रदान करने वाले कपड़े बनानेको ऊन देते हैं; औषधिके समान उपयोगमें उनका मूत्र आता है, घरकी भूमि लीपनेको—ईंधन करनेको—राख बनानेके लिये तथा खाद बनानेके लिये वे गोबर देते हैं। खेत तथा बगीचोंकी भूमि बखर देते हैं, शाक भाजीके

पोषणार्थ वे कुएंसे पानी निकाल कर देते हैं, बालोंमेंसे अनाज का दाना जुदा कर देते हैं; मनुष्यों तथा माल को एक ग्रामसे दूसरे ग्राम खींच कर ले जाते हैं, पर्वतों पर चढ़ा ले जाते हैं, अगम्यरेतीले मरुस्थलोंमेंसे पार कराते हैं, इस प्रकार एक मित्रके समान वे जीवन पर्यन्त हमारी सेवा करते हैं।

इतने पर तथा अनाजका यथेष्ट भंडार भरे रहने पर भी, एक घड़ी भरके मजेके लिये मूर्खतासे उन्हें मृत्यु वश करने वाले, क्या अपने मनुष्य भाइयोंकी समृद्धिको धक्का नहीं पहुंचाते हैं ? और वे कृतघ्नताका पाप नहीं करते ?

अकबर बादशाह भली भांति जानता था कि, ऐसे उपयोगी प्राणियोंमें सब मनुष्योंका हित समाया हुआ होनेसे, उनका नाश करना राजकीय—अपराध है; इससे उसने यह नियम बनाया था कि, "जो मनुष्य गायको मारेगा उसके कुटुम्बका सबसे स्याना और सुन्दर पुरुष हलाल किया जायगा।" यद्यपि यह दंड बहुत कठोर तथा क्रूर मालूम पड़ता है; परन्तु इससे यह सिद्ध होता है कि, इस विषयका प्रबन्ध करना भी राज्यकर्त्ताके मुख्य कर्त्तव्योंमेंसे एक है।

शिक्षित पुरुषने दूसरा प्रश्न उपस्थित किया :—

महात्मन्! कई एक देखा देखीसे मांसाहार सीखे हुए भाई अपने बचावमें कहते हैं कि, "हिन्दू वनस्पत्याहारसे ही निर्बल और—अधम स्थितिमें आ पड़े हैं।" इसका क्या उत्तर देना चाहिये ?

मुनिने उत्तर दिया :—

हिन्दू अधम स्थितिमें आ पड़े हैं। इस बात पर तो कोई "ना" कहे सो नहीं है, परन्तु इसका कारण "मांसाहार न करना" बतलाना बड़ी भारी भूल है। अपने भाइयोंमें आरोग्य विधान तथा शरीर रक्षणका कितना कम ज्ञान है सो तो तुम जानते ही हो। यह ज्ञान केवल वैद्यक करने वालोंको ही प्राप्त करना आवश्यक है यह हम लोगोंकी गलत समझ है; मैलेपन, अंधेरे कोठोंमें रहना, अनियमित भोजन, मसाला-तेल आदि पदार्थोंका अधिक उपयोग इत्यादि कारणोंसे वे अपने स्वास्थ्यको बिगाड़ते हैं। और बाललग्न, बेजोड़ विवाह, कन्याविक्रय, जाति-भोजन, रोना पीटना, एकसे अधिक स्त्रियोंके साथ लग्न, अशान्ति, आलस्य इत्यादि कारणोंसे उनका प्रजाजनोचित बल कम हो गया और कम होता जाय तो इसमें कुछ नवीनता नहीं है।

मैं तो साहस पूर्वक यह कह सकता हूं कि, ऐसे ऐसे अवनति करने वाले कारण अहर्निश अपना काम किये ही जाते हैं तिस पर भी हिन्दू भाइयोंका सामाजिक बल हजारों वर्षसे जो कुछ टिक रहा है, वह अपने असली—प्राचीन—धर्म पर उनका प्रेम और मांसाहारसे विरक्ति इन्हीं दोके प्रतापसे है।

उस युवाको और एक संशय उत्पन्न हुआ :—

"देव! यदि संसारमें बहुतसे मनुष्य मांस खुराकसे दूर रहें और एक मात्र वनस्पति खुराक पर निर्वाह करें तो क्या

वह खुराक उन सबको पुर सक्ती है? और क्या वह महंगी न मिलेगी?"

मुनिने प्रसन्न मुखसे उत्तर देना आरम्भ किया; भाई! तुम्हारा यह प्रश्न भी बुद्धिमतासे भरा हुआ है। इस प्रकार उप-देश सुननेके पश्चात् उस पर मनन कर और शंका उत्पन्न कर उसका समाधान करानेकी रीति सब श्रोताओंमें होती तो आज कल जो कई वेषधारी उपदेशक धर्मके नाम पर, अपनी इच्छानु-सार उपदेश कर लक्ष्मी और मान पूजा प्राप्त कर श्रोताओंकी बुद्धिको भ्रष्ट करते हैं, उनको खड़े रहनेका भी स्थान न मिलता। तुम्हारे सुन्दर प्रश्नका उत्तर एक अमेरिकन विद्वान्‌के शब्दोंमें एक दो दृष्टान्तों द्वारा तुम्हें सुनाऊंगा। लिखनेका "किल" (पर) पहले बहुतही सस्ता था क्योंकि लिखनेवाले बहुत थोड़े थे। पर जैसे जैसे विद्याका प्रसार बढ़ता गया और लेखन कला उन्नति पाती गई वैसे वैसे प्रकृतिने मनुष्यको "स्टील पेन" बनानेकी बुद्धि सुझाई। वैसेही पहले चमड़े पर लिखनेका रिवाज था, पर जब लिखनेका काम बढ़ता गया तब कागजकी शोध हुई। इससे मालूम होता है कि, जितनी आसानीसे खनिज पदार्थ और शाक भाजी सम्बन्धी वस्तुओंकी पैदावारी उनके खर्चके प्रमाणमें बढ़ सक्ती है उतनी आसानीसे जो पैदावारी जानवरोंसे प्राप्त होती है वह नहीं बढ़ सक्ती और इससे वह बिक्रीकी अधिकताके साथ महंगी होती जाती है, जबकि खनिज और शाकभाजी सम्बन्धी पदार्थों की तो ज्यों ज्यों बिक्री बढ़ती जाती है त्यों त्यों

उनकी कीमत उल्टी घटती जाती है, क्योंकि बिक्रीके प्रमाण की अपेक्षा उनकी उत्पत्तिमें भी बहुत अधिक बढ़ती की जा सकती है कारण कि, इस विशाल पृथ्वी का बहुत सा भाग तो अभी उपयोगमें भी नहीं लिया जाता है।

अब श्रोतागण अपने काममें लगनेको अधीर होते जान पड़ते हैं इसलिये अब दूसरे प्रश्नो का उत्तर फिर देना ठीक होगा।



चौथा दिवस ।

द्वितीय निषेध पर विशेष विवेचन ।

प्रिय श्रोतागणो ! मुझे क्षमा कोजिये । मैं सबसे श्रेष्ठ प्राणीके विषयमें आप लोगोंसे कहने के लिये अभी तक भूल ही गया था । यह प्राणी दूसरा कोई नहीं मनुष्य ही है । सब जातियोंके विद्वान् पुनर्जन्मका सिद्धान्त स्वीकार करते हैं । वे यह भी मानते हैं कि जीवों को अपने अपने कृत्योंके अनुसार उत्तम या निकृष्ट शरीर प्राप्त होता है । तब यह समझना सहज ही है कि एक जीवको असंख्य शरीरोंमें वास करना पड़ता है । उन सबमें मनुष्य शरीर ही एक ऐसा वास है कि जिस अवस्थामें आत्माका कुछ भी कल्याण किया जा सक्ता है । इससे अब ऐसा मान लेनेमें कुछ हानि नहीं है कि मनुष्य सब प्राणियोंसे उत्तम है ऐसे ही क्रोधके आवेशमें, अथवा वैर भंजानेके लिये, या कोई नीच स्वार्थयुक्त हेतु सिद्ध करनेके लिये, किसी मनुष्यकी हत्या करनेके समान नीच और पापी कार्य दूसरा नहीं । इस घोर

कुकर्मके करने वाले को राज्यकी ओरसे काले पानी अथवा फांसी देखनेमें आते हैं। यद्यपि शस्त्रोंके द्वारा किये गये ऐसे कृत्य बहुत थोड़े दृष्टि पडते हैं तथापि विना शस्त्रोंके ऐसे खून कम नहीं होते। यहा पर मुझे केवल दो प्रकारकी मनुष्य हत्याके सम्बन्धमें कुछ कहने की आवश्यक्ता प्रतीत होती है। (१) आत्मघात (२) गर्भपात या बाल हत्या।

कई मूर्खोंका ऐसा ख्याल है कि, मनुष्य अपने शरीर का मालिक है, इस लिये उसका घात करनेमें, उसे दोष नहीं लगता परन्तु जब अपने उत्पन्न करनेकी शक्ति अपनेमें नही है तब अपने नाश करनेकी शक्ति मनुष्य अपने हाथमें कैसे ले सक्ता है? आत्मघातकी इच्छा, मनकी निर्बलता और क्रोधावेशकी प्रबल शक्तिका सबूत देती है और जो मनुष्य, अपनी आत्माके साथ वार्तालाप करनेकी—आत्मामें रम रहनेकी—टेव डालता है उस पर यह राक्षसी अपना प्रभाव नही जमा सक्ती।

कहावत है कि "क्या लूट होती देख विषका पान करना चाहिए" नहीं, क्यों कि ऐसा करनेसे पहले तो प्राण जाते हैं और पीछे धन जाता है। दु:ख और शत्रु दोनों एकही जाति के हैं। उनसे डर कर जो पीछे पाव दिया तो समझ लो कि, जोशमें आकर, उसने धावा ही किया, परन्तु यदि हिम्मत करके उनका सामना किया तो उनके पैर ही नहीं जमने पाते।

कई धर्मोंमें कहा है कि, "आत्मघात करने वालेके सात जन्म ऐसेही ऐसे दु:खमें जाते हैं।" यह बात बहुत ठीक है कि

सातही नहीं किन्तु जो इस प्रकारसे आत्म हत्या करता है। उस के असंख्य जन्म तुच्छ प्राणियोंकी योनिमें जन्म लेकर महादुःख भोगते हुए बीतते हैं।

निर्धन और अपढ़ लोगोंकी अपेक्षा गृहस्थ और सुधरे हुए* लोगोंमें, आत्मघातसे बहुतसी मृत्यु होती हुई सुननेमें आती हैं। धन हानिसे अथवा कोई विपत्ति आनेसे, या हाथमें लिये हुए कार्यसे हताश होनेके कारण, वे किसी प्रकारका विष खा कर, या किसी जलाशयमें डूब कर, या फांसी लगा कर; अथवा और किसी प्रकारसे तड़फ कर, बलात्कार अपनी अमूल्य देहका विनाश करते है। क्या उनकी यह धारणा है कि, इससे वे दुःखसे मुक्त हो जायंगे अथवा इससे उन्हें स्वर्गका सुख मिलेगा? किन्तु यह धारणा बिलकुल बेजड़ है। जैसे, जब कोई कैदी कैदमेंसे भाग जाता है तब वह पहलेसे अधिक दंडका भागी होता है; वैसेही आत्मघाती भी अधिक पीड़ाका पात्र होता है।

दूसरे प्रकारकी मनुष्यहत्या, गर्भपात अथवा बालहत्या है। कभी कभी ऊंच जातिकी विधवाएं व्यभिचार गुप्त रखने के लिये गर्भपात करती हैं, या वह प्रयास निष्फल जानेसे जन्मे हुए बालकको एकान्त स्थानमें फेंक देती हैं अथवा नदी कूएंमें डाल आती हैं ऐसा करने वाली स्त्रियां और उसमें कारण भूत तथा

---

* एक वर्तमान पत्रमें लिखा है कि, "फ्रांसमें सन् १८८० ई० में लगभग आठ हजार आत्महत्यायें हुई थीं,"

संहायक होनेवाले पुरुष नीतिके सिद्धान्तका उल्लंघन करते हैं, चौरी करते हैं, खून करते हैं और राजकीय अपराध करते हैं। ऐसो इत्यादि रोकनेके लिये तात्कालिक उपाय रचे गये हैं। कहीं कहीं कई दयालु पुरुषोंकी ओरसे, विधवाओंके गुप्त रीतिसे प्रसव की हुई संतान डाल आनेके निमित्त एकान्त स्थान बनवाए गये हैं, जहां कि उनको डाल कर विधवाएं चुपचाप चली जाती हैं, और पश्चात् उस बालक का उत्तम रीतिसे पोषण किया जाता है।

परन्तु ऐसे कृत्य रोकनेके लिये उत्तम व्यवहारिक मार्ग तो यही है कि बालविवाह बन्द कर दिये जायं, जिनसे बाल विधवाओंका होना सम्भव है, वही कम हो जाय। स्त्रियोंमें धर्म नीति तथा व्यवहारिक ज्ञानका प्रसार बढ़ाया जाय, जिससे यदि कोई भाग्यहीन स्त्री विधवा हो जाय तो भी वह निष्कलंक जीवन व्यतीत कर सके। स्त्रियां जातिकी उन्नति तथा अवनति के मुख्य कारणोंमेंसे एक है। उनकी शिक्षाकी ओर जो बिल-कुल कम लक्ष्य दिया जाता है, वह निःसन्देह बहुत निराशा जनक है।

पण्डिता रमाबाईने विधवाओंके लिये एक आश्रम खोला हैं, उसमें वे उन्हें शिक्षा देती हैं और उनका पोषण करती हैं। साथही साथ उनको ईसाई भी बनाती हैं। हमारी समझमें नहीं आता कि हमारे हिन्दू सेठ लोग क्यों "विधवा आश्रम" बन-वानेकी हलचल नहीं करते। एक हिन्दू विधवा आश्रम

बननेसे, विधवाएं धर्ममें लिप्त रहेंगी, नीतिमें दृढ़ रहेंगी, मजूरी कर, अपने पोषण करने वालेका, बदला चुकाएंगी और गर्भपात तथा बाल हत्या करनेका विचार कभी न लायेंगी।

मनुष्य हत्याके सम्बन्धमें मुझे इतना और कह देनेकी आवश्यकता है कि, कई मनुष्योंको स्त्री तथा पुत्रको कोई चीज फेंक कर मारने की आदत होती है। कई एकोंको पेटमें लात मारने की टेव पड़ी रहती है, जिससे मृत्यु होजानेके बहुतसे उदाहरण मिलते हैं। बुद्धिमान् पुरुषको ऐसा उद्धत काम कभी न करना चाहिये। स्त्री तथा पुत्रको सुधारनेके निमित्त युक्ति पूर्वक कहे गये शीतल शब्द, और उन पर अपना प्रेम तथा अपना शुद्ध वर्त्ताव, ये तीन ही बातें बस हैं। मारनेसे तो उल्टे वे धृष्ट बनजाते हैं।

जानवरोंको फेंककर मारने वालोंको भी इससे शिक्षा लेनी चाहिये। बहुतसे मूर्ख अपना अनाज, खाजाने वाली गाय अथवा खुले घरमें घुसी हुई बकरीको ईंट, पत्थर, लकड़ी आदि फेंककर मारते हैं, जिससे कभी तो उस अज्ञान प्राणीका एकाध पांव आंख बेकाम हो जाती है, और कभी उसे प्राणोंसे भी हाथ धोना पड़ता है। समझदार स्त्री पुरुषको यह जङ्गली काम कभी न करना चाहिये।

पांचवां दिवस ।

"सदसद् विवेक बुद्धिकी आज्ञाका उललंघन मत करो ।"
"Have your conscience as your guide."

भाइयो और बहिनो ! तुम सब उत्साह पूर्वक मेरा उपदेश सुनते हो, यह देख कर मुझे आनन्द होता है ; परन्तु मैं तुम्हें अन्ध श्रद्धा की सलाह कभी भी नहीं दे सकता यद्यपि मैं अपने उपदेशमें अपनेसे अधिक समर्थ पुरुषोंके अभिप्रायका समावेश कर, जहाँ तक हो सक्ता है, इस बातका ध्यान रखता हूं कि, वह सर्वमान्य बने, तथापि उसकी भी सत्यता तुम अपनी विचार शक्तिकी कसौटी पर कस देखो और पश्चात् उसे स्वीकार करो सब उपदेशकोंकी प्रायः ऐसी कहनेकी पद्धति है कि, जो हम कहते हैं वही सत्य है' । फिर झूठा कौन रहा ? परन्तु मैं अपनेमें और दूसरोंमें ऐसी अन्ध श्रद्धा रखने की सलाह नहीं दे सकता । जो कोई उपदेश अथवा आदेश सुनो उसको न्यायकी तराजूमें तौल कर देखो और पीछे उसको स्वीकार तथा तिरस्कार जैसा हो वैसा—करो ।

मैंने तुमको यह सिद्ध कर बतला दिया है कि प्राणीहिंसासे मरने वाले प्राणीका, हिंसक मनुष्य की नीति, शरीर और आत्मा का, वैसे ही सब देशका अहित होता है, तौभी इस विषय पर बहुत सा कहना शेष है।

जिस कीड़ेका पैर तथा मक्खी का पङ्ख बनानेमें, मनुष्य जातिका बुद्धिमानसे बुद्धिमान प्राणी भी समर्थ नहीं है, उस कीड़े तथा मक्खीको मारनेका साहस मनुष्यकी, यह क्या कम मूर्खता है? छोटेसे छोटे प्राणी पर भी सुख-दुःखका प्रभाव पड़ता है। और प्राण तो उनका कीमती खजाना है, जिसको अपने पाससे लेनेकी वह कभी अनुमति ही नहीं दे सक्ता। इतना होने पर भी मनुष्य उन बेचारोंके प्राण विना उनकी अनुमतिके छीन लेने हैं, इससे क्या वे एक भारी चोरी नहीं करते?

थोड़े समय से सभ्य देशके विद्वान् लोग गूंगे प्राणियों पर परीक्षा करके, नवीन शोध—खोज-करने लगे हैं। परीक्षा भी कैसी विचित्र! कैसी क्रूर! कैसी त्रास दायक! अपने बचावके लिये कोई भी वकालत—जिरह अथवा युद्ध करनेमें अशक्य प्राणियोंका गला घोंट कर, उनके शरीरके जुदे जुदे अवयव काट कर, सेंककर, भूंज कर, ऐसे ही और हजारों प्रकारका रूपान्तर कर उन क्रियाओंसे क्या परिणाम होता है सो जांचते हैं; और उन परिणामों परसे मनुष्य जातिके रोगोंके लिये, औषधि आदि की शोध प्राप्त करनेका दावा करते हैं। यह ख्याल कितना बेसमझीका है सो प्रसिद्ध सर्जन प्रो० लोसनटैटके

शब्दोंमें कहनेसे अधिक वज़नदार समझा जायगा। वे कहते हैं कि, "जीवित प्राणियों पर काट कूट करना यह जङ्गली ज़माने की निशानी है। डाकृरको इससे कुछ भी सहायता नहीं मिलती; बल्कि कई बार तो उसे कुराह पर भटक जाना पड़ता है।" दूसरे डाकृर सर चार्ल्स बेल लिखते हैं कि, "इस विभागसे कभी कोई शोध नहीं हुई। वैद्यक शास्त्रके सच्चे विचारोंके बदले इससे तो उलटी भयंकर भूलें होती गई हैं।"

लार्ड शफ्टबरी इस घातकी कार्यको "एक धिक्कारने योग्य पाप" कहते हैं। झुकी लिष्टमें लिखा है कि "यह कार्य परम कृपालु प्रभुकी दृष्टिमें सब पापोंमें नीच तथा बड़ा पाप है।"

इतनी बात आनन्द दायक है कि कई दयालु नर इस जुल्मको–पापको-देखकर, 'त्राहि, त्राहि!" कह कर ही नहीं बैठ रहते, पर उनने 'एन्टी विवी सेकशन सोसाइटियां, (परीक्षाके लिये होते हुए पशुवधको रोकने वाली मण्डलियाँ) स्थापित की हैं; तथा मन, वचन और काय तीनोंसे असंख्य निरपराधी प्राणियों को बचानेके लिये कमर कसी है। श्रीमन्तोंको ऐसे कार्योंमें सर्वदा सहायता देनेके लिये आगे बढ़ना चाहिये।

हिंसा रोकनेका प्रयत्न करने वाले दूसरे दयालु पुरुष भी बहुत देखनेमें आते हैं। शाक भाजी पर निर्वाह करते आने वाले, अपने—हिन्दुस्तानी भाई मांसाहार की ओर अरुचि प्रगट करें, इसमें कोई नवीनता नहीं है, परन्तु यूरोप और अमेरिका वासी जो बहुत कालसे मांस खाते आए हैं, (वहांके विद्वान्

लोग—ऐसे वैसे भी नहीं किन्तु प्रोफेसर और सर्जन लोग)—मांसाहार स्वयम् त्याग कर, तथा दूसरोंको त्याग करानेके लिये सर्व साधारणमें भाषण द्वारा तथा छोटे छोटे ट्रैक्टों द्वारा पुकार मचा रहे हैं। उन नररत्नोंने वेजीटेरिअन सुसाइटी (वनस्पत्याहारी मंडली) स्थापित की हैं। वे शाक भोजन बनानेमें अभी नवसिख हैं इससे बिलकुल सादी वस्तुएं बना कर खाने हीमें, अत्यन्त आनन्द मानते हैं।

आक्सफर्ड यूनीवर्सिटीके सी. एच. कालिंस एम. ए., एक इश्तिहारमें लिखते हैं कि, "मांसाहार त्याग कर, वनस्पत्याहारी बननेके सम्बन्धमें मेरा प्रथम विचार किसीके कहनेसे नहीं, किन्तु अन्तः करणसे आपही आप स्फुरित हुआ था। मनुष्य जो अपने अन्तःकरणकी गुप्त आवाजकी ओर, कान देना सीखे तो वह उसमेंसे अवश्य एक बहुमूल्य खजाना प्राप्त कर सके। मेरा वातका रोग पैतृक है और मेरे वंशमें पीढ़ी दर पीढ़ीसे चला आ रहा है। छः वर्षसे ऊपर हुए, कि मैं उस रोगसे मर रहा था। इतनेमें मदिरा तथा मांसका उपयोग बन्द करनेकी मुझे स्वाभाविक प्रेरणा हुई और मैंने साधना आरम्भ कर दी। बहुत अधिक क्या कहूं, मुझे पहिचानने वाले सब एक स्वरसे कहते हैं, कि आज छः बरस बीत चुके हैं मैं अब मजबूत काठीवाला, शान्तचित्त, शीघ्रगामी, शुद्धनीति वाला और निरोगी मनुष्य हूं। इस प्रकारकी बातें विद्वान् और दूसरे स्वानुभवसे विश्वास दिला सकने वाले पुरुष ऐसी सत्य घटनाओंको छोटी छोटी

पुस्तकों तथा मासिक पत्रों द्वारा सारे जगतमें फैलाते हैं। हम लोग उन्हें इस कार्यके निमित्त जितना धन्यवाद दें, उतना थोड़ा है। शक्तिशाली पुरुष जितना द्रव्य उनको इस प्रयत्नके लिये सहायताके रूपमें दें; उतना वह उत्तम मार्गमें लगाया हुआ समझा जायगा।

जैन तथा दूसरे हिन्दू भाई, कसाई खानेसे, प्राणियोंको बचानेके निमित्त बहुत द्रव्य खर्च करते है, यह आनन्दकी बात है। परन्तु साथही साथ उस द्रव्यका चतुर्थांश ही ऐसी पुस्तकोंमें, (जिनमें इस लोक तथा परलोकमें हिंसासे भोगने वाले दुःखोंका चित्र वर्णन हो, रचा कर सर्वसाधारणमें उनकी हज़ारों प्रतियां) बिना मूल्य वितरण करानेमें खर्च किया जाय तो बहुतही उत्तम परिणाम हो। मानलो कि, कोई श्रीमान् १००० प्रतियां मुफ्त बांटता है। उनमेंसे एकही मनुष्य हिंसा का त्याग करता है; इसको एकही मनुष्य न समझना चाहिये; किन्तु यह एक दूसरे अनेकोंसे स्वानुभव कह कर उन्हें कुराह जानेसे रोकेगा; और उन प्रत्येकसे जीवन पर्यन्त जो असंख्य जीवोंका वध होता, उनका बचाव होगा। स्मरण रक्खो कि, प्राणियों पर मेरा पक्षपात, केवल दयाहीके लिये नहीं है किन्तु पूर्व कथित कारणोंके अनुसार, स्वार्थ उसी प्रकार परमार्थ दोनोंके लिये है। मनुष्य अपनी जन्मगांठ अथवा कोई दूसरे अवसर के समय या किसी अकस्मात् लाभके प्रसंग पर, इस ओर ऐसे ही दूसरे खातोंमें जिनके विषयमें मैं आगे कहूंगा, अपनी इच्छा-

नुसार सहायता देनेका निश्चय कर लें; तो कितनी उत्तम बात हो ?

मैं तुम्हें एक हास्योत्पादक विचार के द्वारा होती हुई हिंसाके विषयमें बतलाऊंगा। यदि कुत्ते पागल होंगे तो काट कर मनुष्योंको प्राणान्त करेंगे, ऐसे विचारसे, अच्छी दशावाले कुत्तोंको बस्ती भरमें, विष मिश्रित खुराक खिलाके अथवा सुंघा के, उनके प्राण लिये जाते हैं। सच पूछो तो यह काम वैसाही है, जैसा कि किसी बालकके माता पिता यह समझ कर कि, बड़ा होने पर, यह लड़का स्त्रीके वशमें होकर, हमको सतावेगा, उसे बालापनमेंही मार डालें। आश्चर्यकी बात है कि जिस सभ्य राज्यमें, घाव लगे हुए बैलको जोतनेकी, तथा किसी जानवर पर, उसकी शक्तिसे अधिक बोझ लादनेकी मनाई है, उसी राज्यमें ऐसे निर्दोष स्वास्थ कुत्ते, वस्तीके बीचमें, दयालु लोगोंकी कँपकँपी पर कुछ ध्यान न देकर मारे जाते हैं। कुत्ता एक इमानदार सेवक, पहरेदार—द्वारपाल तथा अनुचरका कार्य करनेवाला प्रख्यात प्राणी है। तिस पर भी इसकी ओर ऐसा निर्दयताका बर्ताव किया जाय तो वह निःसन्देह तिरस्कारयुक और आन्दोलन किये जाने योग्य काम है।

अच्छी दशा वाला कुत्ता यदि काटने लगे तो कई वार, ऐसा समझ कर कि वह पागल हो गया है, मार डाला जाता है। और कई वार ऐसा सुना गया है कि, किसीको अच्छे कुत्तेने ही काटा और वह पागल कुत्तेसे काटे जानेकी दहशत खाकर,

घबरा कर मर गया है। इसलिये, यहां पर, अच्छे कुत्तोंके तथा मनुष्योंके बचावके लिये, पागल कुत्तेके चिन्ह जो कि 'ब्राउन इंस्टिट्यूशन' नामकी मण्डलीने प्रकाशित किये हैं, सुनाता हूं :—

"पागलपनकी बीमारी कुत्तेको किसी भी समय हो जाती है; परन्तु उसके पहले उसकी चाल ढाल बदलने लगती है। वह शोकातुर, निराश और चिड़चिडा बन जाता है। दूसरे कुत्तोंसे दूर रहना पसन्द करता है, जो कोई मिले उसे काटता है ; हवामें लहरें लेता है, गलेमें कुछ अटका हो, इस प्रकार पैरसे खुजलाता है ; मुंहमें से बहुत सी राल टपकती है ; आवाजमें फेरफार हो जाता है, दूसरे कुत्ते उससे डर कर दूर रहते हैं ; कभी कभी नीचेका जबड़ा अशक्त हो जाता है ; जिससे वह काट नहीं सकता।"

अब मैं दो तीन प्रकार की हिंसाके विषयमें, जिससे दूर रहना प्रत्येक मनुष्य की शक्तिके भीतर है, बतला कर, आजके भाषणको समाप्त करूंगा।

तुम अपने बालकों की टोपियोंमें जो सुन्दर पंखे लगाते हो; और जो पंखे लगी हुई, तैय्यार टोपियां खरीदते हो, उन पंखोंके लिये पक्षी पानीसे भरी हुई बन्दूकसे अधमरे किये जाते हैं, और पश्चात् उनके मरते मरते तक, बहुत तेजीसे उनके पंखे खींच २ कर, वे अलग फेंक दिये जाते हैं। इस समय वे बेचारे दीन, निर्दोष पक्षी, बिलकुल तुम्हारे छोटे बालकके समान बहुत आर्त्त-स्वर रुदन करते हैं। अरे ! ऐसी शोभा बिना तुम्हारा क्या

बिगड़ता है? आजकल इससे भी सुन्दर कपड़े की तथा बढ़िया काम की हुई, फुन्दना लगी हुई टोपियां, जिन पर उत्तमोत्तम ज़रदोजी काम किया रहता है, उनके प्राप्त होते हुए भी, हिंसा करनेसे मिली हुई चीजें खरीद कर, तुम्हें ऐसे पापी धन्धेको उत्तेजन क्यों देना चाहिये ?

ढाल कछवे की हड्डीसे बनाई जाती है। रेशम असंख्य कीड़ोंको गरम पानीमें मार कर, बनाया जाता है। चमर, चमरी गाय (सुरत गौ) और कस्तूरी, कस्तुरिया मृग की हिंसासे प्राप्त किये गये पदार्थ हैं। हाथी दांतके लिये हाथियोंको भी ऐसा ही कष्ट सहन करना पड़ता है। पुस्तकों पर तुम जो पुठ्ठा चढ़ाते हो, उनके लिये हल्के मूल्यवाले जानवरों की हत्या की जाती है। अब कहो विचारशील भाइयो तथा बहनो! क्या इन वस्तुओं विना तुम्हारा काम चलता ही नहीं है? अपने शौकके लिये क्या तुम्हें अपने ही समान असंख्य प्राणियोंका बहुमूल्यसे बहुमूल्य कोष जो प्राण है उसे छीननेमें और छीनने वालोंको उत्तेजन देनेमें लज्जित नहीं होना चाहिये ?

दीपक खुला रख कर, उसमें सैकड़ों पतंगे इत्यादि होम देना, यह पाप अपनी असावधानीका फल है। जिनमें ज़रा भी दयाका अंश होगा, वे तो सर्वदा, कांचके बड़े फानूसमें ही दीपक रक्खेंगे। जो गरीब होगा, तो दीपकके आसपास बारीक कपड़ा ही लगा देगा। यह केवल सावधानीका ही काम है, इसमें कुछ अधिक खर्च और परिश्रम की आवश्यकता नहीं है।

कई लोग दूसरोंको हिंसाका तो उपदेश देते हैं पर स्वतः हिंसाके साधन जुटाते हैं, वे व्यर्थ एक भारी अपराध अपने सिर पर लेते हैं। इस निरर्थक दोषसे दूर रहना प्रत्येक विचार शील पुरुषके हाथमें ही है।

हरे बन काटना, जङ्गल जलवाना तथा इसी प्रकारके और महापापी धन्धोंसे बुद्धिमान् पुरुषोंको दूर रहना चाहिये। जीवन निर्वाहके लिये हजारों धन्धे हैं। कई नीच पुरुष, घर, दुकान तथा मिलोंका असली कीमतसे अधिकमें बीमा करा कर, उन्हें जला देते हैं, और बीमा वालेसे एक एक पैसा वसूल कर लेते हैं। ऐसे लोग हिंसाके पापके अतिरिक्त विश्वासघातके भी अपराधी बनते हैं।*



* दिगम्बर जैन तथा खोजा और बहोरा लोग दांतकी चूडी उपयोगमें नहीं लाते, यह प्रशंसनीय है। सोना, चांदी, कांच इत्यादि सुन्दर पदार्थोंको छोड़ कर हिन्दू दांतकी चूडियोंपर क्यों मर रहे हैं सो समझमें नहीं आता।

छठवां दिवस ।

—※०※—

दूसरा का स्वत्व-हक मत डुबाओ ।

Do unto others as you would be done by."

भाइयो तथा बहिनो, 'आत्मवत् सर्व भूतानि' अर्थात् 'सर्व प्राणियोंको अपने ही समान समझना' इस ज्ञान की सील—

छाप—तुम्हारे हृदय पर लगानेके लिये आज कई दिनोंसे, मैं अपने अल्प ज्ञानका उपयोग कर रहा हूं, परन्तु यह विषय इतना विस्तृत है कि इसपर जितना कहा जाय उतना ही थोडा है। यह ऐसा पवित्र और सर्व जीवोंको आनन्ददायक विषय है कि, इसके सम्बन्धमें बोलनेका जितना आलस्य करूं उतना ही अपराधी ठहरूंगा और उतना ही मैं अपने मनका आनन्द खोऊंगा। प्रत्येक धर्मके उपदेशकोंको यदि किसी उपदेशके अर्थ अपनी पूर्ण शक्ति तथा ज्ञानका उपयोग करना चाहिये तो वह उपदेश सिवाय इसके कि, "आत्मवत् सर्व भूतानि पश्येत, अथवा 'Do unto others as you would be done by" दूसरा कोई नहीं है।

तुम लोगोंमेंसे बहुतेरे यह समझते होंगे कि, हमलोग मनुष्य हत्या, जो महाभयंकर पाप है उसे नहीं करते, परन्तु उनको ज़रा भी ध्यान नहीं होता कि, मनुष्यके उचित स्वत्व छीन कर, उसे महाकष्ट देनेका अपराध वे एकाध बार नहीं किन्तु अनेक बार करते हैं।

कन्या विक्रय करने वाला मनुष्य अपनी कन्याका स्वत्व—हक–डुबाता है उसको कौन 'निषेध' करता है! कन्याको अपने योग्य, शारीरिक तथा मानसिक सम्पत्तिवाला पति प्राप्त करनेका हक़ है, क्योंकि उसके सहवास तथा आधीनतामें, उसे सारा जीवन व्यतीत करना है। तब, एक पिता अपनी पुत्रीको, अपने लोभके लिये, अधिकसे अधिक कीमत देने वाले—बोली लगाने वाले—बुड्ढेको, तथा दुराचारीको बेचता है (अथवा झूठी कुलीनतामें फूलकर किसी मूर्ख बालकके हाथमें सौंपता है) तब वह बेचारी दुःखसे झुलस झुलस कर, देह त्यागती है तथा अपघात करती है, अथवा दुराचरण सीखती है। जिसका परिणाम यह होता है कि उसे गर्भपात और बालहत्याके त्रासदायक पाप तक करने पड़ते हैं, और कई भवोंके चक्कर काटनेके पश्चात् कठिनाईसे प्राप्त किया हुआ, यह अमूल्य मनुष्यजन्म, वह बेचारी मुफ्तमें खो बैठती है। इस सबमें कारणभूत उसका स्वार्थी और मूर्ख पिता ही है, जो कि अपनी पुत्रीका योग्य स्वत्व डुबाते हुए ज़रा भी विचार नहीं करता। "न कन्यायाः शुल्कं गृहणीयात्" अर्थात् "कन्याका पैसा न ग्रहण करना चाहिये"

इत्यादि बहुतसे निषेधवाक्य धर्मपुस्तकोंमें इस दुष्ट कार्यको रोकनेके लिये पाये जाते हैं ; परन्तु जिसको अपनी ही पुत्री पर लेश मात्र भी दया नहीं है, उस पर शास्त्रवचन सुननेसे ही क्या असर होने वाला है ! वे तो स्वयम् ही यह काम करते हैं और आप ही आप उसका बुरा फल थोड़े समयमें, भोगते हैं, और शिक्षा ग्रहण करते हैं, कारण कि, यह नोक कटा कर प्राप्त किया गया पैसा, घरमें आनेके थोड़े ही समय पश्चात्, एक शत्रुके समान घरकी लक्ष्मी, कोठीका धान, तथा फटे पुराने चिथड़े तक साथमें लेकर, खिसक जाता है ; और नाक कटी सो व्याजमें ! लड़कीने आहें सहीं, सो मांगनेमें ! तथा आत्मक्लेश हुआ, सो नफेमें !

पुत्र अथवा पुत्री को संसार का भार उठाने की शक्ति प्राप्त होने के पूर्व ही, उन पर संसार रथ शकटकी धुरी रख देना उनका व्याह कर देना- यह भी उनके हक डुबाने ही के समान काम हैं। दिन बदिन धन्धे रोजगारके मुकाबिले की बढ़ती हुई चिन्ताके कारण, शरीर और मस्तिष्क दोनों की पुष्टि न होनेसे, दुनियांके मुकाबिले में खड़े होनेकी बहुत कमी पड़तो है, सो कौन नहीं जानता ? बेचारा १२-१४ वर्ष की उम्र का बालक, अभी जिस के अवयव भी पूर्ण रीतिसे नहीं भरे, जिसकी विचारशक्ति भी अभी पूर्णतया विकसित नहीं हुई, जो अभी अभ्यास करने के योग्य है, उस को कसाई के समान मा बाप, पति बना देते हैं और उसीमें अपना सुख मानते हैं। पति-पत्नी के कर्त्तव्य समझने के

पूर्व, पुत्र को पति तथा पुत्री को पत्नी बनाने का हक्क किसी भी मा बाप को नहीं है। या तो बड़प्पन के कारण, अथवा अधिक लाडके कारण, या आर्थिक लोभसे चाहे जिस कारणसे हो, बाल लग्न करने वाले मा बाप अपने आश्रित बालकों का विश्वासघात करने वाले ही समझे जाते हैं, तथा उनका हक्क डुबाने वाले और जरा और आगे बढ़कर कहें तो उनके हिंसक भी कहे जाते हैं। अंग्रेज तथा दूसरे बुद्धिमान लोग कहते हैं कि "सुन्दरी सोहे समर्थको, औरनको दुःख धाम" सो क्या झूठ है ?

स्त्री पुत्रादि को गुलाम के समान समझना उनको योग्य स्वतंत्रता न देना बिलकुल ही अपनी संकीर्ण बुद्धि का गुलाम बना देना, यह भी उनके हक्क डुबाने का कार्य है। मेरा कहना यह नहीं है कि, स्त्रियोंको पुरुषों ही के समान पूर्ण स्वतंत्रता दो, परन्तु स्त्री को बोलने की, अपना स्वतंत्र मत जाहिर करने की, सखी मंडल में चलने फिरने की, ईच्छानुसार धर्म पालने की स्वतंत्रता न देना तथा पुत्र को बालमित्रोंके साथ खेलनेसे रोकना यह एक धिक्कारने योग्य निर्दयता है। इससे बहुत सी स्त्रियों की मति मुर्झाई हुई तथा बहुत से लड़कों की बुद्धि जड़ पड़ती हुई अपने देखने में आती है। स्त्री तथा पुत्रके कर्त्तव्य जाननेके पूर्व पति अथवा पिता बनने वालेकी अन्तमें यही गति होती है। सब लोग जीवनमें सुख की अभिलाषा रखते हैं;एक पक्षी भी तार जड़ित सोनेके पिंजरे में रहकर फल फूल खाता हुआ भी अप्रसन्न रहता है।

दूसरोंका स्वत्व डुबानेके और भी कई मार्ग हैं। जो लोग झूठे दस्तावेज बनाते हैं, झूठी साक्षी देते हैं, घूस लेकर अपने स्वामीको हानि पहुंचाते हैं, किसी की प्रगट अथवा गुप्त चोरी करते हैं, वे सब विपरीतपक्षके स्वत्वों पर बलात्कार करने के दोषी बनते हैं अमुक कार्यको पाप कहना कि नहीं, यह जाननेके लिये " मैं जैसा व्यवहार दूसरेके साथ करता हूं, यदि वैसा ही व्यवहार दूसरा मेरे साथ करे तो मुझे कैसा लगे !" यह प्रश्न बस है। उपर्युक्त प्रत्येक घटना पर विचार करनेसे मालूम होगा कि, ऐसा प्रत्येक व्यवहार, विपक्षीका स्वत्व नष्ट कर उसे दुःखी करता है, अतएव ये सब जुदे जुदे प्रकार की हिंसाएं हैं।

किसी मनुष्यका गुप्त भेद प्रगट करना, निंदा करना, तथा मिथ्या दोषारोपण करना, इनमें भी उसके स्वत्व नष्ट करनेका पाप गर्भित है। मनुष्य अपना महत्व बढ़ाने तथा दूसरेका कम करनेके लिये यह राह निकालता है। इससे विपक्षी अपमानित होता है, कभी अपना धन्धा खो बैठता है और कभी तो आत्माहत्या तक कर डालता है। ऐसे प्रपंचीको, शास्त्रोंमें, महाघोर कुकर्म करने वाला कहा है। वह उन कुकर्मों के कारण गर्भमें आनेसे आड़ा हो जाता है, और काटा जाता है।

रत्नमालामें कहा है कि :—

मम्मंन उल्ल विज्जइ, कस्स, वि आलंना दिज्ज इक यावि
काविन उक्को सिज्जइ, सजाम मग्गो इमो दुग्गो ;

"किसीसे मार्मिक वचन नहीं कहना, किसी पर दोषारोपण न करना, किसी पर क्रोध न करना, ऐसा कठिन मार्ग सज्जनोंका है।"

सातवां दिवस ।

विश्वासघाती तथा कृतघ्नी मत बनो

मेरुनगस्य न भारा न भारा सप्त सागराः ।
कृतघ्नस्य महाभारा, महाभारा विश्वास घातकाः ॥

"मेरु पर्वतका भार नहीं है, उसी प्रकार सात सागरोंका भी भार नहीं मालूम पड़ता; (पृथ्वीको) केवल कृतघ्नी और विश्वासघाती मनुष्योंका ही महाभार है।"

"*विश्वासघाती महापापी*" यह तो अपनी घरेलू कहावत होगई है; तथापि यह महापातक भी घरेलू हो गया हुआ देखनेमें आता है। यदि मनुष्य सर्वदा अपनी आत्मासे एक मात्र इतना ही पूछे कि, "ऐसे व्यवहारसे उसे दुःख होता है कि नहीं ?" तो कदाचित् वह दूसरेसे कभी ऐसा व्यवहार न करे।

हम पर विश्वास रखके यदि कोई मनुष्य हमसे कहे कि "मेरा इतना काम तुम कर देना," मान लो विश्वासके कारण वह मनुष्य हमारी चौकसी नहीं करता, परन्तु इतने पर भी जो हम

उसे ठगें तो कितना भारी अन्याय हो? और जब उसे यह मालूम हो कि वह अपने विश्वाससे ठगा गया तो उसकी आत्माको कितना क्लेश होगा? विश्वासघाती मनुष्य सज्जनों से द्रोह करता है; क्योंकि ऐसे विश्वासघाती नरोंसे ठगाए गये मनुष्य, सज्जनोंका भी विश्वास करनेमें हिचकते हैं, और विना विश्वासके तो कोई भी काम चलना मुश्किल है, तथा हमें और विपक्षी दोनोंको बहुत कष्ट सहन करना पड़ता है। इसके मूल कारण विश्वासघाती मनुष्य ही हैं। यह देखते हुए, शास्त्रकारोंके वचन बिलकुल ठीक ही भासते हैं कि, पृथ्वीको जितना बोझ सात सागर और मेरु पर्वतका नहीं है, उतना विश्वासघाती मनुष्योंका है।

श्रावक लोग कपालमें केसरका लम्बा तिलक लगा कर, तथा वैष्णव और शैव इत्यादि बड़ा त्रिपुंड्र खींचकर दुकान पर बैठते हैं, परन्तु जब ग्राहक आकर कहता है कि, "भाई! इस धोती जोड़ेका वाजबी मूल्य क्या है?" तब वह रुपया आना चढ़ा कर नहीं पर डेवढ़ा दूना भाव बतलाता है। ग्राहक कहता है कि—"एक बात कहना। मैं तुम्हारे विश्वास पर हूं। तुम मेरे सगे ही हो, इसलिये तुम्हारी दूकान पर आया हूं" तब पूर्वोक्त व्यापारी धर्मकी शपथ खाते खाते (धिक्कार है ऐसे धर्म पुछल्लों पर!)—सगे हीकी शपथ खाते खाते दूना दाम लगाता हैं; उत्तम माल बता कर, हल्का देता है। तौल अथवा नाप में भी दगा करता है। फिर सांझ होते ही, देवालय, मठ तथा

मन्दिरमें दौड़ा जाता है और बड़ा धार्मिक बनता है। क्या यही धर्मका लक्षण है? विश्वासघाती लोग धर्मके योग्य ही नहीं हैं। जो व्यवहारिक धर्म नहीं पाल सक्ते वे आत्मिक धर्मके अधिकारी, किस प्रकारसे हो सक्ते हैं?

यदि तुम्हारे पास कोई विधवा, बालक, अथवा अन्य जन अपना द्रव्य या और कोई वस्तु अमानत पर अथवा ब्याज पर, रख जाय और तुम उसे हड़प कर, प्रतिपक्षीको कुढ़ाओ, तो यह भी बड़ा विश्वासघात है। तुम्हारा सेठ अथवा मालिक, तुम्हें वेतन देकर कोई कार्य सुपुर्द करे और तुम सन्तोष दायक काम न करो और कहो कि, "मैं क्या करूं? यह काम ही ऐसा है कि, मुझसे नहीं बनता, मैंने तो मिहनतमें कुछ कसर नहीं रखी," यह भी विश्वासघात है।

आजके उपदेशमें, मैंने विश्वासघात और कृतघ्नता, ये दो विषय हाथमें लिये हैं। कृतघ्नताका पाप करने वाले, विश्वास घातका पाप करने वाले लोगोंकी अपेक्षा संख्यामें कम हैं सही, परन्तु वह पाप उससे कुछ कम भयंकर नहीं है। कोई मनुष्य अथवा अन्य प्राणी अपनी कुछ भी सेवा करे, उसके बदलेमें अपने उसकी जितनी सेवा कर सकें उतनी थोड़ी है। इस प्रकार उपकारके बदले, उपकार करनेमें कोई विशेषता नहीं है, सत्पुरुष तो, अपनी बुराई करनेवालेकी भी भलाई करनेको तत्पर रहते हैं। परन्तु जो उपकार करनेवालेका भी अपकार और द्रोह करता है, उसको क्या विशेषण लगाया जाय सो

बुद्धिमान लोग भी नहीं ढूंढ सके हैं। मैं तो उनके लिये इतना कहूंगा कि वे पुरुष नहीं हे परंतु मनुष्यके रूपमें शैतान—दैत्य हैं।

जिन माता पिताओंने* प्रत्येक संकट सह कर, पुत्र—पुत्रीका पालन किया, जिस गुरुने अत्यन्त परिश्रम कर, शिष्योंको विद्वान् तथा सुनीतिवान् बनाया, जिस जातिने अपने मनुष्यों की स्त्री—पुत्रादिकको सामाजिक सुविधाओंसे सुखी किया, जिस राजाने अपनी प्रजाका धन—माल— कुटुम्बकी, शत्रुओंसे रक्षा की, उनका मा बाप, उस गुरु, उस जाति और उस राजाका अहित चाहने वाला अथवा अहित करनेवाला पापी-प्राणी, इस पृथ्वीको निःसन्देह सप्तसागरसे भी अधिक भार रूप है, ऐसा कहनेमें ज़राभी अतिशयोक्ति नहीं है।

अभिमान की ऐंठ में आकर, कई नीच पुरुष जाति बिरादरी में, विरोध उत्पन्न कर देते हैं—दल—तड़ बनवा देते हैं तथा क्लेश

---

* पुत्र मा बापका अविनय करता है, उसमे कई अंशोंमें, मा बाप ही का दोष है। एक तो मा बापोंको उनके मा बापोंसे कुव्यवहार करते हुए, देख कर, वे वैसाही सीखते हैं, पुत्रों पर, योग तथा अयोग्य विषयपर क्रोधित होकर, तथा अन्य प्रकारसे उनकी स्वतन्त्रता बिलकुल अपहरण कर लेनेका व्यर्थ प्रयत्न करनेसे, वे जब युवावस्था प्राप्त करते हैं, तब वे अपनी स्वतन्त्रताका सीमा रहित उपयोग करनेको तैयार होते हैं और मां बापसे कुव्यवहार करते हैं; वैसे ही कई पुत्रोंको उनके बालापनसे ही "आज कलके बच्चोंको माता पिताकी सेवा लकड़ीसे नहीं करना चाहिये," इत्यादि शब्द सुननेकी आदतके कारण, यह निषेध, आदेशके रूपमें परिणत हो जाता है और स्वाभाविक रीतिसे ही बालक अविनय सीखते हैं।

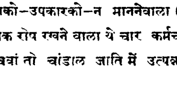
का बीजारोपण करते हैं और उसका सिञ्चन करते हैं, ऐसे लोग भी जातिके द्रोही है। इस विरोध—कई परसें—होनेका परिणाम यह होता है, कि मनुष्योंकी नीतिभ्रष्ट हो जाती है, शान्ति—सुलह—भंग होनेसे जन संख्या का विनाश होता है, धर्म का लोप होता है, और व्यवहार भ्रष्ट हो जाता है। इस सब का दोष उपर्युक्त नीच पुरुष के सिर पर है, जो कि स्वार्थस्वप्न में लिप्त हो कर, दूसरों का और साथ ही साथ बेसमझे अपना भी महा अहित करता है। सज्जन प्रत्येक युक्ति से दलों को एकत्र करते हैं, और सुलहकी वृद्धि करनेके लिये, स्वयम् कैसी भी हानि क्यों न हो सहन करते हैं। प्रत्येक जातिमें जुदे जुदे दल या वर्ग देखने में आते हैं, ये सब केवल अपने वर्ग में सुलह की वृद्धि करने, अपना रक्षण करने, दूसरे वर्णों को अपना उदाहरण दिखला कर, उत्तम कार्यों के लिये उत्साहित करने, तथा बन सके तो उसमें अपनी सहायता करने के लिये ही है,—एक जाति—वर्ण—में भी अधिक दल बना कर, उसी झाड़का विनाश उसी झाड़ की डाली से करनेके लिये जाति तथा वर्ण स्थापित नहीं किये गये हैं।

कृतघ्नता का एक दूसरा हृदय विदारक उदाहरण मैं तुमको देता हूं। इतिहास प्रसिद्ध सम्बत् ५६ के दुष्काल के समय, तुमने देखा होगा कि, बहुत लोगोंने अपने ढोर बेचे तथा पिंजरापोल गोशाला में दे डाले थे। जब तक ये ढोर, तुमको दूध देते रहे या सवारी के काम आते रहे अथवा हल में जुतते रहे तब

तक तो तुमने उन्हें खिलाया, परन्तु ज्योंही वे खुराक न मिलने के कारण उपरोक्त कार्य न कर सके, या उनकी आवश्यकता न रही अथवा उनका पोषण करने में, मालिक को अधिक खर्च पड़ने लगा त्योंही उन बेचारों को चाहे जहां बेच डाला तथा पिंजरापोलमें डाल दिया यह कैसी नीच कृतघ्नता कितनी निंद्य स्वार्थपरायणता है। अरे स्वार्थी मनुष्यों! यदि तुम्हारी वृद्धा अवस्था में तुम्हारा पुत्र तुम्हें सतावे ओर एक झोपड़ी में डालकर चिल्लाने दे, तो बतलाओ कि, परम कृपालु से कृपा मांगनेका तुम को क्या हक़ है?

कूट साक्षी सुहृन्द्रोही कृतघ्नो दीर्घरोषण।
चत्वारः कर्म चंडालाः पंचमो जाति संभवः॥

झूठी साक्षी देने वाला, मित्रों के साथ द्रोह करने वाला, किये गये गुणको–उपकारको–न माननेवाला (कृतघ्नी) और बहुत समय तक रोप रखने वाला ये चार कर्मचांडाल कहलाते हैं, और पांचवां तो चांडाल जाति में उत्पन्न होनेसे जाति चांडाल है।



आठवां दिवस।

आहार के विषयमें असावधान मत होओ।

"जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन" कहावत।

भाइयो तथा बहिनो, आज मैं तुम्हारी शरीर सम्पत्ति के रक्षण के विषयमें कई बातें कहूंगा। इस विषय पर, बोलनेके लिये आहार, जल, मलमूत्र तथा घरकी व्यवस्था आदि विषयों पर पृथक पृथक विवेचन करने की आवश्यकता है। अच्छा, तो पहिले आहार ही के विषयमें विवेचन करें।

जिस मुख्य वस्तु का, सब शास्त्रकार तथा डाक्टर, और तत्त्वज्ञानी आहारके समान उपयोग करनेमें मना करते हैं उस वस्तु अर्थात मांसाहारके सम्बन्ध में तो मैं तुमसे यथेष्ट कह चुका हूं; परन्तु उसके अतिरिक्त और भी कई वस्तुएं हैं, जिनका निषेध आहार करने के लिये शास्त्रकारों तथा—बुद्धिमान् पुरुषों ने किया है।

ऐसी वस्तुओं में पहला नंबर मद्य का है। मद्य बुद्धिमान् को मूर्ख, बलवान को बलहीन और धार्मिक को पापी बना देता

है। मद्य ने ही कई महाराजाओंके राज्य नष्ट किये हैं; मद्यके नशे में, सैकड़ों युद्ध और अगणित वध—खून हुए हैं। शरीर को शिथिल बनानेवाला यह शत्रु, मस्तिष्क और न्याय बुद्धि को भ्रष्ट कर देता है। व्यभिचार मदिरा के शौकीनों का तो पहले नम्बर का मित्र बन जाता है। मदिरापान के लिये, मांस भक्षण के समान सब धर्मों ने निषेध किया है। यहां तक कि मदिरा के विशेष व्यसनी युरोपियन लोग ही, मद्य निषेधक मंडलियां स्थापित कर स्थान स्थान पर उपदेश दिलाते हैं। अब मनुष्य विचार सक्ता है कि मदिरा निःसंदेह एक हानिकारक वस्तु है तिस पर भी खेद की बात है कि यहां मुसलमान पार्सी तथा ईसाई भाइयोंके साथ साथ यह कुटेव उच्च वर्णके के हिन्दू भी देखादेखी सीखने लगे हैं। युवा मित्र! यदि तू शराब के प्याले की मित्रता में आनन्द मानता हो तो समझ ले कि तुम दोनों की मित्रता में विनाशक नामक एक तीसरा मित्र शीघ्र ही आ मिलेगा। ऐ भाग्यहीन बन्धु! इस चमकते हुए तारेंके प्रत्येक परमाणुमें असंख्य शत्रु तुझे फुसला कर तेरे शरीर में प्रवेश करनेके लिये ही छिप रहे हैं इसी लिये कि जिस से वे तेरे अन्दर पड़े पड़े निरंतर अपना भक्ष प्राप्त किया करें। कहा है—

मद्ये मांसे मधुनिच नवनीते वहिष्कृते।
उत्पद्यन्ते विलीयंते सुसूक्ष्म जंतुराशयः॥

"मदिरा" मांस, मधु तथा (मही मेंसे निकाले हुए) मक्खन

में छोटे जन्तुओंका समूह उत्पन्न हो जाता है और नाश को प्राप्त होता है ।

मधुमें मधुमक्खियों द्वारा रखे हुए, असंख्य अंडोंका मधु भक्षण करनेसे नाश होता है इतना ही नहीं किन्तु सैकड़ों मक्षिकाओं द्वारा बड़े परिश्रमसे इकट्ठे किये हुए उनके आहार को हड़प जानेसे मनुष्य भारी चोरी करनेका दोषी ठहरता है ।

बुद्धिमान् पुरुषोंने कई तरकारियां भी खानेको वर्जित की हैं । प्याज, गाजर आदि कन्द मूल और बैंगन इत्यादिमें भी असंख्य सूक्ष्म जीवोंका संहार होता है और इस तुच्छाहारसे बुद्धि भी तुच्छ हो जाती है इसी लिये पुराणमें कहा है कि:—

> यस्तु वृंताक कालिंद मूलकांना च भक्षकः ।
> अंतकाले स मूढात्मा न स्मरिष्यति माम् प्रिये ॥

"जो (मनुष्य) बैंगन, तरबूज, मूला इत्यादि खाता है, वह मूढ़ात्मा बन कर अन्त समय मुझे (प्रभुको) स्मरण नहीं कर सकेगा (अर्थात् उसका चित्त दूसरी वस्तुमें लगा रहनेसे, वह अधोगति पावेगा) ।

मैदा या बहुत दिनोंके रखे हुए आटेमें बहुतसे जन्तु उत्पन्न हो जाते हैं । उसमें शक्कर डालनेसे, ये जीव निकल कर देख भी पड़ते हैं । उसी प्रकार अचारमें भी, असंख्य सूक्ष्म जीवोंकी उत्पत्ति और विनाश हुआ करता है । इससे वह खाने योग्य नहीं है । ताजा आटा उपयोगमें लानेसे शरीरकी बहुत पुष्टि होती है । और जीवोंकी हिंसा भी बचती है । वैसेही अचारभी

अन्य कई प्रकारका तथा स्वादिष्ट बनता है, तो ऐसे महापाप-मय अचार बिना क्या बिगड़ा जाता है?

बहुत लोग जो मांसहारको धिक्कारते हैं, वे 'काडलीवर-आइल' तथा दूसरे प्राणियोंके शरीरसे बनी हुई, पौष्टिक—औषधियोंको खुशीसे खाते हैं। कदाचित् उनमेंसे बहुतसे लोगोंको यह बात न मालूम होगी कि (काड नामकी) मछली का तेलही "काडलिवरआइल" है, इसी प्रकार कई दूसरी पौष्टिक दवाइयां अंडोंसे तथा दूसरे प्राणियोंसे बनाई जाती है। इसलिये ऐसी औषधियोंको कभी उपयोगमें न लाना चाहिये। ताकत बढ़ानेके लिये वनस्पतियोंकी बहुतसी उत्तम औषधियां हैं। धन्य है उस जर्मन डाक्टर श्युफलरको, जिसने सब प्रकारके रोगोंका मूल कारण ढूंढ़ कर, नवीन युक्तिसे रोग का नाश करनेके लिये १२ प्रकारके क्षारकी शोध की है, जिसमें हिंसा नहीं करनी पड़ती, औषधि बहुतही अल्प प्रमाणमें लेनी पड़ती है, मुंह कड़ुवा नहीं होता और दुःख शीघ्र ही दूर होता है; तथा जिन जिन तत्त्वोंकी कमीसे शरीर क्षीण पड़ता जाता है उन तत्वोंकी पूर्त्ति करके, क्षीणताको रोक कर शरीर का विकाश करनेकी सुविधा होती है। इस शोधको 'Biochemistry' अथवा "जीवन रसायन विद्या" कहते हैं। प्रत्येक पुरुषको, उस विद्याके सरल सिद्धान्त सीख कर, स्वयम् वैद्य बनकर, दुःख तथा दोषसे दूर रहनेका—बचनेका—प्रयत्न करना चाहिये।

अभक्ष्य पदार्थके विषयमें बतलानेके पश्चात् अब मैं तुम्हें, कौनसा समय आहारके लिये वर्जित है, सो बतलाऊँगा। कई लोग ऐसा मानते हैं कि केवल जैनशास्त्रोंमें ही रात्रिभोजन का निषेध है, परन्तु ब्राह्मणोंके पद्मपुराणमें भी कहा है कि :—

अस्तं गते दिवानाथे, आपोरुधिरमुच्यते।
अन्न मांससमं प्रोक्तं मार्कंडेन महर्षिणा॥

"मार्कंडेय नामक महर्षिने कहा है कि, सूर्य अस्त होनेके पश्चात् जल रुधिर समान और अन्न मांस समान हो जाता है। उसी प्रकार इङ्गलेण्डमें नार्मन राजाओंके समयमें, अर्थात् ११ वीं सदीमें, संध्या समयके पूर्व ब्यालू करनेका नियम था। उस समय की बनी हुई एक कहावतका ऐसा अर्थ है कि:—

पांच बजे उठ, नौ पर भोजन, ब्यालू कर सन्ध्यासे पूर्व।
नौ पर सोओ, तुम पाओगे, निन्यानवे की आयु अपूर्व॥

परन्तु मैं तुम्हें इन पुरुषोंके वचनों मात्र पर ही अन्धश्रद्धा रखने की सलाह नहीं देता। धार्मिक अथवा व्यवहारिक सिद्धान्त सदैव कई सत्य कारणों पर ही स्थिर किये जाते हैं। यही बातरात्रि भोजनके विषयमें भी जानो।

आयुर्वेद शास्त्रमें यह दिया है:—

हृन्नाभी पद्म संकोचश्चण्डरो चिर पायतः।
अतोनक्तं न भोक्तव्यम् सूक्ष्म जीवादनादपि॥

"इस शरीरमें दो पद्म हैं हृदय पद्म और नाभि पद्म। वे सूर्यास्त होते ही संकुचित हो जाते हैं, उसके पश्चात् भोजन

करनेसे शरीरमें व्याधि होती है और सूक्ष्म जीवोंका संहार होता है।"

रात्रिमें जिस रंगका आहार किया जाता है उसी रंगके तमस्काय जीव उस आहारमें उत्पन्न हो जाते हैं। पेटमें उनके प्रवेश होनेसे उन जीवों की हिंसाके अतिरिक्त अपने स्वास्थ्यको भी हानि पहुंचती है।

डाकृर हल० एम० डी० नामक प्रख्यात् अमेरिकन वैद्यने अपने रोगियोंको औषधिके साथ रात्रि भोजन त्यागका भी अनुपान बतलाया है। कई बार रात्रि—भोजनसे हानिकारक परिणाम भी देखनेमें आते हैं। थोड़े समय की बात है कि धोलेरा बन्दर स्थानमें, एक सेठके मुनीमने रात्रिके समय चा पकाई और ग्रामके दो श्रीमान् वणिक् मित्रोंसे उसे पीनेका आग्रह किया उनमेंसे एक रात्रि भोजन नहीं करता था। उसने नहीं ली और दूसरेने उसे पी ली। गृहके स्वामी तथा दूसरे मित्रको आधे घंटेके बाद वमन हुआ और डेढ़ घंटेमें उनके प्राण पखेरू उड़ गये। प्रातः काल सरकारी कर्मचारी आये और जांचकी तो मालूम हुआ कि चामें छिपकली पड़ी थी। बचा हुआ वणिक् अभी भी जीवित है। कहा है:—

मेधां पिपीलिका हन्ति यूका कुर्याज्जलोदरं।
कुरुते मक्षिका वांति कुष्ट रोगं च कोलिकः॥
कंटको दारु खंडं च वितनोति गल व्यथाम्।
व्यंजनांतर्निपतितं तालु विध्यति वृश्चिकः॥

"रात्रि भोजनमें कीड़ा आवे तो बुद्धिका नाश करता है। जूं जलोदर करता है। मक्खीसे वमन होता है, कोलिकसे कुष्ठरोग हो जाता है, शाकमें कांटा या लकड़ी की छिपली हो तो गलेमें व्याधि होती है और बिच्छू आ जावे तो तालूको वेध—फाड़—डालता है।

पुराणमें नर्कगतिके चार द्वार बतलाए हैं (१) रात्रि-भोजन (२) परस्त्रीगमन (३) मांसाहार और (४) अनन्त-काय अर्थात् कंद मूलादिकका आहार, इसमें तत्व समझनेकी आवश्यकता है। रात्रि भोजनको केवल जीवों की हिंसा होनेके कारणसे ही नर्कद्वार ठहराया है, सो नहीं ; परन्तु एक दूसरी सूक्ष्म बात विचारने योग्य है। आहार, निद्रा, भय, तथा मैथुन ये चार संज्ञाएं सर्व प्राणियोंके समान मनुष्यमें भी होती हैं। मनुष्यके अतिरिक्त सब प्राणी इन चारमें ही अपने जीवन की सफलता मानते हैं और इन चारों ही के पीछे अपनी सब शक्ति और समय व्यय कर डालते हैं। अन्य सब प्राणियोंकी अपेक्षा मनुष्यको बुद्धि अधिक मिली है। तो इस बुद्धिके द्वारा इन चारोंको नियमित रूपसे व्यवहारमें लाना मनुष्यका—कर्तव्य होना चाहिये। यह ऐसी सत्य बात है जिसको प्रत्येक पुरुष समझ सक्ता है और मानता है। प्रातःकाल उठनेके सम-यसे सोनेके समय तक, खाने पीनेकी ओर ही, यदि हम अपनी वृत्तियोंको दौड़ने दें तो फिर चित्त की एकाग्रता किस रीतिसे हो सक्ती है ? खाने की लोलुपता धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके

साधनमें विघ्नरूप हो जाती है ; परन्तु दो घड़ी दिन चढ़ते तक सर्व प्रकारका आहार त्यागनेका नियम बना लेनेसे आत्मनिग्रहकी शक्ति प्राप्त होती है और जगतके असंख्य निरपराधी प्राणियोंको अभयदान मिलनेसे, महत्पुण्य उपार्जन होता है। उसी प्रकार रात्रि भोजन त्यागनेका अभ्यास धीरे धीरे बढ़ानेसे, पान, सुपारी, हुक्का आदि व्यसन कुछ कालमें छूट जाते हैं।

कौनसा आहार न लेना, तथा कब न लेना इन दो विषयों पर कहनेके पश्चात् अब मैं आहार संबन्धी, विविध प्रकार की सूचनाएँ दे देना आवश्यक समझता हूं।

भलीभांति बिना देखे हुए, कोई भी वस्तु पकानी अथवा खानी न चाहिये; इसमें परजीवकी दयाकी अपेक्षा स्वशरीरके रक्षणका हेतु प्रधान है।

सड़े हुए धान्यको धूपमें न डालना चाहिये, किन्तु उसे युक्ति पूर्वक तथा यत्न पूर्वक साफ हो सके तो साफ करके, उस में के जीवोंको, जहां जीव रहते हों ऐसे स्थानमें छोड़ना चाहिये; यदि आरंभसे ही सावधानी रखी जाय तो इतनी खट पट करने की आवश्यकता न पड़े। यदि अधिक सड़ा जान पड़े तो सब धान्य जीव स्थानमें डाल देना चाहिये और लोभ बिलकुल भी न करना चाहिये।

भोजन पकानेकी सामग्री जैसे कि, मिट्टी अथवा धातु आदि के बर्तन ईंधन, चूल्हा इत्यादि एक देवबहारी अथवा किसी नरम वस्तुसे झाड़ कर स्वच्छ कर उपयोगमें लानेका नियम

रखना चाहिये। इसमें जीव दयाके अतिरिक्त स्वरक्षण होता है। चा बनानेके बर्तनकी टोंटीमें, छिपकली रहनेसे, उसमें बिना देखे चा पका कर पीनेवालेकी मृत्यु होनेके उदाहरण, कई बार सुननेमें आये हैं। चक्कीके मुंहमें चूहेका बच्चा, सांप छिपकली इत्यादि बहुधा असावधान पिसनहारीकी मूर्खतासे पिस जाते हैं और आटा विष हो जाता है। ईंधनको हमेशा (और विशेष कर चतुर्मासमें) तोड़ कर, तथा भली भाँति देख कर और साफ करनेके उपरान्त उपयोगमें लाना चाहिये। कूड़ा झाड़नेकी बहारी, नरम चीज़की तथा सर्वदा सूखी (भींगी हुई नहीं) काममें लाना चाहिये, क्योंकि गीली, भींगी अथवा खजूर इत्यादिकी बनी हुई बहारी जीवोंके लिये तलवारका काम करती है। *

घरके कोने कांतरोंमें से यदि प्रति दिन सावधानीसे कूड़ा कचड़ा निकाल डाला जाय तो भोजन करते समय थालीमें धूल तथा जन्तु न पड़े; और मकड़ी मच्छर खटमल आदि जन्तुओं की उत्पत्ति भी न हो। और जो इनका उपद्रव ही न हो तो उन के घात करनेका दोष कहांसे लगे।

जल रखने तथा रसोई बनानेके स्थानोंके ऊपर कपड़ेकी चांदनी या हो सके तो लकड़ीका सीलिंग—छत—जड़वा देना

* कई दयालु पुरुष सबको चंवरी (बहारी) चलनियां छन्ने इत्यादि, दबी हुई वस्तुओंको चालनेके लिये बांसकी चलनियां इत्यादि बांटते हैं, जिससे कि लोग उनका उपयोग करके प्राणी रक्षण करें।

चाहिये जिससे कि भोजनमें धूल या उसमें रहनेवाले जन्तु उड कर न गिरें।

पकाया हुआ अन्न तथा द्रव्य और चिकने पदार्थ कभी भी खुले न रखे जाय, क्योंकि उनमे माखी, पखी, पतंग कीडा मकोडा, छिपकली, चूहा आदि गिर जानेसे, जीव हिंसा होनेके अतिरिक्त, खानेवालेको भी हानि सहनी पडती है।

साग तरकारी खानेवालोंको यह ध्यान रखना चाहिये कि सस्ता शाक ढूंढ कर सडा न खरीदे।



नवां दिवस।

जलके विषयमें असावधान मत रहो।

"मितव्ययता और अपव्ययता (या फिजूल खर्ची) ये दो बिलकुल जुदी जुदी बातें हैं।"——एक मुनि।

कल तुमको मैंने आहार सम्बन्धी कई सूचनाएँ दी थीं। आज जलसे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ सूचनाएँ दूँगा।

अन्न तथा जल मनुष्य शरीरके बड़े भारी पोषक हैं। यहाँ तक कि ये ही जीवनके आधार कहे जायँ तो भी ठीक होगा। इतना होने पर भी, इन दोनोंके विषयमें बहुत लोग असावधानी बतलाते हुए दृष्टि पड़ते हैं। जैसे दिनमें, दो वार संयमसे सादा वनस्पत्याहार लेना स्वास्थ्यदायक है, वैसेही मदिरा, चा काफी इत्यादि द्रव पदार्थ त्याग कर, प्यास लगे तब केवल शुद्ध जल पीना ही आरोग्यवर्धक है। जल और दूधके अतिरिक्त दूसरे सब पेय पदार्थ थोड़े अथवा अधिक प्रमाणमें हानिकारक हैं। दूध चाहे जितना पौष्टिक पदार्थ होवे तोभी वह पानीके स्थानमें कुछभी काम नहीं दे सक्ता। पानीके विषयमें, प्रथम जिस नियमका ध्यान रखना चाहिये वह यह है कि उसे योग्य रीतिसे

छान कर पीवे तथा हमेशा ढाँक कर रखे। "जले विष्णु स्थले विष्णु" आदि श्लोकोंका हेतु इतनाही है कि जल स्थल आदिमें विष्णु अर्थात् जीवका वास है। इसलिये उसका दुरुपयोग न करना चाहिये। जलका दुरुपयोग, दो प्रकारसे किया जाता है; एकतो उसे बिना छाने उपयोगमें लानेसे, दूसरे, आवश्यकतासे अधिक उपयोग करनेसे।

पानी छाननेके सम्बन्धमें विष्णु पुराणमें कहा है :—

संवत्सरेण यत्पापं कुरुते मत्स्य वेधकः।
एकाहेन तदाप्नोति अपूयं जल संग्रहः॥

"मछुहा बारा माहमें जितना पाप करता है, उतनाही पाप एक दिन बिना छने जल पीनेवालोंको होता है।" ऐसा कहनेका हेतु क्या है सो देखना चाहिये।

वर्त्तमान शोधकर्ताओंने सूक्ष्मदर्शक यन्त्रकी सहायतासे, जलके एक विन्दुमें असंख्य जन्तु देखे हैं; और उसी कारणसे जैन शास्त्रों तथा वेदोंके उपदेशमें, जलको छाननेके लिये तथा उसके उपयोगमें, मितव्ययता करनेके लिये कहा गया है। यहाँ यह ध्यानमें रखना चाहिये कि, मितव्ययता तथा उड़ाउपन ये दो बिलकुल जुदी जुदी बातें हैं। मितव्ययी होनेसे किसी प्रकारकी असुविधा सहनेका अर्थ न समझ लेना चाहिये। जहां जहां जितना जितना व्यय करने की आवश्यक्ता हो, वहां वहां उतना ही व्यय करना मितव्ययता कहलाती है। अनावश्यक और प्रमाणसे अधिक व्यय उड़ाऊपन कहलाता है।

हम लोगोंमें गंगाबाई तथा आधारबाईकी बात सुप्रसिद्ध है। राजाने उनके बीचमें पड़े हुए झगड़ेका न्याय करनेके हेतु, दोनों से कीचड़ खुदवा कर, प्रत्येकको, हाथ पांव धोनेके लिये लोटे लोटे भर जल दिया। आधारबाईने वह सब जल ढोल दिया तो भी उसके हाथ पैर कीचड़से भिड़े रहे और गंगाबाईने, मिले हुए जलमेंसे, कुछ लेकर हाथ पाँवसे भली भाँति कीचड़ छुड़ा डाला, फिर बचे हुए जलसे, अच्छी तरह धोकर, हाथ पांव बिलकुल स्वच्छ कर डाले। इस परसे राजाने उनका न्याय किया था। मतलब यह है कि जो लोग जलके समान वस्तुओंके विषयमें फिज़ूल खर्ची ज़ाहिर करते हैं, वे धन समय, शक्ति आदिके व्ययके विषयमें भी मितव्ययता नहीं कर सकते।

कई भोले मनुष्य, जल अधिक ढोलनेसे बारम्बार स्नान करनेसे, तथा तीर्थस्थानसे पुण्य मानते हैं। स्वार्थी उपदेशक जिस तिसमें 'कल्याण' बता देनेको तैय्यार हो जाते हैं; क्योंकि इस कल्याणके मार्गमें उनका भी स्वार्थ भली भाँति सिद्ध होता है। परन्तु यदि उपदेश सुनने वाले लोग, अन्धश्रद्धा न रखकर सर्वदा प्रत्येक उपदेशको न्यायकी तराजू में तौलने की आदत रक्खें तो उन्हें यह विचार उत्पन्न हो कि, गङ्गा की मछलियोंका तो अवश्य ही कल्याण होना चाहिये!

पुराणमें तीर्थाधिकारके विषयमें कहा है कि :—

"हजार बार माटी लेकर, शरीर पर लपेट कर सौ घड़ा

पानी ले शरीर पर ढोले—ऐसे तीर्थ स्थान सैंकड़ो बार करे तो भी दुराचारी आत्मा शुद्ध नहीं होता।" और—

सत्यं शौचं तपः शौचमिंद्रिय निग्रहः।
सर्व भूत दया शौचं जल शौचं तु पंचमम्॥

"सत्य, तप, इन्द्रियनिग्रह, सर्व जीवों पर दया, इन चार प्रकारके शौचोंसे आत्मा की शुद्धि होती है। पांचवें जलशौचसे तो केवल देहकी ही शुद्धि होती है।"

दान दक्षिणा के लालचसे अथवा अपनी और अपने बनाये हुए देवोंकी प्रतिष्ठा बढ़वाने की इच्छासे जो लोग तुम्हें स्नान. तीर्थमें 'कल्याण' होना बतलावें, उनका उपदेश माननेके पहले श्रीकृष्णजीका कहा हुआ निम्न लिखित श्लोक स्मरण करो :—

आत्मा नदी संयम पुराय तीर्थ सत्योदकं शील तटादयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरु पाराडु पुत्र, न वारिणा शुद्धयति चांतरात्मा॥

संयम रूपी पूर्ण जलसे भरी हुई सत्यरूपी प्रवाह वाली, शील रूपी किनारों वाली और दयारूपी लहर वाली नदीमें हे पांडु पुत्र! तुम स्नान करो जिससे तुम्हारा अन्तरात्मा शुद्ध हो।"

अब मैं तुम्हें शरीर शुद्धि सम्बन्धी कई बातें सूचित करता हूं। मैलेपनसे हवा खराब होती है, उससे स्वास्थ्य बिगड़ता है, जीवोत्पत्ति होती है, जिससे जीव हिंसाका दोष लगता है, आदि अनेक हनियाँ मैलेपनसे होती हैं। इस लिये शरीर, वस्त्र, घर, सामान, आँगन सब स्वच्छ रखना चाहिये। सिरको स्वच्छ न रखनेसे लीख—जूं पड़ जाते हैं। उनके पेटमें जानेसे जलोदर

होता है। शरीर अथवा वस्त्र मलिन हों तो उसमें भी जूँ उत्पन्न होती हैं; बिछौना स्वच्छ न रखनेसे उनमें खटमल उत्पन्न हो जाते हैं। जो लोग अपनी असावधानीसे खटमलोंकी उत्पत्ति कराकर, उन्हें धूपमें डालते हैं तथा खटमल सहित खाट, नदी अथवा गर्म जलमें डुबाते हैं वे निःसन्देह प्रकृतिका एक भारी अपराध करते हैं। ये जूँ-खटमल अपने ही शरीर पर अपने ही पसीनेसे जन्म पाते हैं। इस लिये महाभारतमें उनका पुत्र-वत् रक्षण करनेके लिये कहा गया है जिसका कि भावार्थ केवल इतना ही है कि, उन्हें किसी प्रकारसे मारना न चाहिये परन्तु किसी कुशल स्थानमें, सावधानीसे छोड़ आना चाहिये, उसके पश्चात् ऐसी सफाई रखनी चाहिये कि जिससे उनकी उत्पत्ति ही न हो।

जलके विषयमें बोलते हुए तनिक विषयांतर हो गया, किन्तु आशा है कि तुम्हें अब कोई शंका न रही होगी। अच्छा अब मैं पानी छाननेके सम्बन्धमें थोड़ा सा कहता हूं।

पानी छाननेकी विधिके सम्बन्धमें लिङ्गपुराणमें कहा है कि "३० अङ्गुल लम्बे तथा २० अङ्गुल चौड़े वस्त्रको दुहरा कर, जल छान कर, उपयोगमें लाना चाहिये, तथा उस वस्त्रमें रहे हुए जन्तुओंको जलमें डाल देना चाहिये।"

पानी छाननेमें भी जीव दयाके अतिरिक्त दूसरा भारी हेतु गर्भित है। वह यह है कि कई स्थानोंका बिना छना पानी पीनेसे, फोड़ा—फुंसीका रोग उत्पन्न हो जाता है।

जैन साधु जलको उबाल कर, बारंबार छाननेके पश्चात् पीते हैं जिससे उन्हें फोड़ा—फुन्सी उड़ते रोग, कुपच इत्यादि होनेका बहुत कम डर रहता है। कई अज्ञान लोग पानी छानते हैं सही, परन्तु वे उस बिलछानी उस वस्त्रमें रहे हुए जन्तु कुआं तालाब आदिमें डालनेके बदले उनका नाश करते हैं। यह भारी भूल है। पानीके नलमें भी कपड़ा बान्धना चाहिये तथा उसे निरंतर बदलते रहना चाहिये।

दसवां दिवस.

अस्वच्छताको पास मत फटकने दो,

"Cleanliness is next to Godliness"

"स्वच्छता प्रभुता से दूसरा नम्बर है।"

अशुचि करुणा हीन अशुचिर्नित्यमैथुनः।
अशुचि परद्रव्येषु अशुचि. परनिंदा भवेत्॥

"दयाहीन होना अशुचि है, नित्य मैथुन करना भी अशुचि है पराये द्रव्य में अशुचि है और परनिंदा भी अशुचि ही है।"

स्वच्छता की प्रस्तावना में दो शब्द, मैं कल कह चुका हूं। स्वच्छता दो प्रकार की है मानसिक और शारीरिक। मन तथा आत्माको विकारों से अशुद्ध न होने देना, मानसिक स्वच्छता है और शरीर तथा आस पासकी वस्तुओं को गंदली न रखना शारीरिक स्वच्छता है संसारी जनों को दोनों स्वच्छताओं का विवेक रखना चाहिये।

मानसिक अस्वच्छता में चोरी, झूठ, विश्वासघात; निंदा इत्यादि बहुत सी बातों का समावेश होता है परन्तु उन सब में भयंकर अशुचि व्यभिचार है। व्यभिचार की अशुचिके साथ विश्वासघात, चोरी, झूठ इत्यादि अन्य सैकड़ों अशुचियां दौड़ आती हैं, इतनाही नहीं किन्तु इस जाति की अशुचि शरीर की अशुचि को भी उत्पन्न करती है। व्यभिचारी मनुष्यों का कोई विश्वास नहीं करता। उसका मन भी सर्वदा भटकता तथा परतंत्र रहता है। धर्मकार्य तो उसको सूझता ही नहीं। इस लिये व्यभिचार सब दुर्गुणों का पिता सब दुःखों की खानि तथा जीने और मरने के पश्चात् नर्कवास के समान है यह बिलकुल असत्य नहीं है।

जैसे शारीरिक अशुचि उत्पन्न करने वाले मल, मूत्र, और कचरा हैं वैसे ही, विषयी जनों की संगति रंगीली रसीली गानों की पुस्तकें वांचने का शौक तथा शृंगार रसमय चटकीले भड़कीले नाटक देखने की आदत मानसिक अशुचि उत्पन्न करने वाले कारण हैं। इसलिये इनसब से दूर रहना शौच के इच्छुकों को आवश्यक है।

ऐसा कोई भी धर्म नहीं है कि, जिसमें व्यभिचारको न धिक्कारा गया हो और इस विषयका तो सब धर्मगुरु अत्याधिक तिरस्कार करते हैं। व्यभिचारके दुर्गुणका कारण मन है। यदि मनुष्य सुन्दरताकी ओर घूर घूर कर न देखे और मनको निग्रहमें रखनेकी आदत डाले तो इन अशुचियोंसे बच सक्ता है।

स्त्री कैसी अशुचि भरी देह है, यह ख्याल करनेकी टेव हो तो मन उसकी ओर कभी न भटके। उसी प्रकार पराई स्त्रीको माता तथा बहिनकी दृष्टिसे देखनेसे भी व्यभिचारवृत्ति न होने पावेगी। ऐसेही स्त्रियाँ अपने पतिके सिवाय यदि प्रत्येक पुरुष पर स्त्रीत्व आरोपें अर्थात् प्रत्येक पुरुषको पुरुष नहीं किंतु स्त्री समझें तो उस पर मोह उत्पन्न होगा ही नहीं।

विषयी पुरुष तथा स्त्रियां प्रकृतिका भी एक बड़ा भारी अपराध करती हैं। जिस वीर्यसे तुमको अपने और अपने देशके हितके लिये, हजारों काम करना हैं, उस वीर्यको कुमार्गमें फेंक देना, क्या भयंकर अपराध नहीं है? यदि तुम अपने बालकको, इस विचारसे दो आने पैसे दो कि या तो वह उन्हें अपने पास संग्रह करे अथवा कोई उत्तम वस्तु लेकर खा लेवे इसके विपरीत वह बालक चलते चलते, कलारके घर जा दारू पी आवे अथवा जूएमें हार आवे तो क्या तुम उस पर बिना क्रोधित हुए रहोगे? तुम्हें जो वीर्य प्रकृतिसे दी गई खुराकमेंसे मिलता है, वह बहुत थोड़े संग्रहमें तथा बहुत समयमें बनता है, उसे व्यभिचारमें खोना ठीक कौवेको उड़ानेके लिये रत्न फेंकनेके काम के ही समान है। क्षणिक और कल्पित सुख—मज़ेके—लिये यह लोक तथा परलोकके दुःख सहन करना पड़ें यह निरी मूर्खता नहीं तो क्या है? विज्ञजनोंको तो अपनी स्त्रीकी ओर भी मितव्ययी होना चाहिये। जब स्त्रियोंको विषय वासनाकी तृप्तिकी मशीन मानने वाले मूर्ख, स्थान स्थान पर दृष्टि पड़ते हैं,

तब मेरे अंतःकरणमें उन पर दया आती है और आंखमें आंसूकी धार बहाते हुए, विचार आता है कि, ये पागल—दीवाने-इस देशको अब इससे भी और कितनी बुरी स्थिति करना चाहते हैं? जबसे अपना ब्रह्मचर्य गया तभीसे अपना शौर्य गया, विद्या गई, बुद्धि गई, नीति गई, साहस और धन सब कुछ गया; अब कहो कि रहा क्या? शोक! नन्हें नन्हें बालकोंको स्त्री रूपी कटारी खेलनेके लिये सौंपनेवाले मूर्ख मां बापोंको कब समझ आयगी कि, यह कटार बड़े कामकी है—कीमती है; तथापि बालकको देनेसे तो उसकी मौतही होगी और कटारीभी खो जायगी और टूट जायगी। छुटपनहीसे हमारे भाई तथा बहिनोंके दुर्बल और निस्तेज—होनेका कारण यही है कि, उनके मां बापोंने छुटपनसे उनका संसारमें प्रवेश करा दिया—शादी कर दी; फिर वे विषयासक्त रहने वाले मनुष्य पुत्रके कर्तव्य भली भांति सीखनेके पहले, पिता बननेका आनन्द लेनेको शीघ्र तैयार हो जाते हैं। अब वे अपने पुत्रोंकी तथा अपनी नैतिक या शारीरिक पौष्टि—किस रीतिसे बना सकें हैं?

जो लोग अपनी संतानको सुखी बनानेकी इच्छा रखते हों तो उन्हें उसे योग्य शिक्षा देकर, किसी धन्धेमें लगा कर दूरही रखना चाहिये। अपनी कमाईसे, संसारकी आपदाओंका अनुभव लेनेके बाद, वह अपना व्याह करे, उसीमें उसके सुखका वास है। इस नियमके उपरान्त निज स्त्रीमें भी आत्मसंयमी रहे तथा पर स्त्रीसे बिलकुल विरक्त रहना ही उसे सदैव हितकर है।

शारीरिक शुद्धि न रखनेसे, खटमल, जूं, आदि जन्तुओंकी उत्पत्ति तथा विनाश होनेकी बात तो मैं पहलेही कह आया हूँ। आज, घर आंगन, तथा सामानादिके सम्बन्धमें फुटकर बातें सूचित करता हूँ।

घरके सामने गहरा गड्ढा, गटर—नाली—कुंडे इत्यादि रखना रोगका घर है। उनमें सड़ावट पैदा हुआ ही करती है, और एक अंतर्मुहूर्तमें, अर्थात् दो घड़ीमें असंख्य संमुर्च्छिम जीव उनमें उत्पन्न होते और मरते हैं। इसका अंग्रेज लोगोंने सूक्ष्मदर्शक यन्त्रसे निश्चय किया है। और उनमें जो बड़े कीड़े उत्पन्न होते हैं सो तो कईने देखे होंगे। सड़ावट तथा दुर्गन्धसे हवा खराब होती है। प्लेगादि छूतकी बीमारियां पैदा हो जाती हैं और असंख्य जन्तुओंका नाश होता है।

किसी भी प्रकारका गन्दलाजल, मलमूत्र आदि इकट्ठा कभी न होने देना चाहिये। गंदला पानी ग्रामके बाहर खुले स्थानमें डाल आना चाहिये। पेशाब पर पेशाब करनेसे प्रमेह आदि रोगोंकी छूत लगना सम्भव रहता है। उसी प्रकार झाड़े पर झाड़ा फिरनेसे भी, कई प्रकारके रोग लगने की सम्भवना है, तथा असंख्य जीवोंकी उत्पत्ति तथा विनाश होता है। सबसे सहल राह तो यही है कि आधा अथवा एक मील चलना पड़े तो पैर भी फरहरे हों और सुबह की ताजी हवा फेंफड़ोंमें प्रवेश कर, रुधिरको स्वच्छ करे, ऐसा समझ कर ग्रामके बाहर, खुली साफ जगहमें झाड़ा- फिरना चाहिये। रोगी पुरुषोंका

मल, वमन, मूत्र इत्यादि कभी भर कर न रखना चाहिये परन्तु उसमें राख डाल कर ग्रामके बाहर फेंक आना चाहिये ।

अच्छा पानी भी घरमें या पड़ोसमें बहुत फेंकनेसे सीड़ हो जाती है उससे सर्दी ज्वर इत्यादि की पीड़ा होती है ।

आंगनमें जूठन डालने की अपेक्षा अथवा गलीके गड्ढेमें डालनेकी अपेक्षा ढोरको खिला देना ही उत्तम है । जिससे वह निरर्थक नहीं जाती और गलीज़पन भी नहीं होने पाता । जूठनके विषयमें इतना और सूचित कर देना ठीक होगा कि, वर्त्तनमें इतना ही भोजन लेना चाहिये जितना कि हम खा सकें । जूठन फेंकना एक प्रकारकी कुटेव है । मैं यह नहीं कहना चाहता कि, "अन्न एक देवता है इसलिये जूठन नहीं फेंकना चाहिये," पर मैं तो मितव्ययता की दृष्टिसे यह सूचित करता हूं । प्रति दिवस आध सेर अन्न जूठनमें जाय तो वर्ष भरमें साढ़े चार मन अनाज फेंका जावेगा । जूठन न छोड़नेसे घरके लोग मितव्ययी, और चतुर होना सीखेंगे ।

चतुर संसारी जनोंको शरीर तथा उसके आस पासके पदार्थों की स्वच्छता पर बराबर ध्यान देना चाहिये ; नहीं तो वे अपने को तथा अपने कुटुम्बको दुःखी करनेके उपरान्त अपने निर्दोष पड़ोसीको भी दुःखी करेंगे ; क्योंकि अस्वच्छता का बुरा परिणाम सब पड़ोसको तो क्या पर सब शहरको और कभी कभी आसपासके ग्रामों तक को भोगना पड़ता है ।

ग्यारहवां दिवस ।

आलसी मत बनो ।

"आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महा रिपु."—भर्तृहरि ।

"Act act in the living present"
Heart within and God overhead"

—*Long fellow.*

कार्य करो सब वर्त्तमानमें ।
मन दृढ़, सिर प्रभु, रखो ध्यानमें ॥

भाइयो और बहनो! जिस विषयका विवेचन मैं आज और कल करने वाला हूं, उस पर इतने अधिक पण्डितोंने चर्चा की है कि मैं इस विषयमें अपने विचार प्रगट करने की अपेक्षा भिन्न भिन्न महापुरुषोंके उपदेशोंमेंसे चुने हुए वचनामृतको विविध प्रकारसे बतलाना ही ठीक समझता हूं। मुझे विश्वास है कि, तुममेंसे प्रत्येक उसका एकाधरत्न बिना बाँधे न जाओगे।

(१) हमेशा जीवित रहना है, ऐसा समझ कर काम करो और आज ही मरना है, ऐसा समझ कर भक्ति करो।

(२) प्रकृति द्वारा प्राप्त की गई शक्तिओंसे, उत्तमसे उत्तम काम जो तुमसे बन सके उसमें अपने जीवनका अधिकांश भाग लगाओ, जिससे मरते समय तुम्हें यह संतोष मिले कि "मैंने अपनी शक्ति भर कार्य किया है।"

(३) चतुर पुरुष सर्वदा शत्रुओंसे सचेत रहते हैं। सब शत्रुओं की अपेक्षा कुटेवसे अधिक सावधान रहनेकी आवश्यकता है; और सब कुटेवोंमें आलस्य बहुत हानिकारक है।

(४) सुस्ती अथवा कायरपन एक बोझा है, कंटक है, कचरा है, मनुष्यको शोक ग्रसित उदास और कंगाल बनाने वाली व्याधि है!

(५) आलस्य शरीर तथा मनके लिये विष है, दुष्टता की दाई है, सब अपराधों की मां है, शैतानका तकिया—आश्रय—है, जन्मसे मिली हुई चपलताको खा जाने वाली टिड्डी है, एक शब्दमें, वह मनुष्यत्वका 'प्लेग' अथवा, 'नर्क' है।

(६) इतना मैं दावेके साथ कहता हूं कि, आलसी पुरुष अथवा स्त्री—फिर वह चाहे जितना पैसेवाला—भाग्यशाली—बड़े कुटुम्बवाला—रिद्धि सिद्धिसे भरपूर हो तो भी प्रसन्न चित्त कभी नहीं हो सक्ता, परन्तु हमेशा थका—माँदा, रुग्न, चिड़चिड़ा, रोना, निःश्वास डालता हुआ, शोकातुर, दूसरेका दोष ढूँढ़नेवाला, शक्की, संसार तथा संसारी पदार्थों पर क्रोध करनेवाला, उनका विनाश देखनेका इच्छुक और वैसा नहीं तो कोई मूर्ख तरंगसे अपघात करनेके लिये तैय्यार देखनेमें आवेगा।

(७) जीवन की तुलना चक्कीके साथ की जाती है। उसमें गेहूँ ऊरे जाँय तो आटा होगा, जिस की उत्तम रोटी, पूरी, मकड़ इत्यादि बनेंगे, परन्तु गेहूँ न ऊरो तो पत्थर ही पिस जायगा।

(८) सुस्ती हमेशा बहानोंसे भरपूर रहती है। सुस्त मनुष्य कहता है कि, 'इस मार्गमें तो बड़ा बाघ लगता है; अथवा 'यह काम होना ही अशक्य है,' मैंने प्रयत्न कर देखा, अब कोशिश करने की आवश्यकता नहीं है। यदि आत्मा अपनी शक्ति विकसित करे तो ऐसी एक भी बात नहीं है जो वह न कर सके, यही आत्मा परमात्मा भी बन सक्ता है, ऐसी उसके मनमें धारणा हो जाय तो ऐसे बहाने कर, सुस्त—कायर—बन कर न बैठा रहे।

(९) आलसी पुरुषके भागमें, अन्तमें यही कहना रह जाता है कि, "भूतकालमें मैंने ठगा है, वर्तमान पीड़ित करता है और भविष्यत् भयभीत करता है।

(१०) काम हो जीवन है। इसलिये मुझसे कहो कि, तुम कौन काम कर सकते हो तो मैं बतला दूंगा कि तुम कैसे हो?

(११) कुपच, पागलपन इत्यादि व्याधियां तथा नीच विचार, कुइच्छाएँ छोटी छोटी चिंताएँ थकावट और उदासीनता, इन सबकी यदि बिना पैसेकी औषधि चाहना हो तो डाक्टरोंके पास न जाकर 'अखंड उद्यम' यही दवा उन पर आज़मा देखो। प्रत्येक पलको उपयोगी कार्यसे भरो। इस औषधिमें

तुमको पैसा न लगेगा बल्कि पैसा उल्टा मिलेगा और दुःख भी मिटेगा।

(१२) बहुत बार मनुष्य सोचता है कि, पाँच दस हजार रुपया अच्छे या बुरे मार्गसे प्राप्त हो जायँ तो एकान्त वासमें पड़े रहें जिससे संसार की खटपट, चिन्ताएँ और दुःखोंसे छुटकारा हो। यह प्रयोग बहुत मनुष्योंने बहुत लहरी पुरुषोंने तथा विद्वानोंने—अनेक बार आजमाया है पर सबका परिणाम एक ही हुआ है और वह है निराशा। ठीक समझ लो कि, परिश्रम तथा दुःख, मनुष्य जातिके ललाटमें, जन्मके साथ ही लिख दिया जाता है। जो लोग इससे इस प्रकार छूट भागना चाहते हैं उनके पीछे वे दोनों दुगने बलसे दौड़ते हैं।

(१३) जैसे रात्रिके बिना दिवस नहीं हो सका वैसे ही उद्यम बिना विश्राम तथा शान्ति नहीं मिल सक्ती।

(१४) बरसों की अधिकतासे कुछ जीवन की लंबाई नहीं समझी जाती मनुष्यका जीवन दिवस, मास तथा वर्षोंसे नहीं मापा जाता, किन्तु उससे किये गये सुकृत्यों तथा सुविचारोंसे ही मापा जाता है।

(१५) चीनका एक बादशाह कहता था कि यदि देशमें कोई भी मनुष्य ऐसा न हो कि जो काम न करे अथवा कोई भी स्त्री ऐसी हो जो आलस्यमें पड़ी रहे तो राज्यमें किसी भी मनुष्यको भूख—प्यास—ठंड तथा ज्वर आदि न भोगना पड़े।

(१६) भगवान महावीर स्वामीने धर्म कियाके लिये उद्यमी होनेका उपदेश किया था। मनुष्यको "कर्मके अनुसार उद्योगी होना सूझता है," तथा "कर्मका मजदूर मनुष्य है।" मनु महाराज तथा ईशू ख्रीष्ट भी यही उपदेश करते हैं।

(१७) उद्योग केवल पैसा, रुपया, यश तथा सम्मान प्राप्त करनेका साधन हो सो नहीं, परन्तु बुद्धि अनुभव, धर्म, आत्म-ज्ञान, विवेक, कार्य पद्धति, सहनशीलता इत्यादि तथा समयका सदुपयोग करने और समय बचाने की बुद्धि देने वाला भी वही है।

(१८) जो लोग ऐसा कहते हैं कि, उद्यम, केवल गुज़र चलानेके लिये है, वे भारी भूल करते हैं। अपनी चाह पूरी करनेके साधन मनुष्यके पास यथेष्ट होने पर भी, संसारमें निभनेके लिये तथा संसारको निभानेके लिये, प्रत्येक मनुष्यको उद्यम करने की आवश्यकता है। काम ड्रिल (कवायद)के समान है। उसे करनेके समय पागलपन की कल्पनाओंको दबाना पड़ता है, चहुँओर देखरेख रखनी पड़ती है, सूक्ष्मसे सूक्ष्म बातों पर भी लक्ष्य देना पड़ता है, चित्त की एकाग्रता तथा गहन विचार करने की आवश्यकता पड़ती है, प्रसंग पड़ने पर जीभको लगाम लगाने की आवश्यकता पड़ती है, ये सब गुण मनुष्यत्व को प्रकाशित करने वाले तथा उच्च स्थितिमें पहुंचाने वाले हैं। इस लिये उद्यम अथवा कामको मनुष्यका श्रेष्ठ शिक्षक तथा गुरु कहा है।

(१९) फलकी इच्छा रखना तथा फल प्राप्त कराने वाले परिश्रमसे बचनेका प्रयत्न करना, नीचताका लक्षण है ।

(२०) तनका सुख मनके आधार पर है । मनका सुख ज्ञान तथा अनुभव पर अवलम्बित है । ज्ञान और विशेष कर अनुभव तो कष्ट तथा हानिसे ही प्राप्त होता है । कष्ट तथा हानि द्रव्यसे भी अधिक बहुमूल्य समझे जाने योग्य हैं ।

(२१) नासमझ लोग असफलतासे भय खाते हैं । नीच मनके पुरुष कोनेमें बैठ कर, गुड़खाना पसन्द करते हैं, परन्तु उत्तम पुरुष तो असफलता, अनुभव तथा दूसरोंके उपयोगमें आनेवाली शक्ति की शोधमें ही चक्कर लगाते रहते हैं ।

(२२) जिसका रुधिर युवावस्था की असली ऋतुमें गर्म नहीं होता, जिसके शरीरके अभी विकशित होते हुए अंग भी उसे दौड़ानेको राज़ी नहीं हैं, जो युवा अपने मस्तिष्क को बुरे दृश्य, बुरे विचार तथा बुरी बातोंसे भ्रष्ट और पागल बनाता है, वह जीता हुआ भी मृतक है ।

(२३) 'फुर्सत नहीं है'–इसका अर्थ, मर्ज़ी–इच्छा–नहीं है' ऐसा मैं करता हूं और मर्जी—इच्छा–नहीं है इसका अर्थ 'मृत्यु मांगता हूं', ऐसा एक विद्वान करता है ।

(२४) "यदि जन्म होते समय, बालक अपने मनसे नहीं रोता तो दूसरे उसे चिमटी लेकर रुलाते हैं" इसी प्रकार जो स्वेच्छासे तथा आनन्दसे कड़ा परिश्रम नहीं करता, उससे भूख और तङ्गी, व्याधि और चिन्ता अवश्य ही दासत्व कराती हैं ।

(२५) प्रत्येक पुरुष, पंडित होनेको समर्थ है, प्रत्येक पुरुष बड़ा व्यापारी होनेके योग्य है। प्रत्येक पुरुष तत्वज्ञानी बननेकी शक्ति रखता है, स्याने बुड्ढे चाहे भलेही कहें कि, "इसमें कोई तथ्य नहीं है।"

(२६) विलियम कावेट एक साधारण किसानसे बड़ा राजकर्मचारी केवल बहुत अधिक और नियमित परिश्रमसे ही हुआ था। इंग्लेंडका प्रधान मन्त्री ग्लाडस्टन वृद्ध होने पर भी आरोग्य तथा प्रसन्न चित्त रहता था सो केवल कठिनसे कठिन परिश्रमके कारणसे ही; स्काट कविने एकसे एक बढ़ कर इतनी अधिक उत्तम पुस्तकोंकी रचना की है कि लाईब्रेरी पर लाईब्रेरी भर जायं, सो केवल अविश्रान्त उद्यमसे ही, आरामके लालची तथा "घड़ी भर तो सो लेने दो।" ऐसा चिल्लाने वाले, कभी भी महान् पुरुष नहीं हुए हैं।

(२७) ज्ञानमें–गुणमें अथवा शक्तिमें बड़े बननेकी जो आशा ही न रखे, ऐसे पुरुष पर थूकना चाहिये, जो हमेशा तुच्छ विचार करता है, वह कभी उदार, विवेकी, न्यायी तथा धार्मिक नहीं बन सक्ता। बड़े न हों तो उस पर अपना ज़ोर नहीं है परन्तु बड़े होनेकी आशा न रखना, यह नीचताका लक्षण है।

(२८) अकेला पड़ा हुआ मनुष्य, अव्यवस्थित, कायर, सुस्त तथा विचार करनेमें अशक्त बन जाता है, इस बातका कई बार अनुभव हो चुका है कि, "उद्योगमय जीवन" और

'बात चीतके लिये योग्य पुरुषकी संगति' से ही हममें सुधार तथा चालाकी आती है। बिना इन दोके मनुष्य ठंढा बन जाता है—उसकी इन्द्रियां बेकाम हो जाती हैं।

(२६) जो मनुष्य रात दिन सोच करता रहता है वह सबसे दुःखी मनुष्य है। बहुतसे निर्बल, शक्तिहीन मनुष्योंकी ऐसीही प्रकृति हो जाती है कि, कोई काम न हो, कोई योजना न करना हो तो भी वह कोई न कोई विचार किया ही करते हैं। अन्त में कुछ नहीं तो अजीर्णका रोगी जैसे अर्धनिद्रा लेता है तथा फटे टूटे सैकड़ों स्वप्न देखता है वैसेही वह मनुष्य भी, घर सम्बन्धी, द्रव्य सम्बन्धी, अपने सम्बन्धमें कुटुम्ब तथा मित्र सम्बन्धी, प्रकृति सम्बन्धी और कुछ नहीं तो पास पड़े हुए सामान सम्बन्धी स्फुट विचारोंमें गोते खाता है। इसका मन घड़ी भर भी विश्राम नहीं करता। इससे उसका मन अस्वस्थ होकर, मनन, अवलोकन, तथा तर्क करनेके लिये अशक्य बन जाता है। उसकी मृत्यु भी भ्रमणमें होती है, जिस से उसकी सद्गति होना कठिन है। इसके लिये नियमित और अखंड उद्योग——नियमित और सादा भोजन और नियमित भक्ति—ही उत्तम औषधि हैं।

बारहवां दिवस ।

फ़जूल खर्च मत करो.

Waste not want not.

उड़ेगी न सम्पत्ति, पड़ेगी न विपत्ति।

आजके उपदेशमें भी कलकी ही पद्धतिका अनुसरण करना उचित होगा। इन छोटे, किंतु बहुमूल्य वचनोंसे सुज्ञजनोंको बहुत लाभ पहुँच सकेगा, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

(१) कौड़ी कौड़ीसे खज़ाना जुड़ जाता है और बूंद बूंद से तालाब भर जाता है।

(२) एक ज़रासा छिद्र बड़े बड़े जहाज़ोंको डुबा देता है।

(३) जेबका छिद्र सौ दर्जियोंसेभी नहीं सिया जा सक्ता।

(४) उपयोगमें न आनेवाली सस्ती जान कर, लाई गई वस्तुभी अन्तमें महँगीही पड़ती है।

(५) अनुपयोगी वस्तु मोल लेने वालेको तथा व्यर्थ खर्च करने वालेको शीघ्र ऐसा समय आवेगा, जब उसे आवश्यक वस्तु बेच कर खानी पड़ेगी तथा आवश्यक खर्चके लिये गृहस्थी बेचनी पड़ेगी।

(६) कर्ज़से पैसा जाय और पीछेसे पश्चात्ताप हो, ऐसा करने वालेसे अधिक मूर्ख और कौन होगा ?

(७) प्रातः काल स्थिर रहनेका नहीं है, रात्रिभी होने-वाली है।

(८) बालक तथा मूर्ख मनुष्य सोचते हैं कि, एक रुपया कभी खर्च होने वाला नहीं, परन्तु कण कण खर्च होते होते राजाओंके भंडार खाली हो गये हैं।

(९) गरीबी मनुष्यको इतना नहीं मारती जितना कि गरीब दिखनेकी शरम उसे मारती है।

(१०) जब कूंआ सूख जाता है, तब जलका मूल्य मालूम पड़ता है।

(११) इच्छाको उत्पन्न होतेही दमन करनेमें थोड़ी कठिनाई पड़ती है किन्तु यदि वह इच्छा तृप्त कर दी जाय तो उससे उत्पन्न हुई दूसरी सैंकड़ो इच्छाओंको तृप्त करनेमें तुम समर्थ हो जाओगे, ऐसी आशा कभी न करो।

(१२) मेंडक चाहे जितना पेट फुलावे तो भी बैलके बराबर तो हो ही नहीं सक्ता।

(१३) कर्ज़दार मनुष्य, ही झूठा मनुष्य है।

(१४) कर्जदार बनना गुलाम बनना है।

(१५) खाली थैली चुस्त नहीं रह सक्ती।

(१६) उद्योगी और मितव्ययी सर्वदा सुखी रहते हैं।

(१७) जीवनके पलोंको व्यर्थ गप्पों तथा निंदा आदिमें

उड़ाना भारी फज़ूल खर्चीं है। गये हुए पल, फिर वापिस नहीं आते। तथा मनुष्य जन्मका जाना समुद्रमें रत्नके खो जानेके समान समझना चाहिये।

(१८) व्यभिचार, व्यसन, अत्यन्त क्रोध आदिसे शरीर द्रव्यको उड़ा देना, यह पैसा उड़ा देनेसेभी भारी अपराध है। पैसा तो खर्च हो जाने पर फिरभी मिल सक्ता है तथा अचानक ज़मीनमेंसे भी मिल जाता है, परन्तु अपव्यय किया हुआ शरीर रूपी द्रव्य फिर कभी हाथ नहीं आता, और जहां यह खोया तो मनुष्य जन्म मिला न मिला बराबरही समझना चाहिए।

(१६) ब्याह--वरात, जाति बिरादरी, तथा नाचरंगमें जब तुम कुछ खर्च करने लगो तो पहले यह सोचलो कि, इसी द्रव्यसे तुम्हारे कितने निराधार मनुष्य भाई सुखी हो सक्ते हैं।

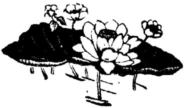
(२०) एक पाई बचाना उसे कमाने-पैदा करने-के बराबर है।

(२१) फज़ूल खर्चीको, मितव्ययताके समान समझने पर भी जो पैसेका सदुपयोग नहीं करता, वह पुरुष, शरीर कष्ट करने के लिये रात्रि दिवस, खटिया पर पड़े रहने वाले मूर्खसे, किसी प्रकार कम नहीं है।

(२२) तुम्हारा पैसा तुम्हें दूसरे मनुष्योंके पाससे प्राप्त हुआ है, इसलिये उस पर दूसरे मनुष्योंका हक़ है। यदि ऐसा न होता तो तुम उसे अपने साथही क्यों न ले जा सक्ते?

(२३) तुम्हारे ज्ञान तथा शरीर रूपी द्रव्य पर भी तुम्हारे मनुष्य भाइयों का स्वत्व है। तुम उनकी रक्षा करो, दुःख के समय सहाय करो, ज्ञान दो, ऐसी तुम्हारी ओर से आशा रखने का उनको हक है। यह हक डुबाने वाले तथा संकीर्ण बुद्धि के नर निंद्य हैं।

(२४) परोपकार तथा दया ये दो गुण स्वर्गीय हैं, उन गुणों का उपयोग करनेवाले तथा जिनको उनका लाभ मिलता है, ऐसे दोनों पक्षों को सुख होता है: शक्ति होते हुए भी जो परोपकार और दया का व्यय नहीं करते उन्हें कष्ट तथा दुःख के समय परमात्मा से दया मांगने का कोई हक नहीं है।



तेरहवां दिवस.

स्वदेशको मत भूल।

जननी जन तो भक्त जन या दाता या सूर।
नहिं तो रहना बांझ ही, वृथा गमा मत नूर॥

भाग्य शाली आर्य बन्धुओ। आज तक मैंने तुम्हें सामान्य नीति तथा व्यवहार शुद्धिका उपदेश किया। आज एक विशेष विषय पर, बोलना चाहता हूं।

संसार में सबसे प्राचीन इतिहास यदि किसी जाति का है तो वह अपनी आर्य जाति का ही है। भारतवर्ष का सूर्य, जिस समय चमक रहा था, उस समय, आजकल के सबसे आगे बढ़े हुए युरोपियन लोग नग्न दशा में फिरते थे।

कुटुम्ब—सुख हम ही लोगों में था; प्रतापी-तथा कर्तव्य परायण राजा अपने ही देश में थे; विमान बनाने वाले तथा उत्तम शिल्पकार हमहीं लोग थे, धर्म का, तत्वज्ञान का तथा न्याय शास्त्र का स्रोत अपनीही भूमि में से बहता था कि जहां से बहता बहता आज कल वह सब देशों को सजीवन जल देता है।

ऐसे इस अद्भुत देश को कविलोग स्वर्गभूमि यानें—देवधाम माने तो कुछ असत्य नहीं है।

वैद्यक तथा खगोल, भूतल और भूस्तर, व्याकरण और पिंगल, सिद्धान्त और न्याय, रसायन और यंत्र, सब विद्याएं एक समय, इस भूमि में खिल रही थीं, इसकी साक्षी के लिये प्राचीन पुस्तकें अभी भी वर्त्तमान हैं।

अन्य देश, साम्प्रतमें सुधार तथा विद्याकलाओं में अग्रसर दृष्टि पड़ते हैं, तौभी उनका संसार बन्धन इतना शिथिल है कि प्रति ५-२५ वर्ष में, बन्धन बदलनाही पड़ता है; जबकि अपने आर्यों की रहन सहन, आज सैकड़ों वर्ष होने पर भी स्थिर है, यद्यपि मुसलमान तथा अंग्रेज़ शक्तिओं ने उसे भ्रष्ट करने के प्रयत्न में रंचमात्र भी कसर नहीं रखी। क्या वह अपने पूर्वजों के कामों की दृढ़ता, उनके बुद्धिबल की कुशलता तथा उनकी पवित्रता की महत्ता सिद्ध करने के लिये बस नहीं है? क्या इतिहास एक भी ऐसी जाति बता सक्ता है कि, जिसकी उन्नति आर्यावर्त्त के बराबर प्राचीन हो?

परंतु शोक! यह सूर्य आज अस्त होगया है, यह उन्नति आज बातों ही के रूपमें रह गई है; यह ख्याति केवल इतिहास में लिखी रह गई है, इस देशके पुत्र—ये पूर्वजों की संतान—वर्त्तमानमें बुद्धिहीन, उद्यमहीन, वीरत्वहीन तथा वीर्यहीन, बन गये हैं। लक्ष्मीहीन होगये हैं इसके लिये तो शोक करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि लक्ष्मी तो बुद्धि, परिश्रम, उद्यम

तथा वीर्यकी दासी है। जहां इन दोनोंका वास है, वहां लक्ष्मी को जाना ही पड़ता है। क्या वर्त्तमानमें इंग्लैण्डका 'इंडिया-हौस' स्वर्णमय नहीं है? क्या अमरीकामें ४० मंजिलके महल नहीं हैं?

हम उसी भूमिमें बसते हैं, जिसमें पहलेके समान अभी भी, कच्चा सोना उत्पन्न होता है, जहां सब देशोंकी वस्तुएं पैदा हो सक्ती हैं, जहां विशाल नदियां हैं; जहां शीत, उष्ण, तथा वर्षा समान रूपसे पड़ती है; जहां चमत्कारी औषधियोंका कोष है; एक शब्दमें कहें तो यहाँ प्रकृतिने सब वस्तुओंका भंडार भर दिया है। इतना होते हुए भी आज हमलोग भूखों मरते हुए क्यों बैठे हैं? हमसे क्या अपराध बन गया है कि जिसके कारण हम आधि, व्याधि, उपाधि और परतंत्रता की बेड़ियोंसे जकड़े हुए दुःख भोग रहे हैं?

कोई कहता है कि विदेशी राजाओंके आक्रमणसे हमलोग निर्बल पड़ गये हैं, कोई कहता है कि एकके बाद एक दुष्काल पड़नेसे हम भूखों मर रहे हैं, कोई कहता है कि कलियुगके प्रतापसे यह दशा हुई। पर, ये सब कल्पना मात्र हैं। क्या कलियुग केवल आर्यावर्तमेंही है? क्या युरोपमें सतयुग वर्तमान है? क्या पहले अकाल नहीं पड़ते थे? क्या विदेशियोंके साथ पहले नहीं लड़ना पड़ता था?

विदेशियोंके आक्रमण तथा दुष्काल तो उल्टे प्रजाको शक्तिवान् बनानेके साधन हैं। उसके कारण लोग भोग विलास

आदिसे बचते हैं; उनका जल बहता रहता है, उनकी बुद्धि तथा बलमें जंग नहीं लगने पाता।

यथार्थमें यह हुआ है कि, हमलोगोंमें से ही कई स्वार्थी—भूखों मरते हुए लोगोंने हमको भ्रम तथा अज्ञानमें डाल रखनेका प्रयत्न किया है, तथा सिर ऊंचा कर, बाहर क्या होरहा है, यह देखनेहीके लिये मना कर दिया है। कितनेही धर्माचार्य प्रजा को वहमी बनानेमेंही अपना हित मान बैठे हैं। नौ वर्षके अन्दर लड़कीका व्याह न करे तो महापाप! मरने पर ब्राह्मणों को न जिमावे तो महापाप! गुरुवचन में श्रद्धा न रखे तो महापाप! परदेश जायतो महापाप! ब्राह्मणका पुत्र भीख मांगनेके सिवाय दूसरा उद्यम करना सीखे, अथवा वैश्यका लड़का गुलामीको छोड़ कर दूसरा धन्धा करे तो घोर पाप है! ऐसे ऐसे पाप घुसेड़ कर लोगोंको इतना संकीर्ण बुद्धि, संदेहयुक्त अज्ञान तथा मूर्ख बना दिया है कि वे अपनी स्थिति विचारने तथा उसे सुधारनेका मार्ग ढूंढनेके लिये कभी तैयार हो ही नहीं सक्ते!!!

प्रथम तो नौ वर्षकी लड़कीका व्याह करनेसे उसको ज्ञान मिलना बन्द हुआ; शरीर खिलना—पुष्ट होना-बन्द हुआ। वह केवल गृहकार्य करने वाली दासी बनकर, कदाचित् २५ वर्षकी उमर होते होते तक २-४ बालकोंकी माता बन जाती है। जो समय संसारका सच्चा आनन्द लेनेका होता है, जो समय उस के ज्ञान, बल, तथा हृदयका सच्चा उपयोग करनेका होता है,

उस समय तो वह चार बालकोंकी खटपटमें पिसी जाती है। उसके पतिको इन बालकोंके कष्ट निवारणार्थ, भविष्यका लाभ विसार कर पेट पूजनके लिये छोटे मोटे कार्यमें लगना पड़ता है। अब विचारो कि ये छुटपनसे टूटे हुए—थके हुए-आशा हीन बने हुए, संसारसे चिढ़े हुए प्राणी, अपना तथा अपने देशका क्या हित कर सक्ते हैं? अरे! इनमें देशोन्नतिके विचारही कैसे आसक्ते हैं? पालनेमें पड़े हुए बच्चेके लिये कुर्त्तेकी आवश्यकता होने पर, उसे खरीदनेकी जिसमें शक्ति न हो, वह मनुष्य पेट पालनेके लिये नौकरी करने जाय कि देशकी स्थिति का ख्याल दिलाने वाली पुस्तकें तथा पत्र बांचने जाय? नहीं आर्यो! यदि मेरा तेरह दिनका उपदेश तुमको न्यायशील तथा विश्वासदायक मालूम पड़ा हो तो इतना खूब समझो कि शरीर तथा बुद्धिके पूर्णतया परिपक्क हुए बिना विवाह करना, विवाह नहीं है पर बेड़ी पहिनना है। देश—कालानुसार जितनी शिक्षाकी आवश्यकता हो उतनी प्राप्त करनेके पहले तथा स्वरक्षणार्थ आवश्यक शरीरबल, कुस्ती और कसरत द्वारा प्राप्त करनेके पूर्व, तथा कमसे कम पांच सात मनुष्योंके कुटुम्बको आसानी से पोषणयोग आमदनी पैदा करनेकी शक्ति प्राप्त करनेके पूर्व व्याह करने वाले पुरुष आत्मघाती तथा देशद्रोही हैं। जो बेचारे पशु, अपनी पशुवृत्ति तृप्त करने ही से समय नहीं पा सक्ते वे देशकी क्या रक्षा कर सक्ते हैं? यदि बहादुर अंग्रेज अभी हम रंक गायों पर राज्य न करते, होते तो हमारी

क्या दुर्गति होती, उसका ध्यान करना भी कठिन है। इस प्रकार जातिने हमें शान्ति प्रदान की है, सुख चैनके साधन दिये हैं, विषयसेवन करनेके लिये हमे स्प्रिंगके ऊंचे पलंग दिये हैं, पचानेमें मुश्किल न हो ऐसे 'फुड्स' (भोजन) दिये हैं, भार न मालूम हो ऐसे 'नोट' दिये हैं और हुनर कला तथा शास्त्रों के माथा फोड़ अभ्यासके बदले, हमारे विद्वानोंको साहित्य—(Literature) का शौक लगा दिया है जो इसमें गोते खाते रहते हैं और अपना जीवन समाप्त करते हैं। विषय वासनाओं को प्रेमका नाम देकर विद्वत्ताका अद्भुत प्रदर्शन करते हुए, इसीमें अपनी जीवन यात्रा समाप्त कर देते हैं।

शोक! हमारे अधिकांश शिक्षित 'घरके कोदों प्यालमें मिलानेवाले' दृष्टि पड़ते हैं। देशोद्धारका विचार तो एक ओर रहा, कई शिक्षित उन भाईयोंको जो कुछ देशसेवा का प्रयत्न करते हैं; अपनेसे आगे बढ़े देख कर उन्हें कण्टक समझ, दूर करानेका जी तोड़ परिश्रम करते हैं और प्रायः सफल-मनोरथ भी होते हैं। ऐसे देशडुबानेवाले दुनियांसे अदृश्य हो जायं तो क्या ही उत्तम हो? रूस-जापान युद्धके समय, जिन जापानियोंने देशद्रोह किया था, उन्हें राजसे कुछ दंड दिये जानेके पहलेही, लोगोंने मुक्केबाजीसे उनको खतम कर दिया था। जापानियोंकी इसी—स्वदेश प्रीतिने उन्हें रूस जैसे समर्थ राज्य पर जय प्राप्त कराई। जापानियोंके इसी स्वदेश प्रेमने उन्हें दुनियांके अग्रसर देशोंकी श्रेणी में गिना लिया और

इसी स्वदेश प्रीतिके नाम पर की गई धूर्त्तता अब हमारे आर्यावर्तको डुबानेका कार्य कर रही है।

महाभारत—रामायण आदि वीररस काव्य तथा गीताजी सरीखी स्वदेश और स्वधर्म दोनोंके रक्षणका उपदेश करने वाली पुस्तकें वांचनेकी अपेक्षा हमारे यहांके अधिकांश लोग, उपन्यास और रसीली कविताएं बांचने तथा फ्रेंच, लेटिन, सीखनेके बहुत शौकीन होते हैं। "जैसा आहार वैसे आचार" जैसी संगति वैसा असर, तथा जैसा पठन पाठन हो वैसेही विचार उत्पन्न होते हैं।

जिसको देश तथा अपना हित करना हो उसे सबसे पहले तो यही नियम करना चाहिये कि, यदि वह कुंआरा हो तो समयकी आवश्यकतानुसार शिक्षा, शरीर बल, तथा लक्ष्मीकी साधना जब तक प्राप्त न कर ले तब तक शादी न करे। एक का भार उठानेकी शक्ति प्राप्त करनेके पूर्व अनेकके रक्षणका भार उठाना कभी हितकर नहीं। शारीरिक बल जिस प्रकार हो सके बढ़ाना चाहिये। यह बल हमें अपने उपकारी राज्य कर्त्ताओंका ऋण चुकानेके काम पड़ेगा, जिस राज्यने हमें लुटेरोंके भयसे मुक्त किया है, उस राज्यको आवश्यकता पड़ने पर शारीरिक बलसे सहायता देकर अपने ऋणसे मुक्त होना चाहिये।

यदि पुरुष २५ वर्षकी आयु तक कुँआरा रहे तो कुँवारियों का क्या हो? तुम्हारे इस प्रश्नके खड़े करनेके पूर्वही मुझे कह

लेने दो कि यह प्रश्न निरर्थक है। पुरुष शीघ्र व्याह करानेकी नाहीं करेंगे तो बालविवाह तथा वर-कन्या विक्रय बन्द होंगे। छोटी छोटी जातियां हो जानेके कारण अयोग्य वरोंको, कन्याएं देना बन्द होगा। स्त्रियां शिक्षित होकर कर्तव्यशील होंगी तथा अपना गृह-कार्य आपही सुधार लेंगी।

बोलना आतेही लड़के लड़कियोंके व्याहकी बात चीत चला कर, हमारे आजकलके हिन्दुस्थानियोंने कौनसा लाभ उठाना विचारा है, सो समझमें नहीं आता! क्या स्त्री सेवनके अतिरिक्त और किसी बातमें आनन्द ही नहीं है? पर अरे, उन बेचारे कुँएके मेंडकके समान लोगोंको क्या मालूम कि, प्रकृति क्या चीज़ है, उसमें कितनी तथा कैसी कैसी खूबियाँ-सुन्दरतायें भरी हुई हैं। ऊँची भावनाओं तथा ऊंचे विचारों (noble feelings and noble thoughts) में कितना आनन्द भरा हुआ है?

जो धर्म तुम्हें नीच विचारका, संकीर्ण दृष्टिका 'कूपमंडूक' वत् तथा संशययुक्त बननेकी आज्ञा देता हो, उस धर्मको जलांजली दे दो। वैदिक तथा जैन, इस देशके प्राचीन धर्म हैं। इन दोनों में से किसीभी धर्मकी मूल पुस्तकें ऐसी संकीर्ण दृष्टि का उपदेश नहीं करतीं। इतना होने पर भी यदि कोई उपदेशक यह उपदेश करे, तो उसे पेट भरनेका रास्ता समझना; किन्तु इन मूल धर्मों को अपमानित न करना। तुम जिस धर्ममें हो, उसीमें दृढ़ रहो, उसमें जो कमी हो उन्हें जाननेका प्रयत्न करो

उनका मूल शोधनेके लिये मथन करो। सत्य क्या होना चाहिये, उसका शोधन करो, और अपने धर्ममें ही रह कर धार्मिष्ठ बनो। वैदिक धर्म कहो या जैन धर्म कहो, कोई अनीतिका उपदेश नहीं करता; वीर्य रक्षाके लिये दोनोंका समान उपदेश है। वेदानुयायिओंके लिये श्रीकृष्णने, अर्जुनको युद्ध करनेका तत्व-ज्ञानी उपदेश गीता द्वारा दिया है, तथा जैनोंके सूत्रमें वर्णन किया है कि वरणानागनतवाने: देश रक्षणके लिये उपवास का पारण करना छोड़नेको भी कमर कसी थी तथा विजय प्राप्त करनेके लिये देह त्याग की थी।

मातृभूमिका प्रेम, संसारके सब धर्मों और देशोंका आदर-णीय पुष्प है। उस पुष्पको उखाड़ कर फेंक देनेकी, किसीमें भी हिम्मत नहीं। जो संसारसे विरक्त हो गये हैं—जो ब्रह्म और मोक्षकी साधनामें लगे हैं—जिनको संसारके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है, उन लोगोंको छोड़ कर, संसारमें कोई भी ऐसा विचार शील पुरुष नहीं है कि जिसको स्वदेशाभिमान न हो।

हमारे स्वदेशप्रेम में बाधा डालने वाले कई कारण है। सबसे बड़ा तथा पहला कारण तो बिना शक्ति प्राप्त किये लग्न (विवाह सम्बन्ध) करना है। दूसरा कारण है बिना धन्धे के उन अशक्त उपदेशकों का जो जहां तहां विषयी भक्ति तथा आलस्य का उपदेश करते हैं; जिस को अज्ञान लोग बहुत आसानी से मान लेते हैं। ऐसे उपदेशक, जो बड़ा भयंकर पाप

करते हैं वह यह है कि, एक धर्म वाले को दूसरे से लड़ा मारते हैं। मुसलमान काफिरों को मारने में मोक्ष की प्राप्ति समझते है, जैनों का अमुक भाग, अपने ही दूसरे भाग को दुख पहुंचाने में धर्म मानता है; वैष्णव, शैवों की निंदा करने ही में अपना कल्याण का मार्ग मान बैठे हैं, परन्तु ये देशद्रोही यह नहीं जानते कि क्लेश में धर्म बतलाने वाले लोग धर्म के योग्य ही नहीं हो सक्ते। धर्म पुस्तकें केवल तुम्हारी बुद्धि का विकाश करने वाली साहित्य हैं; पश्चात् तुम्हें जो रुचे सो करो। जैनों के उपवास से ही कुछ मोक्ष नहीं मिलता, विष्णु की भक्तिही से कल्याण नहीं होता; मुसलमानों को यकीन लानेही से जिन्नत नहीं मिलती, इन सब का तत्व समझने की अवश्यकता है, और उसके समझने के पश्चात् हमको जो अनुकूल हो वह काम करना योग्य है।

धर्म के नाम पर लड़नेका उपदेश करने वालों को मानने वाले लोग समझते नहीं हैं कि, संसार में पांच पचास ही धर्म नहीं है पर जितने मस्तिष्क हैं उतने ही धर्म हैं। एक ही धर्म पुस्तक को छः मनुष्य पढ़ें तो उन छओं में अन्तर पडेगा 'अहिंसा परमो धर्मः, इसी एक वाक्य को एक मस्तिष्क इस रूप में समझेगा कि बिना कारण जीव को नहीं मारना चाहिये, मनुष्य के उपयोग के लिये उसे मारना चाहिये। दूसरा मस्तिष्क ऐसा अर्थ निकालेगा कि, धर्म के लिये मारना पड़े, उसे छोड़कर दूसरे कारण से न मारना चाहिये; और तीसरा

मस्तिष्क यह समझेगा कि, किसी कारण से भी न मारना चाहिये; इस प्रकार धर्मों मत भिन्न भिन्न होंगे। सूत्र एक होने पर भी धर्म भिन्न भिन्न होगये, तो क्या एक दूसरे को गाली देना चाहिये? तुम्हारे घर में तुम्हें अरहर की दाल पसन्द है, तुम्हारी पत्नी को उर्द की; तुम्हारी माता मूंग की चाहती हैं और तुम्हारे पिता को हरा शाक रुचता है, तो उसके लिये क्या तुम अपने पिता को मूर्ख कहोगे, पत्नी को क्या रांड कहोगे और माता पर क्या लकड़ी उठाओगे?

धर्म अथवा संसार सुधार के किसी विषय पर मतभेद हुआ तो होने दो, परंतु इस से विरोधी मत बनो, शत्रु मत बनो; परंतु देशहित की बातों में हाथ बंटाकर सुलह पूर्वक काम करो; यही देशभक्तों का भूषण है।

देशकी दशा सुधारने के इच्छुकोंको पहले अयोग्य लग्नों की रीतिको, जड़से उखाड़नेके लिये कटिबद्ध होना चाहिये, फिर आजकल जैसे बम्बईमें ठौर ठौर पर 'हिन्दूहोटल' तथा 'विश्राम-गृह' बने हुए हैं वैसे ही अखाड़े तथा व्यायाम शालाएं, स्थान स्थान पर स्थापित करना चाहिये। उनमें शिक्षा देकर, प्रजाको हिम्मतवर, दृढ़, तथा धैर्यशील बनाना चाहिये, इससे विद्या प्राप्त करने की शक्ति भी बढ़ेगी, भविष्य की सन्तान भी शक्तिशाली उत्पन्न होगी; छोटी छोटी बीमारियां अदृश्य होंगी और पैदा करने की शक्ति भी बढ़ेगी। उसके पश्चात् विद्याके प्रचारके लिये ग्राम ग्राममें शालाएं स्थापित करनी चाहियें। जिन ग्रामोंमें

सरकारी शालाएं न हों वहां देशी पाठशालाएं खोलना चाहिये। प्रत्येक लड़के तथा लड़की को आवश्यक शिक्षा देना चाहिये, जहां हो सके वहां सर्कारी शालाओंके समयके उपरान्त, 'प्राइ-वेट' रीतिसे एक घंटा स्वदेश तथा स्वधर्म की स्थितिका भान कराने वाली तथा उनके सुधारके उपाय सूचित करने वाली पुस्तकोंका अभ्यास करानेके लिये प्रबन्ध होना चाहिये। कई स्थानों पर महाभारत की परीक्षा देनेका प्रबन्ध हुआ है सो उत्तम काम है। परन्तु इसी प्रकार धर्मज्ञान देनेके लिये एक घंटेका प्रबन्ध भिन्न भिन्न धर्म वालों की ओरसे होना चाहिये सरकारने हम पर बहुत उपकार किया है उसीके सिर पर अधिक बोझ रखना कृतघ्नता होगी। हमको अपना कर्तव्य समझना चाहिये। हमारे श्रीमन्तों की लक्ष्मी किस कामके लिये है? क्या उस लक्ष्मी पर हमारा स्वत्व नहीं है? क्या वे अपनी मांके उदरमेंसे निकलते ही उस लक्ष्मीको, साथ बांधे हुए लाए थे? तुम्हारे दस रुपया वेतन पर किये गये काम द्वारा पचास रुपया कमाने वाले सेठ लोग, लाखों रुपया इकट्ठा कर बैठ रहें और तुम्हारे स्त्री, बच्चे तथा तुम बीमार पड़ो तब तुम्हारा कुटुम्ब चिल्लाये, दुखित होवे तथा कष्ट पावे, उस समय तुम्हारे परिश्रमसे श्रीमान् बना हुआ सेठ, लता मंडपमें पड़े हुए कोमल कोच—पलंग—में, बैठकर, सुन्दरीके गीत सुनता हो, तथा तुम्हारी विपत्ति पर ध्यान भी न देता हो तो ऐसे सेठ के लिये, क्या अराजक खड़े न होवें? इसका पैसा, इसके दुःखी

सेवकोंके कार्यमें तथा स्वदेशी बन्धुओंके काममें न आवे और केवल उसीकी वासना तृप्ति ही के उपयोगमें आवे तो क्या यह बड़े गजबकी बात नहीं है ? ऐसे सेठ, नहीं नहीं शठ, आर्यावर्तमें न हों, तो बहुत उत्तम है ! महान् अंग्रेज योद्धा नेलसनने मरते समय कहा था कि, England expects every one to do his duty. योद्धाओं की जननी आर्य भूमि भी अपने पुत्रोंसे कहती आई है कि,

जननी जन तो भक्त जन, या दाता या सूर।
नहिं तो रहना बांझ ही वृथा गमा मत नूर॥

स्वदेशियोंके पाससे तथा स्वदेशियोंके भुजाके परिश्रमसे प्राप्त किया गया पैसा, स्वदेशियोंके उद्धारके अर्थ ही खर्च किया जाय, जिससे खर्च करने वालेको करोड़ गुणा यश मिले, अपने भाइयोंको सुखी देखकर, मनको आनन्द प्राप्त हो, परलोकके लिये पुण्य सञ्चय हो ; इससे अधिक और क्या चाहिये सो क्या कोई बताएगा ?

श्रीमन्तो ! तुम भोग विलास, गाड़ी घोड़ा तथा बाग बगीचेका शौक छोड़ दो । तुम हरामके खानेसे बाज़ आओ ; देशसे प्राप्त किया गया पैसा, स्वार्थ में—नीच स्वार्थमें—लगाओगे तो एक दिन तुम्हें उसका हिसाब देना पड़ेगा । उस समय उस उड़ाए हुए पैसेको व्याजसहित चुकाना पड़ेगा, तब कहांसे ला सकोगे, इससे जब तक तुम्हारे हाथमें बाजी है चेत जाओ । अंग्रेज, अमरीकन जर्मन तथा जापानियोंको देखो ! वे हुनर-

कलामें आगे कैसे बढ़े हैं? राज्यकी सहायतासे। जापानके राजाने, अपने देशमें 'मिल'—करखानों—का उद्योग जारी करनेके लिये निश्चय किया कि, जो मनुष्य 'मिल' स्थापित करेगा उसे सरकार प्रति करघे पर पाँच रुपया वार्षिक सहायता देगी। जो ऐसी भरपूर सहायता मिले तो हुनरका शोधन क्यों न किया जाय? जर्मनीमें शिक्षा प्रचारके लिये, सरकार अरबों रुपया व्यय करती है। वहांके एक शालागृहका वर्णन सुनो तो तुम्हारे होश उड़ जायं। तुम्हारे रजवाड़ोंका महल इस शालागृहके आगे तुच्छ है; और यह सब राजा की सहायतासे ही हुआ है; परन्तु अपने अभागे हिंदवासियोंको शिक्षा की आवश्यकता नहीं है, इतिहास की ज़रूरत नहीं है; हुनर, कला की ज़रूरत नहीं है, कवायद सीखने की आवश्यकता नहीं हैं; बस रक्षण करने वाले तथा तैयार वस्तुएं बना बना कर घर तक पहुंचा देने वाले बहादुर अंग्रेज अमर रहें!

जबतक सरकार इस कार्यमें उत्तेजना देनेको तैयार नहीं है तबतक हमारे धनिकोंको, किस लिये आशा लगाए बैठे रहना चाहिये? क्यों न बहुतसे ताताओंको इस कार्यमें हाथ डालना चाहिये? क्यों बहुतसे देशभक्त गायकवाड़ उत्पन्न न होना चाहियें? देशी रजवाड़े जब नीच जाति की रण्डियोंके साथ व्यभिचारमें रुपया फूंकते हैं तब क्या वे उसके लिये 'पोलिटिकल एजेंट' की आज्ञा लेते हैं? कई गृहस्थ लोग एक मकानके रहते हुए भी चार और बाँधनेको दौड़ते हैं तब क्या वे पैसे की पर-

वाह करते है ? प्रश्न केवल मनका है—प्रश्न केवल स्वदेशाभिमानका है। प्रश्न केवल मनुष्यत्वका है। जिनमें मनुष्यत्व—जिनमें हिंदूपन, जैनपन या मुसलमानपन अथवा पारसीपन है, जिनमें ईश्वरप्रेम है, जिनमें बन्धुभाव है, जिनके हृदयमें, उत्तम विचारोंके लिये, कुछ भी स्थान है, वे लोग तो स्वदेश, हितके लिये, द्रव्य खर्च करनेमें, कभी आनाकानी करेंगे ही नहीं; और जहां ऐसा हुआ वहां शिक्षा और कला का, धर्म तथा तत्व ज्ञानका, फैलाव घर घर हो जायगा, और अपने प्रति, अपने कुटुम्बयोंके प्रति, अपने देशवासियोंके प्रति, अपने स्वधर्मियोंके प्रति तथा अपने राज्यकर्त्ताके प्रति अपना क्या कर्तव्य है, यह प्रत्येक मनुष्य समझेगा और यह समझ—यह ज्ञानका प्रकाश ही उसे सब प्रकारके भ्रम—सब प्रकारकी आपसकी फूट सब प्रकारके डरपोकपन, सब प्रकारके स्वार्थपन और सब प्रकारके अधर्मसे दूर करेगा और आर्य धर्म तथा आर्य देशका उद्धार होगा। भाग्य शाली आर्यो! आर्य भूमिमें जन्म लेना ही बड़े भाग्य की बात है, इस लिये आर्यो! अपनी प्रातः काल की प्रभु प्रार्थनाके समय तथा ध्यान करते समय तुम ऐसी प्रार्थना करो तथा ऐसी भावना भावो कि, तुम्हारे प्रत्येक भाई बहिन, ज्ञान पावें, बल पावें तथा ज्ञान और बलका सदुपयोग करनेकी इच्छा प्राप्त करें! अस्तु बोलो श्री आर्य भूमिकी जय! बोलो श्रीमहावीर, श्रीकृष्ण, राम बुद्ध, विक्रम, भोज, चन्द्रगुप्त, अशोक प्रताप तथा शिवाजी की जननी श्रीआर्य भूमिकी जय!!

चौदहवां दिवस.

मृत्युसे मत डरो।

"Home at last thy labour done
Safe and blest, the victory won."

पूर्ण हुआ तव कार्य सुखी हो घरको जाओ।
विजयी हो सब भाँति, न भय कुछ मनमें लाओ॥

प्रिय वन्धुओ तथा भगनिओ! मेरी उपदेश श्रेणी आज समाप्त होगी। आज मैं तुम्हें एक अत्यन्त आवश्यक उपदेश देकर, दूसरे स्थानको जाने की इच्छा करता हूं।

इस संसार सागरके अहर्निश वहते प्रवाहमें, किसीको लाखों, किसीको सहस्रों, किसीको सैकड़ों, और किसीको इससे भी कम वर्षों की यात्रा करना पड़ती है। यात्राके बीच, संध्याके काले बादल समान आपत्ति और मृत्यु निकट आते देखकर, जीवन रूपी नौकाके यात्री (अर्थात् मनुष्य प्राणी) भयभीत होते हैं, घबराते हैं, और कहते हैं कि, "हमारा उज्ज्वल प्रभा-पूर्ण सुखमय दिवस व्यतीत हो गया, और अब अन्धकारमयी दुखदायिनी रात्रिका आरम्भ हुआ है! हा! अब क्या होगा!"

"क्या होगा?" यह दुखपूर्ण प्रश्न कैसे अविचार और

ओछी बुद्धिसे भरा हुआ है ? रात्रिके बारह बजने ही वाले हैं, दुःखके दिन जाने ही वाले हैं, मृत्यु की घड़ी व्यतीत होने ही वाली है, और सब प्रकृतिको नवीन बनानेके लिये आनन्द, किरणोंसे पूर्ण प्रातः काल भी अवश्य ही उदय होने वाला है।

रात्रिरूपी दुःख तथा मृत्युको अन्तिम स्थिति माननेसे ही, उसे दुःख प्राप्त होता है। यदि कोई इतना समझ ले कि "दो दिनोंको जो मिलाती है सो ही रात्रि है, दो सुखोंको जो जोड़ता है वही दुःख है, और दो जन्मोंका जो मेल कराती है सोही मृत्यु है," तो इन तीनोंमें जो भयका भूत भरा हुआ है वह तुरन्त ही 'निज परछाईका भूत' बन जावेगा।

साधारण रीतिसे यों समझिए कि इस दिखते हुए संसार में ऐसी धारणा है कि जो वस्तु अधिक बार काममें आती है और जिसका अधिक परिचय हो जाता है, उससे थकावट आती है—और कुछ नहीं तो उससे आनन्द मिलना तो बन्द ही हो जाता है। इस शरीरका सहवास पांच, पच्चीस या सौ वर्ष तक रहनेसे उसके द्वारा नाकों दम आनेके पूर्व ही, यदि मृत्यु मित्र दूसरे गृहमें मेरा वास करानेके लिये मेरे पास आवे तो क्या मुझे, उसकी इस दया पर, गाली की बौछार या शोक करना चाहिए ?

मैं जिस शरीर रूपी गृहमें वास करता हूं; उसके साथ मुझे कुछ लेना देना नहीं है. मैं तो इसका प्रेक्षक-द्रष्टा-ज्ञाता-पड़ोसी हूं। अमुक कार्य की सिद्धिके लिये मैंने उसमें वास किया है।

जहां उस कार्य की सिद्धि हुई कि वह स्थान छोड़कर अपना मार्ग लिया, फिर, मुझे शोक करनेका कारण ही क्या रहा ?

फिर यदि कार्य सिद्धि करनेमें त्रुटि हुई हो, तो मुझे खेद होना चाहिए ; परन्तु यह खेद उसके घर, या घरके सम्बन्धियोंके वियोगके लिये नहीं, किन्तु सामग्रियोंका सुपास होते हुए भी, यह यात्रा सफल न हुई ; इसलिये ही खेद होना चाहिए। पर देखो, आशा की एक किरण अभी भी अन्धकारमयी रात्रिके आकाशमें चमक रही है ; मृत्युके अल्प समयमें भी अभी तू कार्य सिद्धि कर सकता है। ज्ञानी लोग कह गये हैं कि थोड़ेसे समयमें भी कार्य सिद्धि हो सकती है।

हां, ठीक बात है कि जो भवाभिनन्दी प्राणी इस 'घर' तथा उसके 'खेल' को अपने साथ सम्बन्ध रखता हुआ मानते हैं वे ही मृत्युको समीप देखकर, 'हाय,' 'हाय' करते हैं ; परन्तु उन्हें केवल व्यवहार दृष्टिसे ही विचारना चाहिए कि—

"मृत्यु जो पीड़ा देती है सो आत्माको अमृतसंग (निर्वाण का सहवास) कराने हीके लिये ; जैसे मिट्टी जब कुम्हार द्वारा पीटो जाकर तथ अग्निमें पकाई जाकर घड़ेका रूप धारण करती है, तबही वह ठंढा जल, अमृत, पाक आदि उत्तम पदार्थोंका सहवास पा सकती है।"

मित्रो ! तुम सामान्य दृष्टिसे देखो कि इस संसारमें हम प्रत्येक बनाव को सन्तोष तथा सहिष्णुतासे सहन कर सकते हैं। यह सत्य बात है तो भी उसमें आधि व्याधि तथा उपाधि

कितने प्रकार की भोगनी पड़ती हैं ? तो, उनमें सुख मान बैठना तथा उस स्थितिको छोड़नेका प्रसंग आया जान, शोक करना, क्या भारी भूल नहीं है ?

जब तक तुम इस घरमें हो तब तक अपनी कार्य सिद्धिके लिये प्रयत्न किये जाओ और वैसा करनेमें जो तुम्हारे 'घर' कुछ धक्का भी लगे तो भी उसकी परवा मत डरो। महा-पुरुषोंका कथन है—

"मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखं" भारी युद्ध होते हैं, उस समय सैंकड़ों बल्कि हज़ारों योद्धाओंको जख्म लगते हैं, वे उन की कुछ भी परवा नहीं करते पर राजा की रक्षा करनेमें कटिबद्ध रहते हैं। जब घरमें आग लग जाती है, तब उस समय उसकी आरायश की चीज़ों की कोई भी परवा नहीं करता ; उसमें रहने वाले मनुष्योंको बचानेके लिये लोग दौड़ धूप करते हैं। उसी प्रकार जबतक तुम इस 'घर'में हो तब तक यही न्याय याद रक्खो, और जब यह शरीर रूपी 'घर' छोड़नेका समय आवे तब आनन्दसे मृत्युका आलिङ्गन—स्वागत—करो।

बहुतसे विद्वान् 'जीना' सीखनेका उपदेश करते हैं ; परन्तु बहुत ही थोड़े महापुरुष 'मरना' सिखला सकते हैं।

प्यारे बन्धुओ ! चार सौ पांच सौ मनुष्योंका मेला देखकर तुम्हें आश्चर्य होता है ; किन्तु देखो, यह असंख्य परमाणुओंका मेला तुम्हारे निवासके लिये हुआ है। एक प्रेक्षकके समान

तुम उसकी लीला देखकर अथवा जैसे नाटक देखने वाले खिलाड़ियों की कूदफांद, लड़ाइयां, नाच चुम्बन तथा हावभाव देखकर, किसीसे अपनेको सुखी दुःखी न मान कर, खेल समाप्त होते ही हँसते और 'वाह' 'वाह' करते घर जाते हैं, उसी प्रकार तुम भी इस संसारी मिलाप की लीला देख, खेल समाप्त होने को घण्टी बजते ही हँसते, खेलते शीघ्रतासे निकल जाओ।

जिन्हें 'मरना' आता है और जो 'समाधि-मरण' की विशेषता जानते और समझते हैं, उनके लिये शास्त्रका वचन क्या है, सो एक श्लोकमें सुनाकर इस अन्तिम व्याख्यानको समाप्त करता हूं :—

स्वर्गादेत्य पवित्र निर्मल कुले सस्मर्यमाणा जनैः।
दत्वा भक्तिविधायिनां बहुविधं वाञ्छानुरूपं धनं ॥
भुक्त्वा भोगमहर्निशं परकृतं स्थित्वा क्षणं मंडले।
पात्रावेश विसर्जनामिव शिवं संतो लभंते स्वतः ॥

अर्थात् जो लोग भयरहित और उत्साहित हो चार आराधना करके मृत्यु का स्वागत करते हैं उनको निश्चय पूर्वक स्वर्ग लोक प्राप्त होता है—उनकी कोइ दूसरी गति नहीं होती। वे स्वर्ग में दीर्घ आयुष्य तथा अनन्त सुख भोगकर फिर मनुष्य लोक में किसी निर्मल कुल में जन्म लेते हैं; और जिस प्रकार नाटक करने वाले क्षणिक नाच कूदकर दर्शकों का मनोरंजन कर चले जाते हैं, उसी प्रकार वे भी, मनुष्य समाज को सन्तुष्ट कर संयमादि सहित निर्वाण के मार्ग को प्राप्त करते हैं।

॥ शुभम् भूयात् ॥

प्रेमोपहार

Truth, Beauty & Joy.

सम्पादक व प्रकाशक,—

कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन.

आरा।

मुद्रक—महावीर प्रसाद पोद्दार,
"वणिक प्रेस" ६० ...

हमारी शिक्षा पद्धति

लेखक—
कैलाशचन्द जैन शास्त्री

जैन मित्र मंडल धरमपुरा देहली।

गत सोलह वर्षसे देहली में स्थापित है, और जैनसमाज, जैनधर्म की हर सम्भावना रीति से महत्व पूर्ण सेवा कर रहा है। इसके उज्वल कार्य भली प्रकार विदित हैं। धर्म का प्रचार करना इसका मुख्य उद्देश है मंडल की तरफ से इस समय तक ८० ट्रैक्ट प्रकाशित हो चुके हैं। जिनकी प्रकाशित संख्या २००००० के निकट पहुँच चुकी है ट्रैक्टों की मांग हिन्दुस्तान के भिन्न भिन्न देशों के अतिरिक्त विदेशों से मसलन लन्दन, जरमनी, इटली, अमरीका, स्वीटजरलैंड, नारवे आदि से बराबर आती रहती हैं। ट्रैक्टों की समालोचना जैन व अजैन पत्रों में बराबर होती रहती है। अतः प्रार्थना है कि जिन महानुभावों को धर्म से प्रेम है और जैन धर्म का बोध प्राप्त करना चाहते हैं। वह स्वयं इसके सभासद बनें और अपने मित्रों को सभासद बना कर मंडल के कार्य कर्ताओं को उत्तेजना दें।

फीस सभासदी ३) रु० सालाना है। प्रकाशित ट्रैक्ट सभासदों को मुफ्त भेंट किये जाते हैं। मंडल की तरफ से इस वक्त जो ट्रैक्ट वास्ते बिक्री मौजूद हैं उनकी फहरिस्त इस ट्रैक्ट में मौजूद है।

धर्म के प्रेमियों से निवेदन है कि ट्रैक्ट मंगाकर धर्म का प्रचार करें और दुनियां को दिखला दें कि जैन धर्म में क्या क्या जौहर हैं।

मन्त्री—

जैन मित्र मंडल देहली।

ट्रैक्ट नं० ८३

* वन्देवीरम् *

हमारी शिक्षा पद्धति

लेखक—
पं० कैलाशचन्द जैन शास्त्री
धर्माध्यापक स्याद्वाद महाविद्यालय
बनारस

प्रकाशक—
मंत्री जैन मित्र मंडल धरमपुरा
देहली।

—o*o—

प्रथमवार	फरवरी सन् १९३२	मूल्य
१०००	वीर नि० सं०२४५८	=)

विक्टोरिया क्रास प्रेस, दरियागंज देहली।

भूमिका

श्रीयुत पं० कैलाशचन्द्रजी ने कोई ५० पृष्ठ में "हमारी शिक्षा-पद्धति" शीर्षक एक निबन्ध जो अभी तैयार किया उसे मैंने आद्योपान्त पढ़ा। उसमें शिक्षा-सम्बन्धी जो विचार प्रकट किये गये हैं वे लेखक महोदय की विचारशीलता के द्योतक हैं। आपने आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के दोषों और तज्जनित सामाजिक मानसिक कायिक आर्थिक तथा धार्मिक कुपरिणामों पर-अच्छा प्रकाश डाला है। आपकी सम्मति में आडम्बर-रहित आध्यात्मिक शिक्षाका बहुत बड़ा महत्त्व है और भारतीय शिक्षा-शैली में उसका समावेश आवश्यक है। स्त्रियों के लिये भी आपने बी० ए०, एम्० ए० की नहीं, किन्तु शिशु-पालन तथा गृह-प्रबन्ध सम्बन्धिनी शिक्षा की राय दी है। आपकी राय से एतद्देशीय पुरानी शिक्षापद्धति ही में यदि उचित संस्कार कर दिया जाय तो वह सर्वथा अनुकूल होगी। आपके विचार गम्भीर हैं, अन्य लोगों के वाक्यों के प्रमाण भी दिये गये हैं। निबन्ध मनन करने के योग्य है।

लेखक महोदय के इस निबन्ध का विशेष लक्ष्य है प्रस्तावित जैन—विश्वविद्यालय के प्रमाणों को शिक्षापद्धति के विषय में सचेत कर देना, ताकि वे आधुनिक चटक-मटक के लोभ में जैन-संस्कृति तथा भारतीय संस्कृति को न खो बैठें। आपका यह प्रयत्न श्लाघ्य है॥ शुभम्॥

चंद्रमौलि सुकुल, वाइस-प्रिंसिपल
टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, बनारस। १३–१–३२

अशुद्धियों का शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	२	आवश्यक्ता	आवश्यकता
,,	११	चारित्रहीन	चरित्रहीन
२	६	बीज़	बीज
४	६	शुसोभित	सुशोभित
,,	,,	नामाङ्गित	नामाङ्कित
५	२०	,,	,,
,,	१	अशिक्षित ?	अशिक्षित
,,	२	तैय्यार	तैयार
,,	१६	लगन चुम्बी	गगन चुम्बी
८	३	सिद्धन्तों	सिद्धान्तों
,,	२१	भांगता	भागता
,,	,,	वो ही	वही
६	१५	जिवित	जीवित
,,	२४	ह नी	होनी
११	१०	सुकमार	सुकुमार
१५	११	मे	में
२०	२०	के बल	केवल
२१	१४	स्वास्थ	स्वास्थ्य
२३	८	स्थापित्त	स्थापित

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२४	४	दैश	देश
२४	१५	कहतं हैं—"कि	कहतं हैं—"
२५	२२	जी उत्तर दिया	जी नं उत्तरदिया
२७	११	दयनिय	दयनीय
३२	२	सम्पक दर्शन	सम्यक दर्शन
३२	५	दयोतन	द्योतन
३२	१३	वर्जति	वर्जित
३३	१	गृस्थाश्रम	गृहस्था्रम
३५	२१	अव्यय	अपव्यय
३६	१६	वन्चित	वंचित
३७	१३	रूक	रुक
३६	१५	प्रचीन	प्राचीन
३६	१५	ग्रहस्था	ग्रहस्थों
४१	६	पुर्व पुरुष	पूर्व पुरुष
५१	८	संस्कृत	संस्कृति

हमारी शिक्षा पद्धति

शिक्षा की आवश्यक्ता

संसार की सब उन्नति और सुख का मूल शिक्षा ही है । प्राचीन और नवीन सबही विद्वानों का यह कहना है कि शिक्षा ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है । बिना शिक्षा के मनुष्य पशु तुल्य समझा जाता है । जिस देश में जितना अधिक शिक्षा का प्रचार होता है वह देश उतना ही अधिक समृद्धिशाली गुणवान और शक्तिवान होता है । जिस जाति में शिक्षा का अभाव है वह दुःखी दरिद्री और चारित्रहीन होती है । वर्तमान राष्ट्रों के जनसमुदाय की परीक्षा करने से ज्ञात होता है कि मूर्ख लोगों में ही अधिक दोष रोग और अकर्मण्यता देखी जाती है । देश से पाप दुःख और दरिद्रता दूर करने का उपाय केवल यह है कि सर्व साधारण में शिक्षा प्रचार किया जाये । अन्धकार में खड़ा हुआ मनुष्य अपने समीप में रक्खी हुई

वस्तुओं को भी नहीं देख सकता है उसी प्रकार शिक्षाविहीन मनुष्य सुख की सब सामग्री रहते हुवे भी उसका उपयोग नहीं कर सकता।

आज दिन भारतवर्ष में इंग्लैंड, जर्मनी, अमेरिका आदि देशों मे बनकर आई हुई हज़ारों प्रकार की चीज़ें वहां की उन्नति को प्रगट करती हैं जिन्हें हम लोग बड़े आश्चर्य के साथ ख़रीद कर करोड़ों रुपया विदेश भेज देते हैं। इस उन्नति का मूल कारण जनसमुदाय में शिक्षा प्रचार ही है। यदि हमारे देश के कोने कोने में इसी प्रकार शिक्षा के बीज़ बोये जायें तो क्या हम लोग भी उसी प्रकार उन्नति नही कर सकेंगे ? अवश्य कर सकेंगे। यूरुप के देशों में कुली, बढ़ई, नाई, तेली, तम्बोली, चमार सबको ही कुछ न कुछ शिक्षा दी जाती है और यही कारण है कि वहां के छोटे छोटे लोग भी अपना जीवन प्रसन्नता तथा शान्ति के साथ व्यतीत करते हैं और उनका बनाया हुवा सामान बहुत उम्दा सुडौल और ग्राहकों को अपनी ओर आकर्षित करने वाला होता है। हमारे देश की छोटी जातियों की बात तो जाने दीजिये, उच्च जातियों में भी वास्तविक शिक्षा का अभाव देखा जाता है।

कुछ लोगों का मत है "कि यदि मजदूरी मेहनत करने वाले लोगों को शिक्षा दी जायगी तो वे आपे से बाहिर होजायेंगे—मजदूरी करना छोड़ देंगे। जिससे उच्च जातियों को बड़ी तकलीफ उठानी पड़ेगी।" हम उन लोगों से पूछते हैं—क्या जापान आदि देशों में शिक्षित मजदूरों ने मजदूरी करना छोड़ दी, या वे पहिले से भी अधिक दत्तचित्तता के

साथ अपना अपना कार्य करते हैं ? हम देखते हैं कि यूरुप के मजदूर जो पहिले १) रु० प्रतिदिन पैदा करते थे शिक्षित होने पर ४, ५, रुपये तक कमाते हैं। हमने यात्रा में कई बार देखा है कि अशिक्षित कुली की अपेक्षा शिक्षित कुली मुसाफिरों के साथ अच्छा बर्ताव करते हैं। और यदि मजदूर लोग थोड़ा बहुत पढ़ जाने के बाद मजदूरी करना छोड़ देंगे तो खायेंगे क्या। हां—उनके शिक्षित होजाने पर इतनी हानि उच्च लोगों को अवश्य उठानी पड़ेगी कि फिर वे लोग अपने को उच्च कहने वालों के अत्याचार न सह सकेंगे। किन्तु इस थोथे स्वार्थ का त्याग करने से देश को जो लाभ होगा वह वर्णनातीत है। सारांश यह है कि विद्या के प्रचार से हानि कभी नहीं हो सकती। विद्या अमृत है उसमें सब का अधिकार है किन्तु विद्या दान प्रत्येक मनुष्य को उसकी रुचि तथा व्यवसाय के अनुकूल होना चाहिये जैसा कि आगे चल कर ज्ञात होगा। जिस प्रकार आजकल मिल मालिक शिक्षा के बल पर अपना जीवन चैन से बिताते हैं मजदूर लोग भी शिक्षित होने पर सब काम उत्तरदायित्व पूर्वक करेंगे, अपने बाल-बच्चों का पालन सफाई से करेंगे। समाचार पत्र पढ़कर देशकी दशा को जानेंगे, जन्मभूमिके प्रति अपना कर्तव्य समझेंगे और अपने २ व्यवसाय में उन्नति करेंगे। तथा यह है कि हर पेशा वाला मनुष्य चाहे वह नीच हो या उच्च अपनी दशा में कुछ न कुछ अवश्य सुधार करेगा और उनका सुधार होने पर देश का अवश्य सुधार होगा क्योंकि अनेक व्यक्तियों की समष्टि को ही देश कहते हैं।

हमारे शिक्षित

इस प्रकार हम देखते हैं कि देश या समाज के उत्थान के लिये शिक्षा की बड़ी आवश्यकता है किन्तु जिस समय हम अपने देश के शिक्षित कहे जाने वाले व्यक्तियों के आचार और व्यवहार पर दृष्टिपात करते हैं तब हमारा संकल्प छिन्न भिन्न हो जाता है। जिस ओर देखिये उस ओर ही हैट पतलून धारी नाना प्रकार के मूँछ श्राद्ध से शुसोभित "बाबू" उपनामाङ्कित साहब लोग दृष्टिगोचर होते हैं। दया, विनय, परोपकार आदि सद्गुण तो प्रायः इन्हें छूते भी नहीं। यह विचित्र जन्तु यदि कभी किसी ट्रेन में सफर करते हुए मिल जायें फिर देखिये इन की बहार, भाषा-हिन्दी अंग्रेजी की खिचड़ी, वेश हंस- के पर खोंस कर हंस बनने की इच्छा रखने वाले काक की नाई, सफ़र तीसरे दर्जे में। बिचारे देहाती मुसाफिर इनको साहब समझकर सीट छोड़ खड़े होजाते हैं और यह लोग उसपर मज़े में लोट लगाते हैं चाहे कोई मरो या जियो, इनकी बला से (जब से स्वदेशी आन्दोलन ने जोर पकड़ा है ऐसे नज़ारे पहिले की अपेक्षा कुछ कम दृष्टि गोचर होते हैं) जब बाबू सा० घर पहुंचते हैं तो काले आदमी से बात नहीं करते। देश की दुर्दशा पर ध्यान देने का उन्हें समय ही नहीं मिलता। यदि कोई उनके सामने चर्चा भी करता है तो You (टुम) लोग इसी योग्य है" कहकर अपने भाइयो की दुर्दशा पर खिल्लियां उड़ाते हैं। भारत के प्राचीन महा पुरुषों को—अपने पूर्वजों को अनार्य ढोंगी आदि नामों से सम्बोधित करते हैं। उधर देहात में जाइये

तो विचारे अशिक्षित? देहाती लोग, अतिथि की सेवासुश्रूषा करते हुवे नहीं अघाते। समय पर प्राण देने तक तैय्यार रहते हैं। दिन भर कठोर परिश्रम करते हैं तब कहीं एक जून भोजन पाते हैं। मोटा खाते है मोटा पहिनते हैं। उनमें से यदि कोई कुछ संपन्न हुवा और उसने हाकिम (officer) बनाने की इच्छा से अपनी सन्तान को किसी स्कूल या कालिज में पढ़ने के लिये भेज दिया तो बस वह अपनी सन्तान से ही हाथ धो बैठा। अब जब बाबू सा० छुट्टियों में घर पर तशरीफ लाते हैं तो विचारा बाप "बेटा आया है" कहकर पुत्र प्रेम से पागल हो जाता है। और सुपुत्र बाबू सा०-पिता के पैर छूना आदि विनय दिखाना तो एक ओर-उलटे सामान भी उनहीं के कन्धों पर रख देते हैं। मानो पिता नहीं, कोई कुली है। अब उन्हें देहात में दो महीना भी काटना भारी होजाता है। गांव उजाड़ सा प्रतीत होता है और अपना प्यारा घर-जिसमें उन्हों ने अपना बाल्य जीवन बिताया था खण्डहर दिखाई देने लगता है सच पूछा जाय तो चित्त लगे भी क्यों कर? न शहर की सी चहल पहल है न घूमने के लिये कोई पार्क और न आंखें सेकने या दो घड़ी दिल बहलाने के लिये कोई सिनेमा थ्येटर या और कोई ऐसी ही चीज़। कहां लगन चुम्बी "होस्टल" नागाङ्कित राजप्रसादों में निवास और कहां यह कच्चे झोंपड़े। गांव के लोग मिलने आते हैं तो बाबू सा० मुहं फेर लेते हैं। घरका कोई कार्य आप कर नहीं सकते क्योंकि इसमें शान जाती है। होस्टलों में तो धोती धोने तक केलिये नौकर रहते हैं। बाबू साहब का आर्डर होते ही कमरे में भोजन का थाल

पहुँच जाता है खाना खा चुकने पर फ़ौरन उठ जाता है यहां वह ऐशो अशरत कहां। बिचारा गरीब बाप जिस किसी तरह भविष्य के भरोसे पर अपना पेट काटकर बाबू सा० को पढ़ाता है वह उनकी टहल चाकरी के लिये नौकर कहां से लावे। अब बाबू सा० की दैनिक चाकरी या तो माता राम करती हैं या पिता देव यदि विवाह हो चुका हो तो श्रीमती जी भी उसमें सहयोग दे देती हैं।

इस प्रकार चैन से विद्यार्थी जीवन बिता कर जब बाबू सा० ग्रैजुयेट होकर निकलते हैं तब नौकरी के लिये साहबों के दरवाजे खटखटाते हैं किन्तु निराश होकर लौटना पड़ता है तब उनका सम्पूर्ण दिन लीडर और पायोनियर की वानटेड (Wanted) देखने में बीतता है यदि कहीं नौकरी मिलगई तो ठीक, नहीं तो फिर "घर के न घाट के"—कहीं नौकरी मिलती नहीं, खेत जोता नहीं जाता, करें तो क्या करें। बिचारा बाप भी माथा ठोकता है और कहता है—"शिक्षा तेरा सत्यानाश हो, तैंने मेरा घर बर्बाद कर दिया। तुझ से नाता जोड़ने के पहिले जब मेरा पुत्र अशिक्षित कहलाता था तब मनुष्य को मनुष्य, पिता को पिता, और माता को माता समझता था। तब घर के बने मोटे खद्दर के पहिनने से उसका शरीर नहीं छिलता था मोटा अनाज कंठ में नहीं अटकता था, मुख कमल की तरह प्रफुल्लित और शरीर हट्टा कट्टा था, मेरी आज्ञा को ब्रह्म वाक्य समझता था, दिन भर खेत में परिश्रम करने पर भी कभी चेहरे पर मलीनता न आती थी। और अब जब वह शिक्षित कहलाता है—उसे

खद्दर काटता है—मलमल चाहिये। मोटा खाना गले में अटकता है—बढ़िया बिस्कुट चाहिये। मुख पर झुर्रियां पड़ गई हैं शरीर राजयक्ष्मा के रोगी की तरह जीर्ण होगया है चार पैर चलने पर हांकनी चढ़ जाती हैं, हमारी सेवा करने के बदले हम ही से अपनी चाकरी करवाता है। ऐसी सर्व नाशनी शिक्षा से अशिक्षा लाख गुनी श्रेयस्कर है"।

शिक्षा का यह भयंकर दुष्परिणाम देख कर थोड़ी सी भी समझ रखने वाला व्यक्ति यही कहेगा कि ऐसी शिक्षा से अशिक्षा बेहतर है। फिर क्या कारण है कि प्राच्य और पाश्चात्य सब विद्वान शिक्षा का ऐसा गुणगान करते हैं। यहां तक कि देश या जाति की सुदशा तथा दुर्दशा का माप भी शिक्षा प्रचार पर ही अवलम्बित है ? इस महत्वशाली प्रश्न को हल करने के लिये हमें अपनी शिक्षाप्रणाली पर एक दृष्टि डालनी होगी। तभी हम वह निष्कर्ष निकाल सकेंगे कि यह परिणाम शिक्षा का है या उसकी दूषित प्रणाली का ?

कैसी शिक्षा देनी चाहिए

अपनी शिक्षा पद्धति की आलोचना करने के पूर्व हमें जान लेना आवश्यक है कि शिक्षा की भिति किन सिद्धान्तों पर स्थित है क्योंकि सिद्धान्त स्थिर किये बिना उसके प्राप्ति के मार्ग की आलोचना करना निरर्थक है किसी भी सत्य के सिद्धान्त सर्वदा एक हुवा करते हैं देश काल के भेद से सिद्धान्तों में भेद नहीं पड़ता। शिक्षा भी एक सत्य है अतः

उसके सिद्धान्त भी प्रत्येक देश और काल के लिये एक ही होना चाहिये। हां—देश और काल की परस्थिति से उन सिद्धन्तों तक पहुँचने का मार्ग भिन्न हो सकता है। इसके विरुद्ध जो देश या समाज शिक्षा के सर्वव्यापक सिद्धान्त को त्याग कर दूसरों का रक्त शोषण करने के लिये स्वार्थ की वेदी पर अपनी आत्मा का बलिदान कर देता है—जिसके कल्पित शिक्षा सिद्धान्त का उद्देश दूसरों को अन्धकार में रख कर केवल आत्मतुष्टि करना मात्र है उसको कोई भी विचार शील व्यक्ति शिक्षा के सर्व व्यापक सिद्धान्त नहीं कह सकता।

आचार्य माणिक्यनन्दि प्रमाण का स्वरूप दर्शाते हुये कहते हैं "हिताहितप्राप्ति परिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्" परीक्षामुख प्र० अध्याय—हित की प्राप्ति और अहित के परिहार—त्याग में समर्थ को ही प्रमाण कहते हैं और यह विशेषता ज्ञान में ही पाई जाती है अतः ज्ञान ही प्रमीयते वस्तुत्वं येन" जिससे वस्तु के स्वरूप का निश्चय किया जा सके ऐसे प्रमाण शब्द से कहे जाने के योग्य है। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ आचार्य सोमदेव भी लिखते हैं—याः समधिगम्यात्मनो हितमवैत्यहितं चापोहति ता विद्याः॥ नी० वा० पृ० ४६ जिसको जानकर मनुष्य अपने हित को पहिचानता है और अहित से दूर भागता है वो ही विद्या—ज्ञान है शेष सब अज्ञान है। उक्त दोनों लक्षणों से ज्ञात होता है कि मनुष्य जिसके द्वारा अपने हित और अहित का वास्तविक परिज्ञान कर सके वही सच्चा ज्ञान या सत्य शिक्षा है। तथा

हित और अहित की परीक्षा ज्ञानेन्द्रियों के समुचित विकास पर निर्भर है। ज्ञानेन्द्रियों का विकास शारीरिक उन्नति पर निर्भर है क्योंकि शारीरिक अवयवों का ज्ञानेन्द्रिय—मष्तिष्क तथा हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ता है अतः हम इस तथ्य पर पहुँचते है कि बुद्धि का, हृदय का, शरीर का, जिससे संस्कार हो, धर्म अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थ जिससे पूर्ण हों, वाह्यशुद्धि के साथ ही साथ जो आन्तरिक शुद्धि—भाव शुद्धि को साधे वही शिक्षा सच्ची शिक्षा है। केवल अक्षर ज्ञान होजाना, लिखना पढ़ना सीख लेना, निरर्थक थोथे विषयों पर घन्टों तक वितण्डावाद कर सकना, किसी ग्रंथ को आद्योपान्त—शुरू से अन्त तक कण्ठ कर लेना, शिक्षा नहीं कहा जा सकता। डेन मार्क के प्रसिद्ध विद्वान ग्रुउविंग का कहना है—''कि देश के सर्व साधारण को जीवन के मर्म का सच्चा ज्ञान होना चाहिये। जिस देश को इस संसार में जिवित रहना है उसको जान लेना चाहिये कि उसे अपने प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा को शान्त सुखी एवं सन्तुष्ट करना है। थोड़े से चुने हुवे आदमियों को साहित्य और कलाओं का ज्ञान कराने से तब तक कुछ नहीं हो सकता जब तक लाखों मनुष्य अज्ञान और अधर्म के अन्धकार में डूबे हुवे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि लोग जीवन के तात्पर्य को जानें। और मनुष्य बनकर अपने २ व्यक्तिगत जीवन का मूल्य समझें, न कि पशुओं की तरह उन्हें हकाया जाये। उन को अपने देश के बारे में पूरा ज्ञान होना चाहिये, उनकी संस्थाएं उनके देश के भावों के अनुकूल ह नी चाहिये। अपने देश का इतिहास बनाने में

उनका क्या भाग हो सकता है यह ज्ञान उन्हें होना चाहिये। अपने साहित्य संगीत तथा कविता से मातृ भाषा द्वारा उनका सम्बन्ध होना चाहिये। चाहे खेती करे और चाहे कारखाने में काम, वे अपने जीवन की आत्मिक भूख बुझाने को भोजन अवश्य पा सकें। उन को इतना और ऐसा ज्ञान हो जाये कि अपनी शिक्षा द्वारा अपने कार्यों को—जो भी कार्य वे अपने जीवन में करें-अधिक आनन्द और योग्यता से कर सकें-जिस से उनमें जो आत्मिक शक्तियां हैं उनका पूरा और उत्तम विकास हो और उसके विकास का लाभ देश या समाज को भी प्राप्त हो"। *

आधुनिक शिक्षा और उसकी पद्धति

शिक्षा के उक्त सिद्धांतों को दृष्टि में रखकर जब हम अपने शिक्षणालयों की शिक्षा पद्धति पर एक सूक्ष्म दृष्टि डालते हैं तब हमें अपना मार्ग बिल्कुल विपरीत दृष्टि गोचर होता है अर्थात यदि हमारा मार्ग पूर्व को है तो हम पश्चिम को चले जा रहे हैं। और हमारा जाना भी भेड़ियाधसान जैसा है जिस प्रकार समस्त भेड़े नीचे को सिर किये आंख मीच कर आगे जाने वाली भेड़ों के पीछे चली जाती हैं उन्हें इस बात का बोध ही नहीं होता कि वे कहां जा रही हैं भले ही वे किसी खड्डे या नदी में गिर पड़ें। उसी प्रकार हम अपने गंतव्य पूर्व मार्ग को छोड़कर बिना विचारे पश्चिम की ओर भागे चले आ रहे हैं और यदि यही दशा रही तो एक दिन हम सब अवश्य टाईम्स नदी में गोता खायेंगे।

---

* सुधा से उद्धृत।

प्राथमिक शिक्षा (Primary Education)

वर्तमान शिक्षा को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं प्राथमिक शिक्षा विद्यालय (School) और महाविद्यालय (College)

ज्यों ही बच्चे ने पांचवें वर्ष में पैर रक्खा, बहुधा माता-पिता उसे चटशाला में भेज देते हैं ऐसे बहुत कम बच्चे देखने में आयेंगे जो हंसी खुशी से पाठशाला जाते हों। प्रायः प्रति दिन या तो उनको घर का कोई आदमी पहुंचाकर आता है या फिर पाठशाला के अन्य बच्चे ही एक दूसरे को पकड़ कर ले जाते हैं। उस समय विचारे सुकमार बच्चों की बड़ी दयनीय दशा होती है छटपटाते और चिल्लाते हैं किन्तु, उनकी सुनने वाला कोई नहीं (जब उद्यान का रक्षक ही उन छोटे २ पौदों को जिन्हों ने अभी पृथ्वी से पूरी मात्रा में रस भी नहीं खींच पाया है उखाड़ २ कर किसी पथरीली नीरस जमीन में आरोपित करने लगे तो दूसरों को रोकने की आवश्यकता ही क्या है।) इस ही का यह फल होता है कि बच्चे कमज़ोर और पांडुवर्ण दृष्टि गोचर होते हैं विचारों को रात दिन मास्टर सा० की बेत का ही भय खाये जाता है। जाड़ों के दिन हैं ठंड से हाथ पैर ठिठुर रहे है किन्तु हृदय हीन शिक्षक बच्चों की कोमल अंगुलियों पर पैंसिल मार रहा है। विचारा बच्चा तलमला कर रह जाता है। और शिक्षक को उसी दृष्टि से देखने लगता है जैसे कसाई को भेड़। जो शिक्षा बच्चों के

कोमल हृदयों को विकसित एवं विचारों को उन्नत करने के लिये दी जाती है उसकी यह दशा—शोक !

ऐसी पाठशालाओं के शिक्षक (भी प्रायः) अधिका अधिक नार्मल पास हुवा करते हैं जो शिक्षा के स्वरू प तथा उद्देश दोनों से ही अनभिज्ञ रहते हैं अपने विद्यार्थी जीवन में वे जैसा देखते हैं वैसा ही शिक्षक बनकर करते हैं। उनके विचारों में शिक्षा उद्देश १५) २०) रु० मासिक कमाना और लड़कों को दो चार शब्द बतला कर उनसे दिन भर चिलम भरवाना है। मुन्शी, उस्ताद कहाते हैं, गद्दी तकिये के सहारे लोट लगाते हैं और लड़कों से सेवावृत्ति करवाते हैं। जो सुकुमार हृदय भविष्य में अपने देश या समाज के स्तम्भ हो सकते हैं उनका शिक्षण ऐसे अकर्मण्य शिक्षकों द्वारा—नव उद्गत कोमल पौदों का रक्षण एक अनाड़ी खेतिहर द्वारा, शिक्षा का कैसा करुण जनक अभिनय है विचारे बच्चे १० से ४ बजे तक कैदखाने में पड़े सड़ा करते हैं और शिक्षक महाशय हाथ में लम्बी बैंत लिये बच्चों को डराते और धमकाते रहते हैं। ज्यों ही अध्यापक महाशय किसी कार्य से बाहिर गये, बच्चों में बहार आजाती है उनके हास्य की ध्वनि से पाठशाला का भवन गूँज उठता है और शिक्षक के आते ही फिर सब की नानी मर जाती है। ऐसी दशा में यदि बच्चे पाठशाला जाते हुवे रोये चिल्लाये तो आश्चर्य ही क्या है।

इसके विरुद्ध जो अशिक्षित माता पिता या साहूकार लोग अज्ञान या लाड़ चाव के कारण अपने बच्चों को पाठ-

शाला में पढ़ने के लिये नहीं भेजते, उनकी सन्तान फिर उनके हाथ से निकल जाती है। जिससे उन्हें अपने जीवन में बड़ा दुःख उठाना पड़ता। उक्त दोनों बातों को ध्यान में रखते हुवे यह कठिन समस्या उपस्थित होती है—कि बच्चों को छोटी अवस्था में इन पाठशालाओं में भेजना चाहिये या नहीं ?

हमारे विचार में प्राथमिक शिक्षा से भी पहिले एक शिक्षा और होती है जिसका भारत में सर्वथा अभाव है वह है "गृहशिक्षा"। इस शिक्षा की शिक्षिका मातायें हुवा करती हैं क्योंकि बच्चों को शैशवकाल उनकी ही सुखमामयी गोद में व्यतीत होता है। यदि मातायें शिक्षिता हों (शिक्षिता होने से मेरा आशय बी. ए. या एम. ए. पास करने से नहीं है जैसा कि कुछ दिनों से होना प्रारम्भ हुवा है और जिसे स्त्री शिक्षा की उन्नति कहा जाता है) और सन्तान के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझें तो बच्चों का बहुत कुछ शिक्षण उनकी गोद में ही हो सकता है। फिर बच्चों को न तो इतनी छोटी अवस्था में पाठशाला के कमरों में बन्द करने के लिये भेजने की अवश्यकता पड़ेगी। और न फिर वे स्कूल जाते हुवे रोये चिल्लायेंगे। क्योंकि शिक्षित माता उनके हृदय में मनोरञ्जक उपदेशों द्वारा शिक्षा के लाभ खचित कर देगी।

आजकल तो अशिक्षित मातायें यदि बच्चा पढ़ने नहीं जाता तो उसे डराने के लिये कहा करती हैं—"लल्ला पढ़ा

करो नहीं तो तुम्हारा कोई विवाह न करेगा"। कैसा हास्य-जनक भय है, धोती बांधने का सहूर भी नहीं हुवा और बच्चे के हृदय में विवाह का अंकुर पैदा कर दिया। बस—बच्चा विवाह को ही संसार की अमूल्य निधि समझता है और उसके होजाने पर उसकी शिक्षा का वास्तविकध्येय पूर्ण हो जाता है। जहां स्वतंत्र देश के माता पिता अपने बच्चों का ध्यान शिक्षा की ओर आकर्षित करने के लिये उनके सन्मुख बड़े २ विश्वविजयी वीर, विद्वान, वक्ता शासक तथा धर्म संस्थापकों का आदर्श उपस्थित करते हैं वहां हमारी मातायें विवाह का आदर्श रखती हैं। यह है भारतवर्ष की आधुनिक शिक्षा का प्रथम लक्ष्य—जिसके लिये हमें शिक्षित बनाकर कन्यापक्ष वालों से काफी नज़रान वसूल किया जाता है। ब्रह्मचर्य की सर्वतो मुखी महिमा गाने वाले अभागे भारत ! कहां गये तेरे वह दिन, जब तेरी गोद में अकलंक निकलंक जैसे धर्मवीर और लव कुश जैसे युद्धवीर क्रीड़ा करते थे ? परतंत्रता की ज्वाला में सब कुछ स्वाहा होगया और रहा सहा हमने स्वयं अपने हाथ से भस्म कर डाला।

* एक समय नेपोलियन ने मैडम कैम्पन से बात चीत

---

* In the course of a conversation with Madame Campan Napoleon Bonaparte remarked."The old systems of instruction seem to be worth nothing;what is yet wanting in order that the people should be properly educated ! 'Mothers' replied

(शेष पृष्ठ १५ पर देखो)

करते हुवे कहा—"शिक्षा का पुराना ढंग बहुत रद्दी मालूम होता है। किस कमी की पूर्ति होने से मनुष्यों को ठीक २ शिक्षा मिल सकती है" ? मैडम कैम्पन ने उत्तर दिया माताओं के त्रुटियों की पूर्ति से। इस उत्तर का नेपोलियन पर बड़ा असर हुवा और उसने कहा सब शिक्षा का सार इस ही एक शब्द में भरा हुवा है। इसलिये माताओं को शिक्षिता बनाओ जो बच्चों को पालना जानें।

(उस समय के फ्रांस की दशा से भारत की दशा अधिक शोचनीय है और उसके सुधारने का उपाय मेडम कैम्पन ने नेपोलियन से कहा था "माताओं को शिक्षित करना"।)

यथार्थ में घर ही सबसे बड़ा स्कूल है घर ही मे बालक अच्छी से अच्छी और बुरी से बुरी आदतें सीखता है और उनका असर उसकी ज़िन्दगी भर बना रहता है जिसका अन्त जीवन के साथ होता है। घर ही में वे बातें पुष्ट होती हैं। जिनसे समाज का संचालन होता है। छोटी से छोटी बात जो कि बचपन में हृदय पटल पर अङ्कित हो जाती है थोड़े दिन बाद वो ही संसार में समस्त पुरुषों की सम्मति के रूप में प्रगट होती है। बालकपन में हृदय पटल बहुत स्वच्छ और कोमल

Madame Campan. The reply struck the Emperor. "Yes" said he here is a system of education in one word. Be it your care then to train up mothers who shall know how to educate their children.

Aime Martin.

रहता है उस समय उस पर सब बातों का प्रभाव बहुत शीघ्र पड़ता है। चित्त वृत्ति का किसी ओर झुकाव जो कि बचपन में हो जाता है बहुत कठिनता से फेरा जा सकता है इसलिये बालकों की बाग्डोर जिनके हाथ में है उनका महत्व बड़े २ राजनीतिज्ञों से जिनके हाथ में बड़े २ राष्ट्रों का संचालन करना है कहीं अधिक है।

रूस आदि पाश्चात्य देशों में बालकों को प्राथमिक शिक्षा देने के लिये स्त्रीशिक्षक नियुक्त हैं क्योंकि बालहृदय की कोमलवृत्ति तथा बालमष्तिष्क का जैसा परिज्ञान स्त्रियों को होता है वैसा पुरुषों को नहीं हो सक्ता और मानव मष्तिष्क की शैशव यौवन तथा प्रौढावस्था का अध्ययन ही शिक्षा का आधार है। जो शिक्षा पद्धति बड़े २ विद्वानों के मष्तिष्क से कल्पित होने पर भी शिक्षा के मुख्य केन्द्र मानव मष्तिष्क को नहीं स्पर्श करती वह मानसिक विकास को उत्कृष्ट तथा संपन्न करने की अपेक्षा अधिकतर कुण्ठित तथा क्षीण ही करती है। बचपन में बालकों के हृदय में प्रकृति की नाना चित्र विचित्र रचनाओं को देख कर स्वभाव से ही नाना जिज्ञासायें उठा करती हैं उस समय उनकी इस ज्ञानपिपासा को सरल प्रेमपूर्ण उत्तर द्वारा शान्त करने से भविष्य में उनकी कल्पना शक्ति उत्तरोतर बढ़ती जाती है। और यदि उनकी जिज्ञासा का उत्तर कठोर एवं भर्त्सनापूर्ण शब्दों में दिया जाये या दिया ही न जाये जैसा कि बहुधा आजकल के जङ्गली शिक्षक करते हैं तो वह शक्ति नष्ट हो जाती है फिर बच्चा बड़ा होकर भी विचारक नहीं हो सकता। इसलिये

विदेशों में छुट्टी के दिन बच्चे अपनी शिक्षिकाओं के साथ बगीचोंमें घूमने जाते हैं और वहां खूब खेलते कूदते हैं तथा तरह २ के कौतुक भरे प्रश्न अपनी शिक्षिकाओं से करते हैं जिनका उत्तर उन्हें बड़े प्रेम से मीठे शब्दों में दिया जाता है जिस से उनका उत्साह बढ़ता है आगे जाकर भविष्य में वे ही संसार के विख्यात आविष्कारक तथा विचारक हो जाते हैं ।

बच्चों की शिक्षा के लिये हमारे देश में अभी स्त्रियों का प्रबन्ध होना तो बहुत दुष्कर है फिर भी यदि वयोवृद्ध अनुभवी एवं बच्चों की प्रकृति का अध्ययन करने में निपुण कोमल हृदय शिक्षक ही रक्खे जायें तब भी बहुत कुछ लाभ हो सकता है। किन्तु भारत के दुर्भाग्य से इस विभाग में वे ही सज्जन पदार्पण करते हैं जिन की अन्यत्र गति नहीं होती। क्योंकि भारत वर्ष के अन्य सरकारी महकमों में ऊपर की आमदनी अच्छी हो जाती है । छोटी पाठशालाओं के हेडमास्टरों की अपेक्षा एक मामूली चपरासी को कहीं अधिक वेतन पड़ जाता है। और इस विभाग में कोई अन्य उपाय आमदनी का है नहीं यद्यपि शिक्षक गण कक्षादान के समय बच्चों को डरा धमका कर दस बीस रुपये ऐंठ ही लेते हैं फिर भी वह न कुछ के बराबर है, फिर बतलाइये कोई योग्य व्यक्ति आवे तो क्योंकर आवे । और प्राथमिक शिक्षा आकर्षक एवं मनोरंजक बने तो क्योंकर बने। जब तक प्राथमिक शिक्षा में सुधार न किया जायेगा तब तक बच्चों के सजीव ज्ञान नहीं हो सकेगा।

विद्यालय (School) महाविद्यालय(College)

यह शिक्षालय दो भागों में विभक्त है प्रथम संस्कृत शिक्षालय दूसरे अंग्रेजी। विद्यालय महाविद्यालय से मेरा संकेत संस्कृत शिक्षा मन्दिरों की ओर है और स्कूल तथा कालिज से अंग्रेजी शिक्षालयों की ओर। यहां पर पहिले अंग्रेजी शिक्षालयों की शिक्षा पद्धति पर ही विचार करना आवश्यक है क्यों कि इस समय अंग्रेजी ही भारत की राष्ट्र भाषा हो रही है जिधर दृष्टि पसारिये इसही का आतंक छाया हुआ है। यदि आप अंग्रेजी जानते हैं तो आफिसरों में सभ्य सोसाइटी में आपकी अच्छी आवभगत होगी। किसी मुकद्मे में गवाह बनकर जाने से पक्ष का वकील बड़ी शान के साथ अदालत से अर्ज़ करेगा Sir! my witness will give answer in English. हुजूर मेरा गवाह आपके प्रश्नो का उत्तर अंग्रेजी में देगा। सफर में टिकिट बाबू (Booking-clerk) फौरन टिकिट देगा। क्रू महाशय आनरेबुल मैन (Honourable man) समझ कर अधिक बोझा (Luggage) होने पर भी अधिक गड़बड़ सड़बड़ न करेंगे। कहां तक बतलायें-आज कल अंग्रेजी भाषा ही सर्वार्थ साधनी बन रही है। इसके विपरीत यदि अनेक विषयों के मर्मज्ञ होकर भी आप अंग्रेजी नहीं बोल सके तो बस जनाब, मामूली सा चपरासी भी आपको डांट बतायेगा। ऊँचे हाकिमों की तो बात ही निराली है।

तो- हमारे अंग्रेजी शिक्षणालयों में मुख्यता से अंग्रेजी शिक्षा दी जाती है भूगोल गणित इतिहास आदि सब

विषय अंग्रेजी में पढ़ाये जाते हैं (खुशी है कि बोर्ड ने प्रति वर्ष बीस प्रतिशत हाई स्कूलों में शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा करने का निश्चय किया है) भोजन में चटनी की तरह साथ में कुछ हिन्दी और संस्कृत का भी चर्वण कराया जाता है। अपनी वैज्ञानिक वर्णमाला छोड़ कर हम ए० बी० सी० डी० रटना प्रारम्भ करते हैं शैशव काल से ही हमारे बच्चों के मस्तिष्क में विदेशी भाषा जड़ जमा लेती है। चौथी पांचवी कक्षा में पढ़ने वाला छात्र कुत्ते को देखकर बोलता है– Comehere my dear dog. किन्तु शुद्ध हिन्दी का एक वाक्य भी नहीं बोल सक्ता।

इन स्कूलों में सब से पहली बात जिसे लड़के सीखते हैं वह है फैशन। ज्यों ज्यों वह कक्षा में उन्नति करते जाते हैं त्यों त्यों उनके फैशन का रोग भी बढ़ता जाता है कालिज में पहुंचकर तो उसकी चरम सीमा हो जाती है। उनके मासिक व्यय का बहुभाग इस फैशन की आग में स्वाहा होता है। सारांश यह है कि देश के नौनिहाल बचपन से ही यूरोपियन रंग में रंग जाते हैं। उनकी भाषा विदेशी, भाव विदेशी, शरीर का आवरण विदेशी, सब कुछ विदेशी हो जाता है। हां केवल शरीर और वर्ण से वे अवश्य भारतीय रहते हैं। प्रयत्न तो शरीरको भी बदलने का किया जाता है किन्तु उसमें उनका कोई चारा नहीं चलता।

शिक्षा का प्रथम ध्येय मनुष्य को जीवन के मर्म का ज्ञान करना है जो हमारे नवयुवकों को सिखाया ही नहीं जाता। वे तो इस शरीर को ही जीवन समझते हैं और उसको अनेक

प्रकार के विदेशीवस्त्रों से सुसज्जित करना—जीवन का मर्म। दस का घंटा बजते ही इन स्कूल नाम धारी कारखानों में बच्चों के मष्तिष्क को यूरोपियन स्टाईल में ढालने का कार्य प्रारम्भ होजाता है और ४ बजे समाप्त। जिस तरह टकसाल घर में ढलने वाले सिक्कों को कई कारीगरों के हाथों से निकलना पड़ता है उसी प्रकार लड़कों को भी घंटा बजते ही नवीन २ कारीगरों के सामने जाना होता है। इस दौड़ धूप तथा कोर्स की अधिकता के कारण उन्हें जीवन के मर्म की ओर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं मिलता।

प्राचीन काल में जब हम गुरुवोंसे शिक्षा पाते थे-शिक्षकों से नहीं, प्राकृतिक घटनाओं से ज्ञान उपार्जन करते थे-पुस्तकों से नहीं, ज्ञानार्जन का लक्ष्य आत्मतुष्टि था-शरीर तुष्टि नहीं, तब हम वास्तव में जीवन के मर्म को जानते थे।

शिक्षा का दूसा लक्ष्य आत्मा को शांत सुखी एवं सन्तुष्ट करना है किन्तु यहां हम उसके विपरीत देखते हैं। कालिज में पहुंचते ही हमारी आवश्यकतायें दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जाती हैं जिनके जुटाने में ही हमारे अध्ययन काल का बहुत सा उपयोगी अँश व्यर्थ व्यतीत होता है। यह हमें सर्वदा स्मरण रखना चाहिये कि जीव में आवश्यक्ताओं की वृद्धि के बल अशांति की जड़ है। जो मनुष्य अपने जीवन का निर्वाह जितनी कम आवश्यकताओं से कर सक्ता है वह उतना ही सुखी रहता हैं क्यों कि प्रति दिन नवीन २ आवश्यक्ताओं की पूर्ति के लिये यथेच्छ द्रव्य चाहिये, द्रव्य के न मिलने से जीवन में असन्तोष उत्पन्न होता है जो दुख का मूल है। यही

कारण है कि जिस समय हमारे नवयुवक कालिजों से डिग्री प्राप्त करके निकलते हैं तब उनकी व्यक्तिगत आवश्यक्तायें इतनी अधिक बढ़ जाती है कि कम से कम ५०) ६०) मासिक तो उनको जेब खर्च के लिये चाहिये। कालिज जीवन में तो उन की आवश्यकताओं की पूर्ति जिस किसी तरह छात्रवृत्ति या पितृ द्रव्य से हो जाती थी किन्तु जब गृहस्थी का भार उनके ऊपर पड़ता है जिससे वे बिल्कुल अनभिज्ञ है और उन की शिक्षा का अन्तिम ध्येय नौकरी कहीं मिलती नहीं, तब तो उन्हें चारों ओर अन्धकार दृष्टिगोचर होता है ऐसे संकट के समय उनका फैशन "कटे पर नमक का" काम करता है। शिक्षा पद्धति की कैसी दयनीय दशा है (Science) विज्ञान और (Philosophy) दर्शन शास्त्र की गुत्थियां सुलझाने वाला मष्तिष्क जीवन संग्राम की गुत्थियों को नहीं खोल सका। अन्त में स्वास्थ और धन का होम करने के बाद आत्म हत्या ही उन्हें उनके अशान्त जीवन से छुटकारा दिलाने में सहायक होती है। इसी प्रकार न जाने कितने इस गरीब भारत की आंखो के तारे प्रति वर्ष शिक्षा यज्ञ में अपने जीवन की आहुतियां देते हैं।

एक बार महामना मालवीय जी ने हिन्दू विश्व विद्यालय के छात्रों को उपदेश देते हुये कहा था– (The poor students can not get high education) गरीब छात्र ऊँची शिक्षा नहीं प्राप्त कर सक्ते हां-कहां गये वह दिन, जब जंगलों में हमारे ज्ञानगेह बने हुये थे- सांसारिक आडम्बरों से विरक्त निस्पृही गुरु हमें जीवन संग्राम की गुत्थियों को सुलझाने का

समुचित मार्ग बतलाते थे--राज कुमारों को भी राजसी ठाठ छोड़कर गरीबों की तरह ही छात्र जीवन बिताना पड़ता था गरीब अमीर का भेद ही न था। और एक दिन आज है जब गरीबों को भी अमीर बन कर शिक्षा प्राप्त करना पड़ता है भले ही हमारे घर वालों को इसके लिये अपनी जायदाद बेचनी पड़े। अन्यथा हम ऊँची शिक्षा नहीं प्राप्त कर सके हैं।

शिक्षा का तीसरा ध्येय नवयुवकों को उनकी जन्म भूमि के बारे में पूरा और सच्चा ज्ञान कराना है। क्योंकि नवयुवक ही देश की भावी आशायें होते हैं। किन्तु हमारे विद्या मन्दिरों में जिस आदर्श की प्रति कृति विराजमान है वह आदर्श हमारा जातीय आदर्श नहीं है यूरोप के वाह्य आडम्बर का अनुकरण मात्र है जिसके कुहासे में हमारा जातीय गौरव लुप्त प्रायः हो गया है। उस ही का यह परिणाम है कि हमारे नवयुवक अपने देश के वास्तविक ज्ञान से कोरे रहते हैं। भारत के वास्तविक देश ग्राम हैं शहर नहीं। क्यो कि भारत की अधिकांश प्रजा ग्रामों में ही निवास करती है। और वास्तव में मनुष्य जीवन को पल्लवित करने के लिये ग्रामीण जीवन ही विशेष उपयोगी है। आपने देखा होगा कि जो पौदे शहर से बाहिर बगीचों की क्यारियों में लगाये जाते हैं वे बहुत जल्दी बढ़ते हैं और उनके ऊपर प्राकृतिक मनोमोहक सौंदर्य रहता है क्योंकि वहां पर उन्हे पर्याप्त रस मिल जाता है। इसके विपरीत जो पौदे शहरों में रईसों की कोठियों में गमलों में सजे रहते हैं वह बहुते धीरे २ बढ़ते हैं उनकी वृद्धि शीघ्र रुक जाती है और फूलों में भी वह प्रफुल्लता नहीं रहती

क्योंकि गमलों से वे पर्याप्त रस नहीं पा सके । इसी प्रकार मनुष्यों की दशा है वह अपने बाल्यकाल में मानसिक, नैतिक एवँ शारीरिक उन्नति के लिये जो आवश्यक सामग्री-विस्तीर्ण आकाश, शुद्धवायु, प्राकृतिक सौंदर्य का रस पान आदि शहरों से कोसों दूर जंगलों में पा सके हैं वह गन्दे वातावरण से दूषित शहरों में नहीं ।

हमारी आधुनिक शिक्षा सँस्थायें प्रायः सब शहरों में ही स्थापित हैं। यद्यपि स्थापित्त करते समय शहर से कुछ अन्तराल अवश्य रखा जाता है किन्तु वह अन्तराल कुछ दिन में आबाद होकर शिक्षा मन्दिर को भी शहर में ही सम्मिलित कर लेता है । यही कारण है कि छात्र अपने देश के ग्रामीण जीवन तथा ग्रामीणों की दशा से अनभिज्ञ रहते हैं । यूरोप के शिक्षा मन्दिर, जिनका हम बाहिरी अनुकरण करते हैं हमारे शिक्षा मन्दिरों की तरह समाज के वातावरण से पृथक नहीं रहते । वहां की समाज में किसी विषय पर संघर्ष विमर्श हो चुकने के बाद जो फल निकलता है वही वहां के शिक्षामन्दिरों का पाठ्य विषय होता है । वहां के नवयुवक स्वदेशी वातावरण में स्वदेशी भावों का ही अध्ययन करते हैं हमारी तरह विदेशी भावों का नहीं । हम अपने शिक्षालयों को विदेशी सांचे में ढाल कर भी उन्हें समाज के सम्बन्धित नहीं कर सके हैं । हमारे शिक्षालय समाज में नहीं बने हैं किन्तु ऊपर से चिपकाये गये हैं । उनमें शिक्षण पाने वाले विद्यार्थी अपनी समाज के वातावरण से कुछ नहीं सीखते हैं । जो कुछ सीखते हैं केवल पुस्तकों से सीखते हैं । और केवल पुस्तको से

प्राप्त होने वाला निर्जीव ज्ञान मनुष्य की शक्तियों को निर्जीव बना देता है। बस फिर वे "खाये किसी का गीत गावे किसी के" इस कहावत के अनुसार भारत में पैदा होकर भी युरोप के ही गीत गाते हैं। उनका देश या समाज भले ही जहन्नुम में चला जाये उन्हें उसकी पर्वाह ही नहीं होती।

एक बार स्वर्गीय ला० लाजपतरायजी ने हिन्दू विश्व विद्यालय के छात्रों को सम्बोधित करते हुवे कहा था—"नवयुवको! तुम से मातृभूमि क्या आशा रख सक्ती है। तुम अंग्रेजी खाते हो, अंग्रेजी पीते हो। तुम्हारी वेश भूषा भी अंग्रेजी ही है, पारस्परिक बोल चाल में भी अंग्रेजी का ही व्यवहार करते हो। विलायती शिक्षा पर हिन्दू उपपद लगा देने से वह शिक्षा हमारी नहीं होजायेगी—विलायती ही रहेगी। और साथ में रहे सहे हिन्दुत्व को भी अपने ही रंग में रंग लेगी जैसा कि मैं देख रहा हूँ"।

महामना प्रुडविंग कहते हैं—"कि शिक्षा संस्थायें देश के भावों के अनुकूल होनी चाहियें। वास्तव में तब ही छात्रों को देश की परिस्थिति का पूरा ज्ञान हो सकता है। आगे चलकर आप कहते हैं कि अपने देश का इतिहास बनाने में उनका क्या स्थान हो सकता है, 'इस बात का उन्हें पूरा ज्ञान होना चाहिये।" उक्त दोनों बातों का हमारी शिक्षा पद्धति में कोई स्थान नहीं है। न हमारी संस्थायें देश के भावों के अनुकूल हैं और न हमारे छात्रों को इस बात का ही पाठ पढ़ाया जाता है कि उनका अपने देश के इतिहास बनाने में क्या स्थान है? हां—इतना वे अवश्य सीख जाते हैं कि बी. ए. या एम. ए.

पास करने के बाद यदि उन्हें कोई गवर्न्मेन्ट पोस्ट मिल जायं तो वे क्या हो सकते हैं ! वे देश के इतिहास को बनाना नहीं सीखते हैं किन्तु अपने देशको परतन्त्रता की जंजीर में बांध रखने वाले राज्य के इतिहास को बनाना अवश्य सीख जाते हैं। उनका यह शिक्षण शिक्षालयों में नहीं होता। यह आदर्श ? तो उन्हें माताओं की गोद में दूध के साथ पिलाया जा सकता था। (इसी उद्देश से शिक्षा दिलाई जाती है शिक्षालयों में तो केवल इस उद्देश का पोषण तथा संवर्द्धन होता हैं) आप किसी भी भारतीय विश्व विद्यालय के छात्र से उसके भावि जीवन के सम्बन्ध में बातचीत करें। निन्यानवे प्रतिशत आपको ऐसे ही मिलेंगे जो डिप्टी कलेक्टर, सब जज आदि पदों को अलंकृत करने की भावना भाते रहते हैं और भविष्य के आनन्द में ऐसे डूब जाते हैं कि आरम्भ से ही अपने जीवन की रहन सहन को उसी सांचे में ढालने लगते हैं मानों— किसी ऊँचे पद पर पहुँच गये हैं। किन्तु ग्रैजुयेट होकर निकलने के बाद जब उनकी समस्त आशायें धूलि में मिल जाती हैं तब अपने भाग्य को ठोकते हैं।

हिन्दू विश्व विद्यालय की ऊँची २ शानदार बिल्डिङ्ग देखकर एक बार किसी महाशय ने मालवीय जी से पूछा— महाराज ! इन राजप्रसादों में निवास करने के बाद क्या इन्हें (छात्रों को) अपने मामूली घरों में रहना अच्छा लगेगा ? मालवीय जी उत्तर दिया—मेरी तो यही भावना है कि यह लोग ग्रामों में भी ऐसे ही प्रासाद बनवावें। महाराज का उत्तर तो ठीक है किन्तु क्या इसयोग्य उन्हें बनाया भी जाता है।

शिक्षा पद्धति तो उसी पाश्चात्य प्रणाली का अनुकरण मात्र है जो मनुष्य के जीवन को निःसत्व कर डालती है।

यहां पर हमारे भाई यह प्रश्न उठा सकते हैं कि जिस शिक्षापद्धति की भित्ति पर आज यूरूप फल फूल रहा है उसी का अनुकरण तो हमारे यहां है फिर किस कारण से भारत की शिक्षा प्रणाली को दूषित कहा जा सकता है। बात ठीक है किन्तु हम लोग पूरी तरह से दूसरों का अनुकरण करना भी नहीं जानते। हम पाश्चात्य शिक्षा मन्दिरों के केवल वाह्य आडम्बर का अनुकरण करते हैं। हमारी दृष्टि में कुर्सी मेज आलीशान इमारत समय पर घन्टा बजना और यूरोपियन वेश भूषा बस यह ही अनुकरण की चीजें हैं जो कि धन कुवेर यूरूप को ही शोभा देती हैं कङ्गाल भारत को नहीं। जिस तरह कोई मन चला दरिद्र युवक धनी की सन्तान की विलासता देख कर उस विलासता का तो अनुकरण करता है किन्तु उसने किस प्रकार परिश्रम करके विलासता का मुख्य साधन धन उपार्जन किया है इसकी ओर ध्यान भी नहीं देता है ठीक यही दशा भारत की है वह योरोप की तरह विलासी तो होता जा रहा है किन्तु उसके साधनों की ओर दृष्टि भी नही डालता।

हम लोग विदेशी यूनिवर्सिटी के प्रोस्पैक्टिस को देखने में ही अपना सम्पूर्ण समय व्यतीत कर देते हैं। किन्तु यह ध्यान नहीं देते कि वहां की शिक्षण पद्धति कैसी है। शिक्षा पद्धति के आवश्यक नियमों में एक नियम यह भी है कि देश के बच्चों का अपने साहित्य संगीत तथा कविता से मातृ

भाषा द्वारा सम्बन्ध होना चाहिये। जैसा कि विदेश में होता है। शेक्सपियर मिल्टन को ही अग्रस्थान मिलता है— कालिदास या जिनसेनाचार्य को नहीं, शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा है विदेशी भाषा नहीं। इतिहास के शिक्षण में "अलफ्रेड दी ग्रेट" की ही शासन पद्धति का अध्यापन कराया जाता है मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त की नहीं। और हमारे यहां बिल्कुल विपरीत दशा है—शिक्षण का माध्यम विदेशी भाषा है शेक्स-पियर मिल्टन को सब कोई जानते हैं किन्तु विचारे भारतीय कवियों को वे ही महानुभाव जानते हैं जिन्हों ने कालिज में (Second language) दूसरी भाषा संस्कृत ली होगी। भारत के नैतिक पतन का कैसा दयनिय दृश्य है, और वह भी शिक्षा द्वारा।

संस्कृत विद्यालय

आज कल भाषा संसार में संस्कृत मृत भाषा (Dead language) के नाम से प्रसिद्ध है। इस अंग्रेजी युग में इस भाषा का जो कुछ थोड़ा बहुत सन्मान अवशेष है वह केवल इस के विशाल साहित्य के कारण ही है। भारत की प्राचीन सभ्यता का यदि कोई चिन्ह अवशेष है तो वह संस्कृत साहित्य ही है। इसके शिक्षण के लिये अनेक छोटी २ पाठ-शालायें महाविद्यालय तथा एक दो कालिज भी हैं। इन की शिक्षा पद्धति अभीतक बहुत कुछ पुराने ढँग पर ही चली जाती है इन में केवल सँस्कृत साहित्य का ही अध्ययन कराया जाता है शिक्षक तथा शिष्य "गत्यन्तरा भावात्" कुछ सन्तोषी

तथा देशी भावापन्न भी रहते हैं। किन्तु अँग्रेजी शिक्षण पद्धति का दोष यहां पर भी प्रविष्ट हो गया है । इन में पढ़ने वाले भी नौकरी का ध्येय रखकर ही आते हैं। बड़े आदमी तो सँस्कृत से कोई रुचि रखते ही नहीं । क्योंकि वे जानते हैं कि इससे हमारा कोई इहलौकिक कार्य नहीं सध सकता। रहा पार लौकिक कार्य, सो कोई १०) २०) रुपयं का पंडित रख लेने से भी हो सक्ता है । गत्यन्तरा भावात् गरीब बच्चे ही इन में आश्रय पाते हैं और प्रायः वे हिन्दी की तीसरी या चौथी कक्षा पास होते हैं संस्कृत शब्द को भी शुद्ध नहीं लिख सके । विद्यालय में प्रविष्ट होते ही उन्हें लघु कौमुदी या जैनेन्द्र रटाना शुरु हो जाता है लिखना वहां सिखाया ही नहीं जाता । वार्षिक परीक्षा होती है तो अक्षर कीड़े मकोड़े से, और उत्तर पत्र लेखन सम्बन्धी अशुद्धियों से भरा रहता है ऐसी ही दशा में वह पन्डित परीक्षा पास कर लेते हैं ।

इन शिक्षा मन्दिरों में भी भाव की ओर ध्यान नहीं दिया जाता, केवल रटाना ही मुख्य ध्येय रहता है । संस्कृत की विभक्तियों का अर्थ जान कर ग्रँथ समाप्त हो जाता है भाव तक पहुंचने का काम ही नहीं। इस में छात्रों का कोई दोष नहीं यह दोष संस्था के संचालको का है जो संस्कृत के ज्ञान से कोरे होते हुवे भी संस्कृत शिक्षा मन्दिरों का उत्तरदायित्वपूर्ण पद ग्रहण कर लेते हैं और विद्यार्थी की योग्यता पर ध्यान न देकर सब से एकसा व्यवहार करते: ("सब धान बाईस पंसेरी" वाली कहावत के अनुसार सब को एक ही डन्डे से हांकते) हैं इन ही सब कारणों से बहुत से छात्र न्यायतीर्थ पास कर लेने

पर भी अनेकान्त का निरूपण नहीं कर पाते। सिद्धान्त शास्त्री होकर भी धर्म तत्त्व का वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण नहीं कर सके। बहुत से विद्यार्थी तो इच्छा न रहते हुवे भी केवल समय बिताने के लिये ही विद्यालयों में पड़े रहते हैं। प्रेम से ज्ञानामृत का संचय करने की अन्तरंग लालसा तो प्रतिशत एक के भी नहीं होती। यह दोष उनका नहीं-उनके शिक्षकों का है, जो बिना समझे बूझे ग्रंथ को बांचते चले जाते हैं पदार्थों का विश्लेषण करके छात्रों के हृदय को ज्ञान की ओर आकर्षित न करके पुस्तक की ओर आकर्षित करते हैं। जिस से उनका ज्ञान तो पन्डित परीक्षा पास कर लेने पर पुस्तकों में ही रह जाता है और उनके पास रह जाता है केवल निरर्थक अभिमान जो विद्वता के लिये बड़ा दुर्गुण है।

संस्कृत विद्यालयों में केवल संस्कृत साहित्य का अध्ययन होने से छात्र गणित, इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र आदि आवश्यक लौकिक विषयों से सर्वथा अनभिज्ञ रह जाते हैं। जिससे उनका एकांगी ज्ञान उनकी संसार यात्रा में विशेष लाभ नहीं पहुंचा पाता। देश की राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थिति का उनके ज्ञान पर कोई असर नहीं होता। वे जानते ही नहीं कि राजनीति किस चिड़ियाका नाम है। बहुत सों को तो यह भी पता नहीं रहता कि हमारे शासक गवर्नर जनरल आज कल कौन हैं ? इतिहास को वे अनुपयोगी समझते हैं। पंडित होने पर भी गुणा जोड़ जैसे मामूली गणित का भी पूर्ण ज्ञान नहीं रहता। मुझे प्रति वर्ष ऐसे विद्यार्थियों से काम पड़ता है जो श्री गोमट्टसार तथा श्री त्रिलोकसार का अध्ययन करते

हैं किन्तु उन्हें गपित के मामूली नियमों का भी पता नहीं रहता, केवल कर्ण पवित्र करके चले जाते हैं। ऐसी ऊपरी शिक्षा से न उनका परलोक सुधरता है और न इह लोक,—न वे अपना कल्याण कर पाते हैं और न समाज का ही। भारत की देव वाणी के उपासकों की शिक्षा पद्धति का यह नमूना है जो कि आधुनिक युग के लिये अकिंचित्कर है।

कैसी शिक्षा पद्धति होनी चाहिये

आधुनिक शिक्षा पद्धति की आलोचना करने के बाद प्रश्न उठता है कि शिक्षा पद्धति का क्या रूप हो जिस से देश की वर्तमान समस्या हल हो सके। प्रश्न बड़े महत्व का है। भारत के बड़े २ आचार्य इस समस्या को सुलझाने में लगे हुवे हैं फिर भी अभी तक कोई निश्चत परिणाम नहीं निकला है। अस्तु

शिक्षा पद्धति का रूप निर्धारित करते समय हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि प्रत्येक मनुष्य में ज्ञान स्वतः विद्यमान है उसे कोई उत्पन्न नहीं कर सक्ता। इसलिये पद्धति केवल उस ज्ञान को विकसित करने का साधन मात्र है। शिक्षक शिष्य को ज्ञान प्रदान नहीं करता, किन्तु उसके अन्तः करण में विद्यमान ज्ञान को विकसित करने का मार्ग सुझाता है वही मार्ग शिक्षा पद्धति के नाम से विख्यात है। इस व्याख्या को ध्यान में रखते हुवे हमें अपनी शिक्षा का मार्ग ऐसा सुसम्बद्ध और सुपरिष्कृत बनाना चाहिए कि उस मार्ग से गमन करने वाले कोमल हृदय पथिक मार्ग की कठिनाईयों एवं निर्जनता से ऊब कर अपने गंतव्य पथ में च्युत न हो जायें।

हमारे सन्मुख दो मार्ग हैं, एक प्राचीन दूसरा नवीन। प्राचीन मार्ग के निर्माता हमारे पूर्वज थे जिन्होंने स्वयं उस पथ पर चल कर अपने अन्तःकरण में विद्यमान ज्ञानलोक को विकसित किया था और अपनी सन्तान के कल्याण की भावना से प्रेरित हो उसे भी उसी सतमार्ग से चलने का आदेश किया था। नवीन मार्ग हमारे शासकों के राजनैतिक मस्तिष्क की उपज है जिन्होंने अपने स्वार्थ साधन के लिए इस नवीन मार्ग का अवलम्बन किया। बात यह थी कि उन दिनों विदेशी सरकार को लार्ड मेकाले के शब्दों में ऐसे शिक्षितों की आवश्यक्ता थी जो विदेशी सरकार और उन करोड़ों व्यक्तियों के बीच में, जिन पर वह शासन कर रहे थे दुभाषियें का काम कर सके। जिनकी नसों में भारतीय रुधिर बहता हो, जिनका चमड़ा हिन्दुस्तानी हो परन्तु जो मानसिक विचारों में रीति नीति में अंग्रेज हों। इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रख कर यह नवीन मार्ग स्थापित किया गया था।

प्राचीन पद्धति के अनुसार प्राथमिक शिक्षा समाप्त हो जाने पर ८ वर्ष की अवस्था में बालक का उपनयन संस्कार होता था जिसमें देव शास्त्र गुरु की साक्षी पूर्वक यज्ञोपवीत धारण करके श्रावक के अष्टमूल गुण धारण करना आवश्यक था। और शिक्षा समाप्त होने तक जिसकी जघन्य अवधि १२ वर्ष और उत्कृष्ट १६ वर्ष नियत थी ब्रह्मचर्य्य पूर्वक गुरु के निवास स्थान पर रहना पड़ता था। घर से कोई सम्बन्ध न रहता था, भिक्षा वृत्ति से उदरनिर्वाह

करना होता था । ब्रह्मचारी के चार चिन्ह मुख्य थे—कमर में तीन लर की मूँज की रस्सी, जो उसे रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्र) का स्मरण दिलाती थी। जंघा का चिन्ह—धुली हुई सफेद धोती, जो अरहंत भगवान् के कुल की पवित्रता तथा विशालता को दयोतन करती थी। वक्षस्थल का चिन्ह—सात लर का गुँथा हुवा यज्ञोपवीत जो कि सात परमस्थानों का सूचक था। शिर का चिन्ह, स्वच्छ और उत्कृष्ट मुँडन—जोकि मन बचन काय के मुँडन अर्थात् विषयविहक्ति को सूचित करता था। ब्रह्मचारी को लकड़ी का दतौन करना, पान खाना, आंखों में अँजन तथा शरीर से हल्दी आदि उबटन लगाना निषिद्ध थे। प्रति दिन शुद्ध जल से स्नान करना आवश्यक था। खाट पर सोना तथा दूसरे के अँग से सटकर बैठना भी वर्जीत था क्योंकि यह सब ब्रह्मचर्य्य के दूषक हैं। ब्रह्मचारी को अकेले भूमि पर शयन करना चाहिये। इस प्रकार के गुरु के आश्रम में ब्रह्मचर्य्य पूर्वक सात्विक जीवन बिताते हुवे शिष्य को सबसे प्रथम आचारशास्त्र का अध्ययन कराया जाता था क्योंकि "आचारः प्रथमो धर्मः" आचार ही आद्य धर्म है पश्चात् अध्यात्म शास्त्र का अध्ययन आवश्यक था। इसके अतिरिक्त व्युत्पत्ति तथा विद्वत्समाज में पांडित्यप्रदर्शन के लिये व्याकरण, अर्थशास्त्र आदि विषयों का अध्ययन करना भी बुरा नहीं समझा जाता था किन्तु ज्योतिष शास्त्र, छंद शास्त्र, शकुन शास्त्र तथा गणित शास्त्र का अध्ययन आवश्यक था* अध्ययन काल पूर्ण होजाने

*क्रियोपनीति र्नामास्य वर्षे गर्भाष्टमे मता,

(शेष पृष्ठ ३३ पर देखो)

पर गुरु की अनुज्ञा लेकर ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होता था और धर्मानुकूल स्वतंत्र आजीविका द्वारा अपने इहलौकिक जीवन का निर्वाह करता था। इस प्रकार संक्षेप में प्राचीन परिपाटी का सिंहावलोकन तथा आधुनिक का प्रत्यक्ष अनुभव करने पर हमें तो अपना पुरातन मार्ग ही आदरणीय प्रतीत होता है केवल समय की प्रगति के अनुसार

यत्रापनीतिकेशस्य मौंजी सव्रतबन्धना ॥ १०४ ॥
कृतहित पूजनस्यास्य मौजी वन्धो जिनालये,
गुरुसाक्षी विधातव्यो व्रतार्पण पुरस्सरः ॥ १०५ ॥
शिखी सितांशुकः सान्तर वासा निर्वेश विक्रमः,
वृतचिह्नं दधत्सूत्र तदोक्तो ब्रह्मचार्यसौ ॥ १०६ ॥
चरणोचितमन्यच्च नामधेयं तदास्यवैः,
वृत्तिश्च भिचयान्यत्र राजन्यादुद्धवैभवात् ॥ १०७॥
कटि लिंङ्ग भवदेस्य मौजी वन्धातु त्रिभिर्गुणैः,
रत्नत्रितय शुद्धयङ्गं तद्धि चिन्हं द्विजन्मिनाम् ॥ ११० ॥
तस्येष्ट मुरु लिङ्गंच सुधौत सित शाटकम्,
अहितानाम् कुलंपूतं विशालं चेति सूचने ॥ १११ ॥
उरोलिंगम थास्य स्यात् गृथितं सप्तभिगुणैः,
यज्ञोपवीत कम् सप्त परम स्थान सूचकं ॥ ११२ ॥
शिरोलिंगच तस्येष्टं परम मौढय मनाविलम्,
मौढंयमनो वच काय गतमस्योपवृंहयत् ॥ ११३ ॥
एवं प्रायेण लिंगेन विशुद्धं धारयेत् वृतं,

(शेष पृष्ठ ३४ पर देखो)

उसमें कुछ परिवर्तन कर देने से आज की शिक्षा समस्या बहुत कुछ अंशों में हल हो सकती है।

शिक्षालय शहर के वातावरण से बहुत दूर किसी रमणीक सुन्दर जङ्गल में होना चाहिये, इस बात को आधुनिक शिक्षा पद्धति के पोषक भी अवश्य स्वीकार करेंगे। क्योंकि जनकोलाहल में प्रति दिन कुछ ऐसी ही घटनायें घटा करती हैं जिनका असर माननीय वासनाओं को अकाल में ही उद्दीप्त कर देता है। इससे समय से पहिले ही मानव हृदय में वासनायें अपना

स्थूल हिंसाविरत्यादि ब्रह्मचर्योपबृंहितम् ॥ ११४ ॥
दन्तकाष्ट गृहोनास्य नताम्बूलं नचाञ्जनम्,
न हरिद्रादि भिस्नानं शुद्धस्नानं दिनं प्रति ॥ ११५ ॥
न खट्वा शयनं तस्य नान्यांग परिघट्टनम्,
भूमौ केवलमेकाकी शयेत् वृत शुद्धये ॥ ११६ ॥
यावत् विद्या समाप्तिः स्यात् तावदस्ये दृशम्वृतं,
ततोप्यूर्ध्वं वृतं तत्स्याद्यन् मूलं गृहमेधिनाम् ॥ ११७ ॥
सूत्रमौपासिक चास्य स्यादध्येयं गुरोर्मुखात्,
वितयेन ततोन्यच्च शास्त्रमध्यात्मगोचरम् ॥ ११८ ॥
शब्द विद्यार्थ शास्त्रादि चाध्येयं नास्य दूष्यते,
सुसंस्कार प्रबोधाय वैयात्य ख्यातयेऽपिच ॥ ११९ ॥
ज्योति र्ज्ञानमथछन्दोज्ञानंज्ञान च शाकुनम् ,
संख्या ज्ञानमितीदं च तेनाध्येयं विशेषतः ॥ १२० ॥
व्रतावरणं चेदं गुरुसाक्षिकृतार्चनम् ,
वत्सरात् द्वादशादुर्ध्वमथवा षोडषात्परं ॥ १२३ ॥

आदिपुराण ३८ वां पर्व।

आधिपत्य जमा लेती है जो भविष्य में बहुत शीघ्र मनुष्य के पतन का कारण होती हैं। अतः वासनानाओं के शीघ्र उद्गम को रोकने के लिये विद्यार्थी जीवन का वातावरण बहुत पवित्र होना चाहिये। जिसमें रह कर छात्रों के कोमल हृदय प्राकृतिक घटनाओं से मानव जीवन का पाठ सीख सकें और कृत्रिमता से दूर रहें। इस बीसवीं शताब्दी में भिक्षावृत्ति करना या लंगोटी लगाकर रहना तो असम्भव है किन्तु इतना ध्यान अवश्य रखना होगा कि विद्यार्थी कम से कम आवश्यक्ताओं से अपना जीवन निर्वाह कर सके। बचपन से ही कष्ट सहन की आदत न डालने से सांसारिक जीवन में कठनाईयों का सामना करना कठिन होजाता है। आधुनिक शिक्षा में यही तो एक बड़ा भारी दुर्गुण है कि वह मनुष्य को कष्ट सहिष्णु न बना कर विलासी आलसी और आवश्य काओं का दास (गुलाम) बना देती है। यदि छात्र जीवन में ही हम अपनी आवश्यक्तायें अधिक बढ़ा लेंगे तो इस दरिद्र भारत में गार्हस्थिक जीवन निर्वाह असंभव हो जायंगा। जैसा कि वर्तमान में हो रहा है। अतः छात्र जीवन के निर्वाह के लिये सादे साफ़ सुथरा मकान और मामूली व्यय आवश्यक है आज कल हम देखते हैं कि बहुत से छात्र इधर उधर से बहुत सी छात्रवृत्तियां लेकर समाज के पैसे का अव्यय करते हैं यह दशा संस्कृत तथा अंग्रेजी दोनों ही विभागों में पाई जाती है इस अन्धाधुन्धी में बहुत से गरीब छात्र निःसहाय रह जाते हैं और दूसरे मौज करते हैं। इसको रोकने के लिये प्रथम तो छात्र जीवन को ही संयमित

बनाना होगा जिससे उनकी आवश्यकतायें अधिक बढ़ कर उन्हें इन्द्रियों का दास न बनाले। दूसरं संस्था के संचालकों तथा दातारों को भी बहुत छानबीन करने के बाद छात्रवृत्ति निर्धारित करनी चाहियें। सबसे अच्छा तो यह है कि दातारगण संस्था के अध्यक्ष द्वारा ही छात्र वृत्तियां देने का कष्ट उठाया करें। यह शब्द हमें इसलिये लिखने पड़ रहे हैं कि हमने एक ऐसे दातार का ऐसा पत्र देखा जो छात्र को लिखते हैं—"कि तुम अपने घर का पता लिख दो ताकि हम वहीं छात्र वृत्ति का रुपया भेजदें। विद्यालय में भेजने से अधिकारीगण शायद तुम्हारी वृत्ति रोक लें।" ऐसे दयालु दातार गण छात्रों के भाविजीवन के पतन में सहायक हो जाते हैं और उन्हें लड़कपन से ही रुपया बटोरने की चाट लगा कर स्वार्थी तथा धनलोलुप बना देते हैं। जिससे वे अपने समाजिक जीवन में भी उसी नीच वृत्ति का अवलम्बन करते हैं। और ऐसे ही कारणों से समाज सब कुछ खर्च करके भी सच्चे सेवकों से वन्चित रह जाती है।

सदाचार

ज्ञान प्राप्त करना जुदी बात है और उस ज्ञान को अपने जीवन में मिला देना जुदी बात है। आज कल हमारा लक्ष्य प्रथम पर ही है दूसरी पर नहीं। और यही कारण है कि प्रायः हमारे नवयुवकों की युवावस्था शिक्षा काल के समाप्त होने तक समाप्त हो जाती है। उन्हें यह सिखलाया ही नहीं जाता कि वे जो कुछ ज्ञान सम्पादन करते हैं उस के अनुसार

अपने जीवन को बनावें। ज्ञान की सार्थकता सीखने में नहीं है-आचरण करने में है। इसी लिये प्राचीन परिपाटी में शिक्षण से अधिक आचरण पर दृष्टि रखी जाती थी, और विद्या समाप्ति तक ब्रह्मचर्य्य धारण करना अनिवार्य था। आज यह नियम न होने से ही एम० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण होने तक छात्र कई सन्तानों का पिता हो जाता है। तथा आज कल की शिक्षा भी इस नियम के योग्य नहीं है क्योंकि कुशिक्षा के सँस्कार से स्कूलों में प्रविष्ट होते ही बच्चों की कुवासनायें जागृत हो जाती हैं या दूसरे शोकीन मिजाज महाशयों के सत्सँग ? से उन्हें जागृत होना पड़ता है जिस से जीवन के भावि परिणाम से अनभिज्ञ छात्र अप्राकृतिक व्यभिचार जैसे निन्दनीय एवं जघन्य कुकर्मों को कर बैठते हैं जिस से उन का मानसिक तथा शारीरिक विकास रुक जाता है। और शिक्षा के वास्तविक आनन्द से वंचित रह जाते हैं।

अभी उस दिन डाक्टर मुंजे ने एसेम्बली में इस आशय का प्रस्ताव उपस्थित किया था कि-"साण्डर्स कमेटी ने प्रचलित शिक्षा प्रणाली में जो दोष बताये हैं उनकी जांच कर उन्हें दूर करने के उपाय बताने के लिये एक कमेटी कायम की जाये ताकि सैनिक अफसर के पद के लिये चरित्रवान युवक मिल सकें"।

डाक्टर मुँजे ने कहा कि मेरा यह कहना नहीं कि भारतीय युवक हीन चरित्र होते हैं। शिक्षा प्रणाली ही ऐसी दूषित है कि उनका चारित्र उन्नत नहीं होने पाता। लार्ड मेकाले यह कही गये हैं कि अंग्रेजी शिक्षा से अपने धर्म के प्रति हिन्दुओं

में घृणा उत्पन्न हो रही है और तीस वर्ष में बङ्गाल में एक भी मूर्ति पूजक न रह जायगा। शिक्षा की जो प्रणाली प्रचलित है उसका मूल उद्देश्य हम सब को ईसाई बनाकर अँग्रेजों का गुलाम बनाना था। अब तक हम लोग जो बचे हैं उसका कारण परंपरागत संस्कार है।

यथार्थ में सदाचार तथा शिक्षा का गहरा सम्बन्ध है सदाचार (ब्रह्मचर्य्य) पालन के बिना शिक्षा की सहायक शक्तियों का विकास नहीं हो सकता। क्योंकि उन शक्तियों के विकसित करने के लिये जिस पोषकतत्व की आवश्यकता है वह बिना ब्रह्मचर्य्य धारण किये शरीर में ठहर नहीं सक्ता आज कल हमारे अभिभावकगण ताड़ना तथा कुछ नीति की पुस्तकों को पढ़ाने से छात्रों को ब्रह्मचारी बनाया चाहते हैं। किन्तु इन दोनों उपायों से तब तक कुछ न होगा जबतक उनकी वासनाओं को जाग्रत करने वाले वातावरण से उन्हें पृथक न रखा जाये। और उन्हें उसके हानि लाभ से परिचित न करा दिया जाये।

जिस अवस्था में वासनायें जाग्रत होती हैं उससे पूर्व ही यदि छात्र के हृदय में उन वासनाओं पर विजय पाने की समुचित शक्ति न उद्भूत की गई हो तो फिर लाख ताड़न करने पर भी कुछ नहीं हो सका। प्रत्युतः ऐसी अवस्था में ताड़ना विष का ही कार्य करती है। तथा ताड़ना से जो कार्य होता है वह आन्तरिक और स्थायी नहीं होता उसके मूल में कायरता छिपी रहती है जो छात्र को सदाचारी बनने के लिये वाध्य करती है। ताड़ना का भय दूर होते ही छात्र पुनः

निरंकुश तथा अमिताचारी हो जाता है । हमें तो ऐसे सदा-चार की आवश्यकता है जो उनके अन्तः करण से प्रादुर्भूत होकर न केवल छात्र जीवन में ही किन्तु सामाजिक जीवन में भी उनका साथी बना रहे, और ऐसा सदाचार केवल कृत्रिम नियमो से नहीं हो सक्ता ।

सदाचार या ब्रह्मचर्य की शिक्षा के लिये प्रथम आवश्यक नियम यह है कि शिक्षक उसके लिये उपदेश करे आदेश न करे। और उपदेश भी प्रिय शब्दों में करे भर्त्सना युक्त शब्दों में नहीं। प्रति दिन उस विषय पर छात्रों से बात चीत करते हुवे ऐतिहासिक महा व्यक्तियों के प्राकृतिक उदाहरण उनके सामने रक्खे। वे उदाहरण अतिशयोक्ति पूर्ण न होने चाहियें जिस से छात्र उन्हें अव्यवहारिक समझ कर अनुपयोगी न समझ लें। उनके पठन क्रम में ऐसी पुस्तक रखी जायें जो उन्हें सत्पथ पर चलाने में सहायक हो। तथा जिन में भारत के प्रचीन ऋषियों तथा आदर्श ग्रहस्थो के उदाहरण हो। बड़ी अवस्था के छात्रों के लिये ऐसी पुस्तकें निर्धारित होना चाहियें जिसमें महा पुरुषों के सद्विचार हों साहित्य के ऐसे अंश होने चाहिये जो जीवन को उन्नत तथा महत्वाकांक्षा को विकसित करने में सहायक हो।

दूसरा आवश्यक नियम यह है कि शिक्षक जिन बातों को छात्रों के सामने रक्खे स्वयं उनका आचरण करे। प्राचीन आश्रमों में यही तो विशेषता थी कि गुरुजन गृहत्यागी हुवा करते थे आज कल की तरह वेतन भोगी नहीं । इसी से छात्र उन में विशेष श्रद्धा रखते थे। उस समय सदाचार

का पाठ सीखने के लिये पुस्तकों की आवश्यकता न थी। साक्षात सदाचार की मूर्ति गुरु ही चलते फिरते प्रत्यक्ष उदाहरण थे। तब छात्र सदाचार को कल्पना की मूर्ति नहीं समझते थे। हमारी शिक्षा के अधःपतन में यह वेतन भोगी शिक्षक भी मुख्य कारण हैं पुराने समय में शिष्य गुरुओं को खोजा करते थे और आज गुरु? शिष्यों को खोजते हैं। किसी भी समाचार पत्र में एक नोटिस निकलवा देने से दर्जनों गुरु शिष्य के घर पर ही इकट्ठे हो जाते हैं। इन वेतन भोगी शिक्षकों से लाभ के बदले हानि ही होती है। क्योंकि यह वेतन के दास छात्रों को प्रसन्न रखने के लिये ऐसे विषयों की चर्चा करते हैं जो नवयुवकों के हृदय को अमृत किन्तु उनके जीवन के लिये विष की बुझी कटार होते हैं। यदि मेरे कथन में कुछ अत्युक्ति हो तो पाठक गण किसी मनचले शिक्षक की साहित्य कक्षा में जाकर प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं।

हा!-आज वह युग नहीं है जब इस विपत्ति के समय भारत की दरिद्र सन्तान को प्राचीन दैवदुर्लभ गुरु मिल सके फिर भी हमें शिक्षा विभाग में उन्हीं शिक्षकों को नियुक्त करना चाहिये जो संयमी सन्तोषी और मिताचारी हो—छात्रों को अपनी सन्तान के सदृश समझते हैं। जिनका उद्देश इस विभाग में आकर सांसारिक निर्वाह के साथ ही साथ देश या समाज के नवयुवकों को आदर्श मनुष्य बनाना हो। जो अन्यत्र स्थान न मिलने से इस विभाग में प्रविष्ट न हुवे हों। क्योंकि शिक्षक ही शिक्षा के आदर्श हुवा करते हैं आदर्श के खराब होने से मनुष्य लक्ष्य भ्रष्ट हो जाता है।

पाठ विधि

हम ऐसी कुल किताबें काबिले जब्ती समझते हैं।
जिन्हें पढ़ करके लड़के बाप को खब्ती समझते हैं॥
(अकबर)

आजकल की पाठ विधि की यही दशा है उसे पढ़ते ही लड़के अपने पुर्वपुरुषों को अनार्य समझने लगते हैं। अतः हमें ऐसी पाठ विधि निर्धारित करनी चाहिये जो शारीरिक भूख के साथ ही साथ आत्मिक भूख भी बुझा सके, और जिससे नवयुवकों की ज्ञानसाधक शक्तियां कुण्ठित न होकर उत्तरोत्तर अधिक विकसित होती जाये, जिनके विकास का लाभ देश और समाज उठा सके।

सबसे प्रथम आवश्यक बात तो यह है कि शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा हो। शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा होने से ही हमारे नवयुवकों का ज्ञान अपरिपक्व रहता है क्योंकि मनुष्य जितनी अच्छी तरह मातृ भाषा समझ सक्ता है बर्षों तक अभ्यास करने पर भी उतनी अच्छी तरह विदेशी भाषा नहीं समझ सका। जब शिक्षक अंग्रेजी में किसी बात का वर्णन करता है तो छात्रों का उपयोग भाषा को समझने में ही लगा रहता है भाव तक वह पहुँच ही नहीं पाते। अन्य भाषाओं को केवल भाषा जानने की दृष्टि से पढ़ना चाहिए। शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा होने से प्रथम कुछ कठिनाईयां उपस्थित होगी क्योंकि हिन्दी में अभी ऐसी पुस्तकों का अभाव है। किन्तु इन कठिनाईयों को तो एक दिन पार करना

ही होगा। इसके बिना हमारा कार्य नहीं चल सक्ता। आज कल बहुत से ग्रैजुयेट योग्य स्थान न मिलने से बेकार रहते हैं यदि वे विदेशी भाषाओं के आवश्यक ग्रंथों का मातृ भाषा में अनुवाद करने लग जायें तो उससे उनके निर्वाह तथा मातृ भाषा में पाठ्यपुस्तकों की कमी का प्रश्न बहुत कुछ सुलझ सक्ता है। किन्तु इधर बेचारों को शुद्ध हिन्दी लिखने का ज्ञान नहीं और उधर शिक्षा का माध्यम विदेशी ,भाषा होने से अनुवाद योग्य ग्रंथों का भावज्ञान नहीं, तब अनुवाद करें तो क्यों कर करें। जिन में दोनों बातें हैं उन्हें इतना अवकाश नहीं। कुछ दिन हुवे, कलकत्ते के प्रसिद्ध दानवीर सेठ घनश्यामदास जी बिड़ला ने इस कमी को पूरा करने के लिये ५००००) हिन्दू विश्वविद्यालय को दान दिया था किन्तु उसका फल अभी मालूम नहीं हुवा। हर्ष है कि इस वर्ष इन्टर मीडियेट बोर्ड (Inter mediate board) ने प्रति वर्ष बीस प्रतिशत हाई स्कूलों में शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा करने का निर्णय किया है। अस्तु।

हम पहिले जो प्राचीन पाठ विधि उद्धृत कर आये हैं उसमें आचार शास्त्र तथा अध्यात्मशास्त्र को सबसे अग्र स्थान दिया गया है आधुनिक पाठविधि में इनका कोई स्थान नहीं क्योंकि आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता में यह विषय अनुपयोगी समझे जाते हैं। इन दोनों विषयों का कभी भारतवर्ष में बहुत प्रचार था तब भारतवर्षके यह दिन न थे। उनके अभाव में ही आज हमारी यह दुर्दशा हो रही है। बी. ए एम. ए. पास होजाने पर उन्हें आत्मिक शान्ति नहीं

मिलती पूर्व काल में अध्यात्मवाद का प्रचार होने से ही बाह्य आडम्बर सभ्यता में न गिना जाता था । जो जितने अधिक बाह्य आडम्बर से रहित होते थे वह उतने ही सभ्य कहलाते थे । और आज बाह्य आडम्बर का नाम ही सभ्यता है ।

कुछ आधुनिक विद्वान अध्यात्मवाद तथा आचारशास्त्र के अध्ययन को भारत का अहितकारक समझते हैं उनका विचार है कि मनुष्य अध्यात्मवाद के अध्ययन से अकर्मण्य तथा आचार शास्त्र के अध्ययन से ढोंगा हो जाता है । हमारा उन से यही नम्र निवेदन है कि उन्हें वास्तविक अध्यात्म ग्रन्थों के देखने का शुभ अवसर प्राप्त नहीं हुवा-अन्यथा वे ऐसे विचार प्रकाशित न करते । हम पहिले लिख आये हैं कि शिक्षा का उद्देश्य दूसरों को सताकर केवल उदर पोषण करना ही नहीं है कुछ और भी है । उस "कुछ और" की ही पूर्ति अध्यात्मशास्त्र तथा आचार शास्त्र से होती है अध्यात्म तथा आचार का शिक्षण न मिलने से मनुष्य नास्तिक हो जाता है और नास्तिकता मनुष्य को मनुष्यता से च्युत कर देती है, वह अधर्म को अधर्म तथा अन्य मनुष्यों को मनुष्य नहीं समझता जिस किसी तरह दूसरों का उत्पीड़न करके आत्मपोषण करना ही उसका मुख्य ध्येय हो जाता है । आधुनिक योरुप की यही सभ्यता है इसी का दुष्परिणाम योरुप का विगत महासमर है । आज संसार शांति का इच्छुक है और उस विश्वव्यापी शांति की महौषधि भारत के पास है । उस ही को अध्यात्मवाद कहते हैं । यदि भारत के नव-

युवक चाहते हैं कि भारत पुनः विदेशों का गुरु बने तो उन्हें अपनी पाठ विधि में अध्यात्म शास्त्र को सर्व प्रमुख स्थान देना होगा । जड़ शक्ति से आत्म शक्ति अधिक महत्व शाली होती है । योरुप के पास जड़ शक्ति है और हमारे पास आत्म शक्ति । योरुप ने अपनी जड़ शक्ति की जड़ जमादी है और हमने अपनी आत्म शक्ति को बेकार समझ कर ठुकरा दिया है । अतः हमें ऐसी पाठ्यप्रणाली निर्धारित करनी चाहिये जिस में योरुप के जड़वाद तथा भारत के अध्यात्म-वाद का संमिश्रण हो । जिस को पढ़कर हमारे छात्र आत्मिक तथा शारीरिक भूख को शांत कर सके ।

आज कल मैट्रिकुलेशन पास नवयुवक के दिमाग में साइंस, अँग्रेजी, हिसाब, भूगोल, इतिहास, हिन्दी, तक ६ विषयों का कच्चा पक्का ज्ञान भरा रहता है इन में से बहुत कुछ ज्ञान तो केवल परीक्षा देने के लिये है-जीवन में उसकी कोई आवश्यकता नहीं पड़ती । एफ० ए० में भी चार विषय से कम नहीं होते । हमारी क्षुद्र सम्मति में अंग्रेजी, मातृ भाषा और धार्मिक शिक्षा अनिवार्य विषय रहें और पर्याय विषयों की सूची से एक या दो विषय चुन लिये जायें यह विषय वे होने चाहियें जिन की आवश्यकता विद्यार्थी को कालिज से निकलने के बाद पड़ेगी । यदि सरकारी नौकरी करना हो तो बुककीपिङ्ग, टाईपराईटिंग, कृषि में जाना हो तो कृषि डाक्टरी के लिये वनस्पतियों तथा धातुओं का रसायन, सिविल इञ्जिनियरिङ्ग के लिये हिसाब और डाइङ्ग मिकेनिकल तथा टेक्स टाईल इञ्जिनियरिङ्ग के लिये फिजिक्स,

केमिष्ट्री, वकील बनना हो तो लॉजिक संस्कृत तथा फारसी राजनीति में भाग लेना हो तो इतिहास और अर्थशास्त्र विदेशों की सैर करना हो तो फ्रेन्च, जर्मन । सारांश यह है कि जीवन के जिस क्षेत्र में जाना हो उसके अनुकूल पर्याय विषय लिये जाएं। बी० एस सी० पास करके वकालत में न घुसना पड़े।

हम पहिले लिख आये हैं कि देश की आवश्यकता को पूरा करना शिक्षा का एक महत्व पूर्ण उद्देश है। अतः शिक्षालयों में औद्योगिक विभाग अवश्य होना चाहिये। जो विद्यार्थी उच्च शिक्षा न ले सके उन्हें प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने के बाद औद्योगिक विभाग में प्रविष्ट कर दिया जाये। जितने भी भारत सन्तान हैं सब को अपने २ व्यवसाय के अनुसार थोड़ा बहुत शिक्षण अवश्य दिया जाये जिससे वे भविष्य में अपने व्यवसाय में उन्नति कर सकें।

असाधारण बालकों की शिक्षा

जिन्हें शिक्षा विभाग में कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुवा है उन्होंने ध्यान देने पर देखा होगा कि प्रत्येक कक्षा में साधारण विद्यार्थियों के अतिरिक्त दो विशेष प्रकार के छात्र पाये जाते हैं एक वह जो अपनी कक्षा में विशेष तीव्र होते हैं दूसरे वह जो बोदे रहते हैं। इस समय स्कूलों में इन विशेष छात्रों की ओर कोई लक्ष्य नहीं दिया जाता, जिसका फल यह होता है कि बुद्धिमान छात्र अधिक तीव्र

होते हुवे भी साधारण बालकों की तरह वर्ष पर्यन्त उसी विषय को घोटा करते हैं या फिर अपना समय खेल कूद में बिताते हैं। जिससे उनकी बुद्धि की तीव्रता का वास्तविक उपयोग तथा उससे यथार्थ लाभ नहीं हो पाता है। और बोदे छात्र वर्षों तक एक ही कक्षा में पड़े पड़े अपने जीवन की घड़ियां गिना करते हैं इससे दो हानियां होती हैं प्रथम तो प्रतिवर्ष एक ही पुस्तक को रटते रहने से शिक्षा नीरस हो जाती है जिससे वे घबरा कर पढ़ना छोड़ बैठते हैं दूसरे कक्षा के अन्य नवीन छात्रों पर उनका बुरा असर पड़ता है।

हमारे विचार में प्रथम प्रकार के छात्रों के लिये आधुनिक प्रचलित शिक्षा प्रणालियों में डाल्टन प्रणाली अधिक उपयोगी सिद्ध होगी। इस प्रणाली की अविष्कारक मिस हेलेन पैरकर्स्ट अमेरिकन विदुषी है। इस प्रणाली में कक्षायें नहीं होती। बालकों की उन्नति के अनुसार प्रत्येक विषय में पृथक २ श्रेणियां होती हैं जो विद्यार्थी जिस विषय में जिस श्रेणी के योग्य है वह उसी में कार्य करता है जैसे यदि एक विद्यार्थी गणित में असमर्थ है तो वह तीसरी श्रेणी में कार्य करेगा और इतिहास में निपुण है तो पांचवीं श्रेणी का कार्य करेगा।

प्रत्येक विषय श्रेणी ८ मास के कार्य में बांटी जाती है पीछे वे प्रत्येक सप्ताह के कार्य में विभक्त कर दी जाती है। जिससे प्रत्येक विद्यार्थी को मालूम रहता है कि उसको आगे की श्रेणी में पदार्पण करने से पहिले इतना कार्य करना है। विद्यार्थी को पूर्ण अधिकार है कि वह जितनी शीघ्रता से चाहें पाठ्यक्रम समाप्त कर सकता है। यहां यह प्रश्न उठ

सक्ता है कि इतनी स्वतंत्रता देने से विद्यार्थी को जिस विषय में रुचि होगी नहीं सीखेगा अन्य विषय रह जायेंगे। परन्तु यह बात नहीं है छात्र को प्रत्येक मास की पाठ्य समाप्ति तथा नये पाठ्यक्रम को लेने के पूर्व अपने अध्यापक को सूचना देनी पड़ती है। यहां अध्यापक को देखना चाहिये कि उसने सब विषय पूर्ण समाप्त किये हैं या नहीं। यदि न किये हों तो उसे समाप्त किये हुवे विषय में दूसरा पाठ्य-क्रम नहीं मिलता। इससे लाभ यह होता है कि वह जिस विषय में निपुण है उसे शीघ्रता से समाप्त कर अन्य विषयों के तैय्यार करने में अपना समय व्यतीत करता है। इससे उसके जीवन का अमूल्य समय व्यर्थ नष्ट नहीं होता। और नवीन २ कार्य मिलने से उसकी बुद्धि कुण्ठित नहीं हो पाती है।

दूसरे प्रकार के छात्रों के लिए विदेशों में दो व्यवस्थायें पाई जाती हैं एक जगह तो ऐसे छात्रों के लिये पृथक स्कूल हैं जो छात्र अपनी कक्षा में बोदा होता है वह इनमें भेज दिया जाता है। इस प्रथम व्यवस्था से तो लाभ के बदले हानि ही होती है क्योंकि प्रथम तो वे छात्र जो ऐसे स्कूलों में भेजे जाते हैं स्वयं अपने को बुद्धु, समझने लगते हैं दूसरे उनके सहाध्यायी भी उनके जैसे ही निरक्षर भट्टाचार्य होते हैं। बुद्धिमान छात्रों का सहवास उन्हें नहीं मिलता जिससे वे पहिले की ही तरह अकर्मण्य बने रहते हैं। दूसरी व्यवस्था जो अमेरिका में पाई जाती है उत्तम है। वहां पर साधारण स्कूलों के साथ ही में एक विशेष कक्षा होती हैं जिनमें बोदे

छात्र रक्खे जाते हैं। उन कक्षाओं का कोर्स कुछ भिन्न ही प्रकार का होता है जिसमें संगीत विद्या की मुख्यता रहती है। मूढ़ से मूढ़ मनुष्य भी आकर्षक होने के कारण संगीतविद्या में सरलता से चल सका है जिससे सुप्त हृत्तन्त्री के तार बज उठते हैं। मनोरंजन भी होता है। जिससे बोदे छात्र स्कूल को छोड़ कर नहीं भागते हैं। संगीत के साथ ही साथ उन्हें कुछ आवश्यक विषय भी पढ़ाये जाते हैं अन्य बुद्धिमान छात्रों से उन्हें मिलने जुलने का अवसर दिया जाता है जिससे कुछ दिनों में उनकी मानसिक प्रवृत्ति का रिझान शिक्षा की ओर होजाता है और फिर वे साधारण कक्षाओं में भर्ती कर लिए जाते हैं।

इस प्रकार बोदे छात्र भी कुछ दिनों में अन्य छात्रों के सदृश ही निपुण होजाते हैं खेद है कि हमारी प्रचलित शिक्षा प्रणाली में उन गरीबों का कोई स्थान ही नहीं है। जिस पर ध्यान देना बहुत आवश्यक है।

स्त्री शिक्षा

विद्यावान् पुरुषो लोके सम्मतिं याति कोविदैः।
नारी च तद्वति धत्ते स्त्रीसृष्टेरग्रिमं पदम्॥ ६८॥

आदि. १६ पर्व

स्त्री और पुरुष गार्हस्थ्य जीवन रूपी साईकिल के दो पहिये हैं इन में से एक में भी पंचर हो जाने से गार्हस्थ्य जीवन सुख पूर्वक व्यतीत नहीं हो सका। प्राथमिक शिक्षा के प्रकरण में लिखा जा चुका है कि सन्तान के सुशिक्षित या या अशिक्षित होने का भार माता पर अवलम्बित है क्योंकि बच्चे का बाल्य जीवन माता की ही सुखमामयी गोद में

बीतता है उस समय उसके कोमल हृदय पटल पर जो भाव अङ्कित हो जाते हैं वह जीवन पर्यन्त बने रहते हैं । आज हमारी इस दुर्दशा का कारण माताओं का अशिक्षित होना ही है । कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति इस तथ्य को अस्वीकृत नहीं कर सका किन्तु यहां पर भी यही प्रश्न उपस्थित है कि उन को किस ढंग की शिक्षा दी जाए ? कुछ दिनों से स्त्रियों को भी पुरुषों की ही बी. ए. एम. ए. बनाना प्रारम्भ हो गया है गोया भारत को यूरुप बनाने में जो कमी थी वह अब पूरा हुआ ही चाहती है जैसे देव तैसी देवियां—मियां भी जैन्टिल-मैन बीबी भी अपटूडेट लेडी । अब तक तो बिचारी भारतीय देवियां बाबू सा० की बेकारी में भी जिस किसी तरह घर के व्यय का कार्य चला लेती थीं किन्तु इन यूरोपियन सांचे में ढली हुई देवियों से बेकार मियां की कैसे पटेगी सो भुक्त भोगी ही अनुभव कर सकेंगे । मियां भी आवश्यकताओं के गुलाम और बीबी भी-घर के काम काज करने में देवजी की भी शान जाती है और देवी जी की भी । "बस कम्बख्ती में आटा गीला " काम चले तो क्योंकर चले । हम तो इसे शिक्षा की उन्नति न कहकर अवनति ही कहेंगे, क्योंकि अब तक तो यह विष शरीर के अर्द्धांग को ही बेकार कर सका था किन्तु अब तो सम्पूर्ण शरीर को ही बेकार किया चाहता है । प्रकृति ने स्त्री पुरुष में जो भेद उत्पन्न कर दिया है उस का ध्यान न रखने से कल हमारे दाम्पत्य जीवन की भी वही दशा होगी जो आज युरुप की है यूरुप में प्रतिवर्ष प्रतिशत ५० दम्पति तलाक देते हैं जब कि हिन्दी भाषा में इसके लिये कोई शब्द ही नहीं ।

आधुनिक शिक्षा पद्धति के प्रभाव से नवयुवकों के हृदय भारतीय नहीं रहते-यही सब नेता एक स्वर से चिल्लाते हैं फिर भी देवियों को उसी मार्ग से ले जाने का प्रयत्न प्रारम्भ हो गया है। जो मनुष्य किसी औषधि के प्रयोग से अपनी एक आंख खो बैठा वह यदि दूसरी आंख में भी उसी औषधि का प्रयोग करे तो उसके बराबर मूढ़ अन्य कौन होगा।

हमें स्त्रियों के लिये ऐसी शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिये जिससे वे सुशिक्षित गृह कार्य दक्ष गृहिणी बन सकें—न कि घर सजाने की चलती फिरती तस्वीर। उनके अन्दर ऐसा ज्ञान प्रकाशित किया जाये जिससे वे पति के उचित कार्य में पूरी सहायता करने के साथ ही उसके अनुचित कार्य का विरोध भी कर सकें—जो गृहस्थी के कार्यों को प्रेम और योग्यता पूर्वक कर सकें, घर की आर्थिक परिस्थिति का नियंत्रण तथा अपने बच्चों की भावि शिक्षा पर पूरा ध्यान रख सकें।

उक्त बातों पर ध्यान रखते हुवे स्त्रियों को योग्य गृहणी बनाने के लिये उनके पाठ्यक्रम में गणित, अर्थशास्त्र तथा आयुर्वैदिक को अवश्य स्थान मिलना चाहिये क्योंकि गृहस्थी में इनकी बहुत अधिक आवश्यकता पड़ती है साथ ही साथ संगीत विद्या भी अनिवार्य होना चाहिये। जिससे अवकाश के समय दम्पति कुछ मनोरंजन कर सकें। कभी कभी मनचले पति देवों की बुरी आदतें छुड़ाने में संगीत विदया बड़ा काम देती है। स्त्रियों के लिये भी शिक्षा मन्दिरों को पृथक व्यवस्था होनी चाहिये आजकल जो को—एजुकेशन की प्रथा चल पड़ी है वह युवक तथा युवति समाज के लिये बहुत हानि कारक है।

उपसंहार

अन्त में मैं जैन समाज से कुछ निवेदन करके इस लेख को समाप्त करूँगा। बहुत दिनों से हमारे कुछ भाई एक जैन विश्वविद्यालय के संस्थापन करने की आवाज़ उठा रहे हैं। यथार्थ में जैन समाज जैसी दानशील और धनशालि समाज के लिये यह एक लज्जा की बात भी है किन्तु आधुनिक शिक्षा पद्धति को अपना लक्ष्य बनाकर कोई विश्वविद्यालय खोलने से तब तक कुछ लाभ न होगा जब तक उसमें जैन संस्कृत के साथ ही साथ भारतीय संस्कृत का संरक्षण न हो। इस समय यदि हम किसी आदर्श संस्था का शिलारोपण करना चाहे तो उसमें आधुनिक शिक्षापद्धति के दोषों का संमार्जन करना होगा तभी वह फलप्रद हो सकती है यों तो अकेले संयुक्त प्रांत में ही ५ विश्वविद्यालय मौजूद हैं। हमारी जैन समाज में एक बड़ा दुर्गुण यह है कि वह नवीन संस्थाओं के खोलने की योजना तो रख देती है किन्तु वर्तमान संस्थाओं के उद्धार करने का प्रयत्न नहीं करती। इसी कारण से जैन समाज में इतने विद्यालय और पाठशालाओं के होने पर भी प्रायः आदर्श संस्था कहे जाने योग्य शिक्षालयों का अभाव ही है। आधुनिक जैन संस्थाओं के सुधार के लिये कम से कम निम्न लिखित बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहियेः—

१—संस्कृत शिक्षालयों के उत्तर दायित्व पूर्ण पद पर संस्कृतज्ञ महानुभाव ही नियत किये जायें और उनका विद्यालय से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहे जिससे वे समय समय पर अध्यापक तथा विद्यार्थियों के दैनिक कार्य का योग्यता पूर्वक निरीक्षण कर सकें।

२—नवीन प्रविष्ट हुए छात्रों की १ माह के बाद अध्ययन सम्बन्धी योग्यता की परीक्षा करके पूर्ण रूप से प्रविष्ट किया जाये।

३—यज्ञोपवीत संस्कार के बाद विद्याभ्यास प्रारम्भ किया जाये।

४—प्रवेशिका कक्षा में हिन्दी, गणित और इतिहास अवश्य पढ़ाया जाये।

५—मध्यमा परीक्षा तक अंग्रेज़ी अनिवार्य समझी जाये।

६—जो छात्र प्रवेशिका परीक्षा करने बाद उच्च शिक्षा न लेना चाहें उनके लिये विद्यालय में एक औद्योगिक विभाग होना आवश्यक है जिससे वे अपना जीवन स्वतन्त्रता पूर्वक विता सकें।

७—विद्यालय में एक ऐसा फण्ड स्थापित किया जाये जिसके व्याज से समाज के धुरन्धर विद्वानों को निमंत्रित करके छात्रों के लिये व्याख्यान का प्रवन्ध हो सके।

८—विशारद कक्षा के बाद छात्र कोई एक विषय लेकर उसका तुलनात्मक अध्ययन करे। जैसे सिद्धान्त शास्त्र के विद्यार्थीको अन्य धर्मों का अध्ययन तुलनात्मक दृष्टि से कराया जाये और दर्शन शास्त्र के विद्यार्थी को इतर दर्शनो का। जिससे विद्यार्थियों को केवल ग्रन्थ की पंक्ति

लगाने की ही योग्यता न हो किन्तु वे अपने विषय पर स्वतन्त्रता पूर्वक ग्रन्थ लिख सकें तथा विद्वत्समाज में व्याख्यान दे सकें।

यह बहुत साधारण उपाय है जिन पर ध्यान देने से छात्रों की अपरिपक्वता किसी अंश में दूर हो सकती है। हम अपने शिक्षा प्रेमियों से एक बार आर्य समाज के गुरुकुल कांगड़ी की शिक्षा पद्धति के दिग्दर्शन करने का अनुरोध करेंगे। सम्भव है उसे देखकर हमें अपनी संस्थाओं की दुर्दशा का ज्ञान हो सके। यदि इस लेख को पढ़ कर शिक्षा संस्थाओं के संचालकों ने संस्था की आन्तरिक दशा को सुधारने का कुछ प्रयत्न किया तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूँगा।

॥ इति शम् ॥

जैन मित्र मंडल द्वारा प्रकाशित ट्रैक्ट

१—जैनधर्म व परमात्मा लें० बाबू रिषभदासजी वकील मेरठ
उर्दू मू० =)

२—जैन कर्म फिलासफी ,, ,, —)

३—मेरी भावना ले. पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार उर्दू मुफ्त

४—रत्नकरण्ड श्रावकाचार पं गिरधर शर्मा नवरत्न हिन्दी —)

५—ज्ञान सुर्योदय भाग २ लें सूरजभानजी वकील उर्दू मू० —)

६—कलामे पेका लें० ला०मुन्नूलालजी जौहरी ,, मुफ्त

७—मजमूआ दिलपजीर लें० बा०चन्दूलालजी अख्तर ,,)।

८—सिलके सदजबहार लें०बा० भोलानाथ जीमुख्तार ,,)॥

९—आरजुये खेरवाद ,, ,,)।

१०—गुलजारे तख्तुल ,, ,,)॥

११—जिनमत दर्पण प्रथमभाग लें. ब्र०शीतलप्रसादजी हि. —)॥

१२—नायब गौहर ले. बा शिब्रतलालजी उर्दू मू०)॥

१३—जैनधर्म प्रवेश का प्रथम भाग बाबू सूरजभान जी वकील
हिन्दी ≡)

१४—लार्ड महावीर लें० मिस्टर हरिसत्य भट्टाचार्य अंग्रेजी
मूल्य ≡)

१५—भगवान महावीर स्वामी की जयन्ती के जल्से की रुए
दाद लें० मंत्री हिंदी उर्दू —)॥

१६—सुबह सादिक लें० पं० जिनेश्वरदासजी उर्दू —)॥

१७—हकीकत दुनियां ले. बा. भोलानाथजी मुख्तार ,, —)

१८—जैन धर्म ही भूमंडल का सार्वजनिक धर्म सिद्धान्त हो सकता है—लेखक बाबू माईदयाल साहब जैन बी. ए. आनर्स हिन्दी)|||

१९—भगवान महावीर और उनका वाज, लेखक—बाबू शिवलाल जैन मुख्तार बुलन्दशहर उर्दू ‐)

२०—रिपोर्ट जलसा जयन्ती सन् १९२७ ले. मन्त्री हि. उ० =)

२१—अहिंसा धर्म पर मुखालिफों का इलजाम ले. बा. शिवलाल जी मुख्तार उ०)॥

२२—हकीकतं माबूद ले. बा. भोलानाथ मुख्तार दरख्शां ,, ,,

२३—हयाते वीर ,, ,, ,, ,,

२४—सहेरकाजिब ,, ,, ,, ‐)

२५—दीरियल नेचर ऑफ परमात्मा ले० एन० एस० अगरकर अंग्रेजी =)

२६—जल्वं कामिल ले० बा० भोलानाथ जी मुख्तार उ० ≡)

२७—लार्ड अरिष्टनेमि मि. हरिसत्य भट्टाचार्य अंग्रेजी |=)

२८—जैन धर्म अंजली है ले० बा० दीवानचन्द जी उ० =)

२९—आदावे रियाजत ले० बा भोलानाथ जी दरख्शां मुफ्त

३०—मुक्ति और उसका साधन ले. ब्र० शीतलप्रशाद जी हिन्दी ‐)

३१—ज्ञान सूर्योदय बा० सूरजभान वकील ,, ≡)

३२—रिपोर्ट वीर जयन्ती उत्सव स० १९२८-२९, मंत्री हिन्दी उ० ।)

३३—फराजे इन्सानी ले. बा० शिवलाल जी मुख्तार ,,)॥

३४—जैन वीरों का इतिहास हमारा पतन ले. बा अजोध्याप्रसाद जी दास हिन्दी ।)

३५—पंचव्रत ले० बा० भोलानाथ जी मुख्तार हिन्दी)॥
३६—रत्नत्रय कुन्ज ले० बैरिष्टर चम्पतराय जी ,, -)
३७—हुस्ने फ़ितरत ले० जिनेश्वरदास मा... उर्दू मुफ्त
३८—मुक्ति ,, पं० प्रभाचन्द्र जी न्यायतीर्थ हिन्दी
३९—मुशारा ले० मन्त्री उ० ,,
४०—रिपोर्ट वीर जयन्ती उत्सव सन् १९३० हिन्दी ,,
४१—जैनी कौन हो सकता है ले० जुगलकिशोर मुख्तार ,,
४२—हयाते रिषभ ले० बा० भोलानाथ जी ,, उ० -)
४३—जैनवीरों का इतिहास ले०बा०कामताप्रसाद जी हिन्दी ।)
४४—मेरी भावना ले० जुगलकिशोर जी मुख्तार ,, मुफ्त
४५—दीव्यू डीटी ऑफ जैना सेन्टस ले० बैरिष्टर चम्पतरायजी अङ्गरेजी =)
४६—जैन साधुओं की बरहगी ले० बा० भोलानाथ जी मुख्तार उ० -
४७—दिगम्बर मुनि ले० कामता प्रसाद जैन हिन्दी - ॥

नोट—फ्री ट्रैक्ट या रिपोर्ट -) आने के टिकट आने पर मुफ्त भेजी जावेंगी।

मिलने का पता—
जैन मित्र मंडल
धरमपुरा, देहली।